विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका UGC Approved Journal - UGC Care Review

ISSN NUMBER : 2455-9717 RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

वर्ष : 7, अंक : 28

जनवरी-मार्च 2023

मूल्य 50 रुपये

Dhingra Family Foundation USA

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

बेटियाँ

डॉ. वंदना शर्मा

मैं व्यस्त थी, वह दुनिया में आ गई
मैं बढ़ रही थी, वह भी बड़ी हो रही थी
मैं सुबह के बाद शाम को ही मिलती थी उससे
वह हँसती हुई, खिली हुई सी मिलती थी
मैं थकी सी सोती थी,
वह रात को बहुत धीमे-धीमे रोती थी
महीनों अलग भी रही उससे,
पर जब मिली सीने से लग कर मिली
मैं नौकरी करने लगी, वो ख़ुद बड़ी होने लगी
मैंने कभी पढ़ाया नहीं उसे, वो ख़ुद ही पढ़ने लगी
मैंने जब भी देखा उसे, उसमें कुछ नया पाया
मुझे जब कुछ फुर्सत मिली,
तब तक वो व्यस्त होने लगी
मेरी बेटी कभी मेरे नाम से जानी जाती थी
आज मैं उसके नाम से जानी जाती हूँ।
(अदिति के लिए)

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

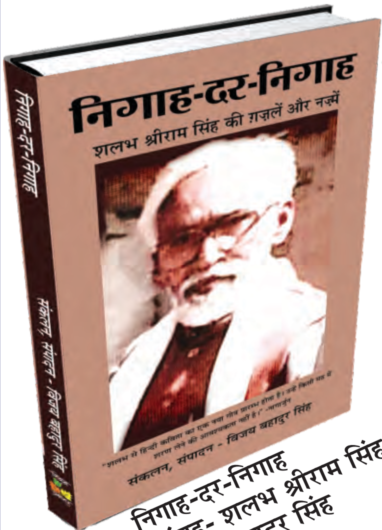

निगाह-दर-निगाह
गीत-ग़ज़ल संग्रह- शलभ श्रीराम सिंह
सं. विजय बहादुर सिंह

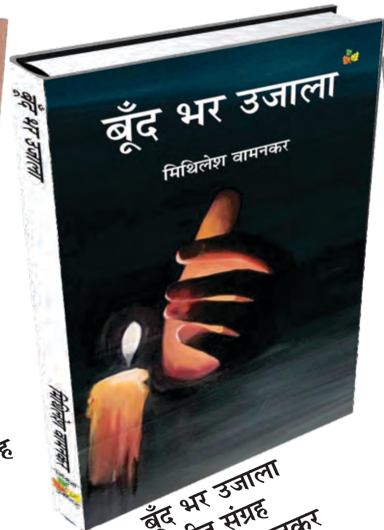

बूँद भर उजाला
गीत संग्रह
मिथिलेश वामनकर

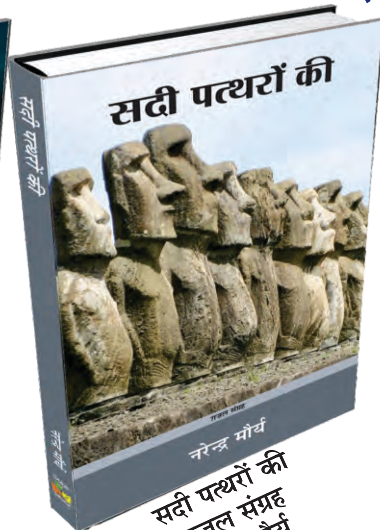

सदी पत्थरों की
ग़ज़ल संग्रह
नरेन्द्र मौर्य

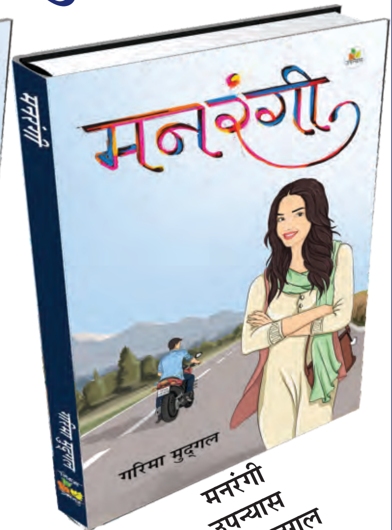

मनरंगी
उपन्यास
गरिमा मुद्‌गल

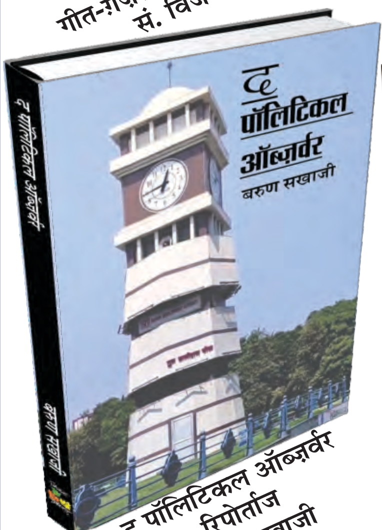

द पॉलिटिकल ऑब्ज़र्वर
रिपोर्ताज
बरुण सखाजी

धूप का छोर
दोहा संग्रह
सीमा पांडे मिश्रा

कितना सन्नाटा है
ग़ज़ल संग्रह
महेन्द्र सिंह

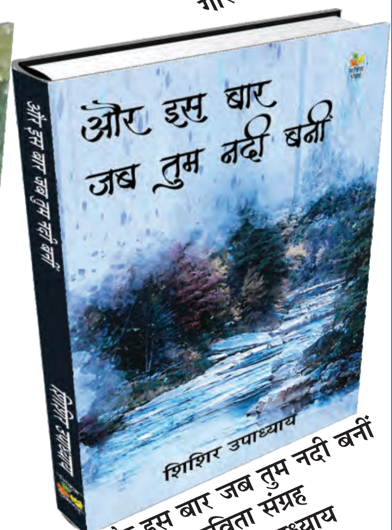

और इस बार जब तुम नदी बनीं
कविता संग्रह
शिशिर उपाध्याय

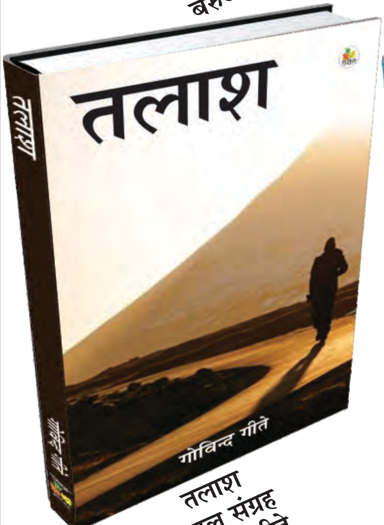

तलाश
ग़ज़ल संग्रह
गोविन्द गीते

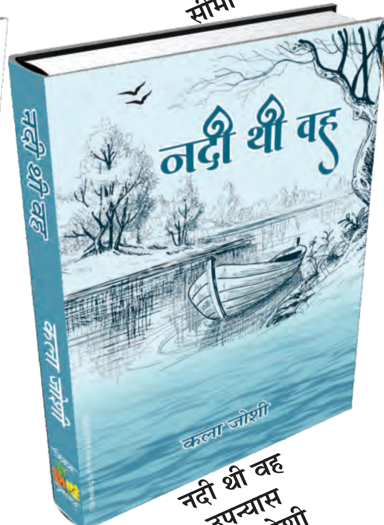

नदी थी वह
उपन्यास
कला जोशी

तेरा तुझको अर्पण
लघुकथा संग्रह
रश्मि स्थापक

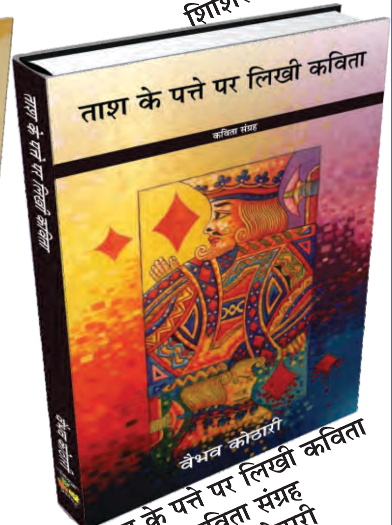

ताश के पत्ते पर लिखी कविता
कविता संग्रह
वैभव कोठारी

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 7, अंक : 28, त्रैमासिक : जनवरी-मार्च 2023
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

आवरण कविता
डॉ. वंदना शर्मा

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

Dhingra Family Foundation India
SHIVNA CREATIONS
Dhingra Family Foundation USA

इस अंक में

आवरण कविता / डॉ. वंदना शर्मा
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4

शोध आलोचना

एब्सर्ड नाटक और 'तीन अपाहिज'
संज्ञा उपाध्याय / 5
वंचितों के प्रवक्ता
डॉ. सचिन गपाट / 8

केंद्र में पुस्तक

ज़िंदगी की सबसे सर्द रात
डॉ. राकेश शुक्ल / कल्पना मनोरमा
कृष्ण बिहारी / 11

पुस्तक समीक्षा

मेरी माँ में बसी है
सत्यम भारती / डॉ.भावना / 10
सूखे पत्तों पर चलते हुए
राज बोहरे / शैलेन्द्र शरण / 14
मन की तुरपाई
अदिति सिंह भदौरिया / सुधा ओम ढींगरा / 20
अपने समय के साक्षी
रितु सिंह वर्मा / नंद भारद्वाज / 17
पेड़ तथा अन्य कहानियाँ
अंतरा करवड़े / अश्विनीकुमार दुबे / 19
सफ़ह पर आवाज़
कैलाश मंडलेकर / विनय उपाध्याय / 23
बन्द कोठरी का दरवाज़ा
अनिता रश्मि / रश्मि शर्मा / 24
सामाजिक अध्ययन नवचार
गोविन्द सेन / प्रकाश कान्त / 25
बुद्धिजीवी सम्मेलन
गोविन्द सेन / पंकज सुबीर /27
दुनिया मेरे आसपास
प्रकाश कान्त / एकता कानूनगो बक्षी / 29
नक़्क़ाशीदार केबिनेट
कमल चंद्रा / सुधा ओम ढींगरा / 30
काला सोना
डॉ. एस. शोभना / रेनू यादव / 31
धापू पनाला
अखतर अली / कैलाश मंडलेकर / 32
पोटली
दीपक गिरकर / सीमा व्यास / 33
एक गधा चाहिए
प्रो.नव संगीत सिंह / डॉ. दलजीत कौर / 41
पाँचवाँ स्तंभ
ब्रजेश कानूनगो / जयजीत ज्योति अकलेचा / 70

शोध आलेख

राजनारायण बोहरे के उपन्यासों में ग्राम्य जीवन
डॉ. पद्मा शर्मा / 34
मधु कांकरिया की कहानी कला और उनका वैचारिक संसार
डॉ. इंदू कुमारी / 37
संजीव के 'फाँस' उपन्यास में किसान जीवन
श्वेता जायसवाल / 39
शिवानी की कहानियों में नारी-चरित्र
महेन्द्री कुमारी / 42
किन्नर समाज : तीसरी दुनिया की तीसरी ताली
डॉ. अर्जुन के. तडवी / 44
प्रवासी और भारतीय साहित्य सृजन में गांधीवाद की प्रासंगिकता
अविनाश कुमार वर्मा / 47
आंजणा चौधरी जाति का समाज जीवन
पटेल आकाश कुमार संजय भाई / 50
आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में कृषि संस्कृति
गौरव सिंह / 52
कक्षा 12 में अर्थशास्त्र विषय के पाठ्यक्रम का विश्लेषणात्मक अध्ययन
शोध श्रीमती शक्ति साहू / 55
ओरछा के भित्ति चित्रों का चित्रात्मक अध्ययन
भक्ति अग्रवाल / 59
संत दरियाव की वाणी : वर्तमान प्रासंगिकता
मनीष सोलंकी / 62
कुबेरनाथ राय के निबंधों में वर्णित राम
सुजाता कुमारी / 65
राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारिता एवं गाँधीजी का प्रभाव
डॉ. कोमल आहिर / 68
मास मीडिया का समाज में प्रभाव
पटेल धाराबेन पी. /71
श्रीमद्भागवत में योग-साधना की आध्यात्मिक महत्ता
डॉ. ज्योत्सना सी रावल / 73
सल्तनतकाल में भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन
संदीप कुमार राजपूत / 76
Diabetes, test, Diagnosis Diabetes Risk & Care
Dr. Chhayaben R. Suchak / 79
Programme To Increase The Aptitude For English
Katara Sejalbahen Nathubhai / 82
Social Value of Parents and Children in Joint and Nuclear Families
Dr. Harshadkumar R. Thakkar / 85
Exploring Indian Mythology in Modern Scenario
Patel Sitaben Kalubhai / 88
Freedom Of The Press And The Human Rights
Dr Manishkumar Ramanlal Pandya / 91
People In The Raj Quartet- A Study
Jyoti Yadav / 94
Public-Private Sector Composition In Indian Economy
Nidhi Tewatia / 97
Impact of Goods and Services Tax in Retail Sector
VVV. Satyanarayan / 101

संपादकीय

मिलते हैं विश्व पुस्तक मेले में

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

नई दिल्ली के विश्व पुस्तक मेले का अपना आकर्षण है। पिछले साल यह मेला आयोजित होते-होते टल गया था, क्योंकि उसी समय कोरोना ने अपने लौटने की दस्तक दे दी थी। जब तीन साल पहले यह पुस्तक मेला आयोजित किया गया था, उस समय सारे विश्व में कोरोना की आहट सुनाई दे रही थी। जनवरी 2020 में नई दिल्ली पुस्तक मेला आयोजित किया गया और मार्च 2020 में सारी दुनिया कोरोना की चपेट में आ गई। जिस समय पुस्तक मेला चल रहा था, उस समय चीन में कोरोना अपना शिकंजा कस चुका था। भारतीय उसे एक सामन्य बीमारी मान कर चल रहे थे। मगर उसके बाद पता चला कि बीमारी कितनी असमान्य थी। ख़ैर अब 2023 में फरवरी में एक बार फिर पुस्तकों का यह उत्सव दिल्ली में मनाया जाएगा। कोरोना के बाद का यह पहला पुस्तक मेला है। पिछले साल जब मेला अंत में स्थगित हुआ, तब बहुत से निर्णय आयोजकों ने ऐसे लिए थे, जिनके कारण छोटे प्रकाशकों को स्टॉल के लिए अधिक भुगतान करना पड़ रहा था। स्टॉल्स को क्लब करने या जोड़ने की सुविधा हटा ली गई थी, इसके कारण ही छोटे प्रकाशक परेशान थे। लेकिन पिछले साल तो मेला ही नहीं हो पाया और इस साल आयोजक ने एक बार फिर स्टॉल जोड़ने की सुविधा प्रदान कर छोटे प्रकाशकों को राहत प्रदान की है। इस बार का मेला इसलिए भी विशेष है कि इस बार यह मेला नवीनीकरण के बाद तैयार हुए प्रगति मैदान पर लगाया जाएगा। प्रगति मैदान के दूर से ही दिखाई देने वाले बड़े-बड़े मंडप अब नहीं हैं, उनकी जगह अत्याधुनिक रूप से तैयार किए गए हॉल हैं। 2020 में जब विश्व पुस्तक मेला आयोजित किया गया था, तब पूरे प्रगति मैदान में निर्माण कार्य चल रहा था। जगह-जगह तोड़-फोड़ चल रही थी। अब प्रगति मैदान तैयार हो चुका है। नव सुसज्जित इस प्रगति मैदान में पुस्तकों का पहला कुंभ भराएगा। नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले का इंतज़ार सभी को रहता है। पाठकों को, लेखकों को, प्रकाशकों को, सभी को। यह पुस्तक मेला एक प्रकार से मेलजोल का प्रमुख अवसर होता है। देश भर के लेखक दिल्ली पहुँचते हैं पुस्तक मेले में शिरकत करने। जब इंटरनेट पर एक पूरा का पूरा बाज़ार उपलब्ध हो गया है, आप अपने मोबाइल पर एक इशारे से जो पुस्तक चाहें वह ख़रीद सकते हैं, तब भला पाठक क्यों आता है पुस्तक मेलों में ? वह आता है पुस्तकों को महसूस करने। इंटरनेट की दुनिया एकदम आभासी दुनिया है, जहाँ कुछ भी महसूस नहीं किया जा सकता। पुस्तकों की ख़ुशबू, उनको छूकर महसूस करने के लिए तो पाठक को पुस्तकों तक ही जाना पड़ेगा। और फिर इस बात की भी संभावना रहती है कि वहाँ उसे अपने पसंदीदा लेखक से मिलने का भी अवसर होगा। बार-बार यह कहा जाता है कि पाठक समाप्त हो रहे हैं, किताबें अब नहीं बिकतीं, लेकिन उसके बाद भी हर साल पुस्तक मेले में पाठकों की भीड़ पहले से ज़्यादा होती है। ऐसे में यह कहना कि पाठक तो एकदम ही समाप्त हो गया है, अब किताबें नहीं बिकतीं, ज़रा ठीक नहीं है। नई दिल्ली का यह पुस्तक मेला इस बार ठीक समय पर भी हो रहा है। हर साल यह मेला जनवरी के पहले ही सप्ताह में आयोजित किया जाता था, जिस समय दिल्ली में ठंड अपनी चरम सीमा पर होती है। बाहर से आने वाले लोगों के लिए इस मौसम में दिल्ली जाना किसी परीक्षा से कम नहीं होता था। इस बार पुस्तक मेले को जाती हुई सर्दियों के गुलाबी से मौसम में आयोजित करने का जो निर्णय लिया गया है, वह स्वागत योग्य है। इस कारण इस बार बाहर के अतिथि अधिक संख्या में दिल्ली पहुँच सकेंगे। शिवना प्रकाशन भी इस बार नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में पहुँच रहा है। शिवना की कोशिश यह रहती है कि शिवना के स्टॉल में रूप में लेखकों को अपना एक स्टॉल मिले, जहाँ बैठ कर वे बतिया सकें, साहित्य की चर्चा कर सकें। तो मिलते हैं 25 फरवरी से 5 मार्च के बीच में शिवना प्रकाशन के स्टॉल पर नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेले में...। **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

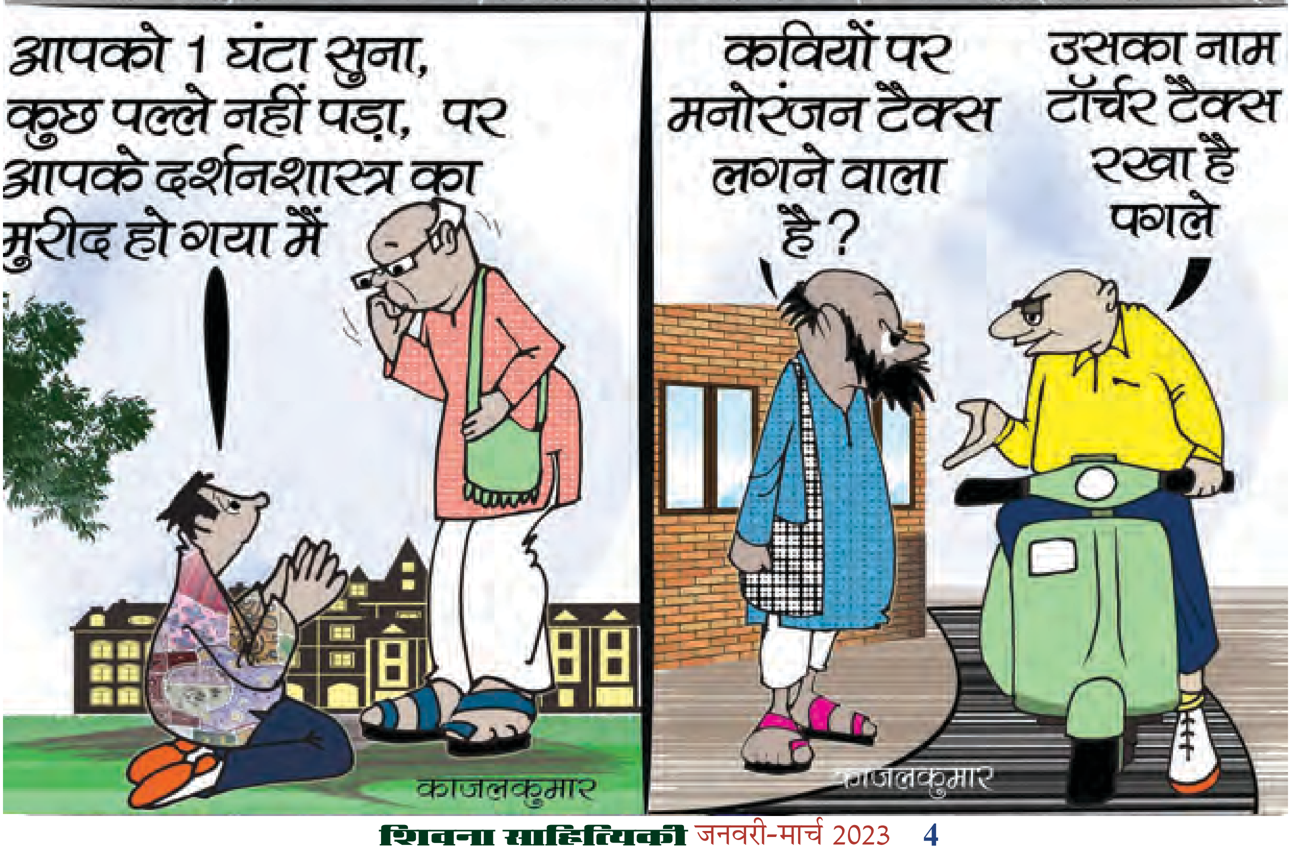

शोध-आलोचना

एब्सर्ड नाटक और 'तीन अपाहिज'

संज्ञा उपाध्याय

डॉ. संज्ञा उपाध्याय
107, साक्षरा अपार्टमेंट्स
ए-3, पश्चिम विहार,
नयी दिल्ली-110063
मोबाइल- 9818184806

हिन्दी साहित्य में एकांकी विधा का आरंभ नाटक के साथ-साथ ही देखने को मिलता है। हिन्दी में नाट्य लेखन की शुरुआत करने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'अंधेर नगरी' जैसा त्वरित गति से घटित होने वाला छोटा नाटक लिखा। भारतेंदु मंडल के कई लेखकों ने सामाजिक बुराइयों पर छोटे-छोटे नाटक लिखे, जो प्राय: व्यंग्य का स्वर लिये हुए होते थे। भारतेंदु के बाद हिन्दी की नाट्य लेखन परंपरा को विकसित करने वाले लगभग सभी नाटककारों ने एकांकी लिखे। जयशंकर प्रसाद, रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, लक्ष्मी नारायण लाल, उदय शंकर भट्ट, जगदीश चंद्र माथुर, लक्ष्मी नारायण लाल, उपेंद्र नाथ अश्क, मोहन राकेश आदि ने एकांकी विधा को विकसित और समृद्ध किया।

पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि विभिन्न विषयों को प्रभावशाली ढंग से उभारने के लिए इन एकांकियों में विषय-वस्तु के अनुरूप तरह-तरह के शिल्पगत प्रयोग भी मिलते हैं। कहीं मिथकीय-पौराणिक-ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से अपने समय के प्रश्नों को उठाया गया है; कहीं हास्य-व्यंग्य का सृजनात्मक प्रयोग कर आधुनिक जीवन की विसंगतियों को उजागर किया गया है; कहीं फैंटेसी का सहारा लेकर, तो कहीं बिलकुल यथार्थवादी ढंग से समकालीन समस्याओं को उभारा गया है।

इन्हीं में से एक शिल्प है एब्सर्डिटी यानी असंगति। भुवनेश्वर के एकांकी 'तांबे के कीड़े' को हिन्दी का पहला असंगत नाटक माना जाता है। यह एकांकी 1946 में प्रकाशित हुआ। विश्व साहित्य में प्रसिद्ध हुए एब्सर्ड नाटकों से पहले ही भुवनेश्वर का यह एकांकी आ चुका था। हिन्दी नाटक के संदर्भ में जब असंगत नाटक की बात होती है, तब भुवनेश्वर के 'तांबे के कीड़े' के साथ जिस एकांकी की सबसे अधिक चर्चा होती है, वह है विपिन कुमार अग्रवाल का 'तीन अपाहिज'। यह एकांकी 1969 में प्रकाशित हुआ। 'तीन अपाहिज' एकांकी पर चर्चा करने से पहले आवश्यक है कि असंगत नाटक को समझ लिया जाए।

1950 तथा 1960 के दशक में एब्सर्ड साहित्य पश्चिम में आधुनिक साहित्य के अन्य आंदोलनों की तरह सामने आया। द्वितीय विश्वयुद्ध में दुनिया विध्वंस के जिस अनुभव से गुज़री, उससे मनुष्यता के सामने एक बड़ा संकट पैदा हुआ। जीवन का अर्थ ही जैसे खो गया। भयावह वर्तमान ने भविष्य के सारे स्वप्न-चित्र और खाके मानो मिटा दिये थे। मनुष्य-जीवन बेतुका, निरुद्देश्य, सारहीन तथा अर्थहीन होकर रह गया था। मनुष्य और जीवन की तर्कपूर्ण संगति समाप्त-सी हो गई थी। असंगति उस दौर का मूल भाव हो गई। जीवन की असंगति साहित्य और कलाओं में भी असंगति के माध्यम से ही व्यक्त हुई। बहुत-से लेखकों-विचारकों ने एब्सर्ड या असंगत को समझने-समझाने का प्रयास किया, लेकिन इसे सबसे पहले सैद्धांतिक रूप से एक दर्शन के तौर पर प्रस्तुत किया अल्बेर कामू ने। उनके लिए असंगति न तो केवल एक भाव है, न ही कोई एक अहसास और न ही नाटकीय प्रभाव पैदा करने वाला एक विषय। कामू के लिए यह एक दार्शनिक प्रश्न है, जो हर मनुष्य के सामने उपस्थित है। प्रश्न यह है कि क्या यह जीवन जिये जाने योग्य है, जब मनुष्य का अस्तित्व ही निरर्थक हो गया है। 1941 में लिखे गए उनके निबंध 'दि मिथ ऑफ सिसिफस' में पूरी परिस्थिति के साथ यही ठोस दार्शनिक प्रश्न उभरता है।

कामू के इसी निबंध से प्रभावित यूरोप और अमरीका के कुछ नाटककारों ने जीवन की निरर्थकता और बेतुकेपन को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया। उन्होंने मनुष्य और जीवन के बीच की तार्किक संगति के समाप्त हो जाने को अपने नाटकों में न केवल विषय-वस्तु, बल्कि उसकी प्रस्तुति की युक्ति के रूप में भी प्रयुक्त किया। नाटक से कहानी का गायब होना, भाषा से संदर्भों का गायब होना, पात्रों का चारित्रिक विशिष्टताओं से हीन होना -यानी नाटक की पहले की परिचित संरचना को ही पूरी तरह ध्वस्त कर देना असंगत नाटक के रूप में सामने आया। ब्रिटिश आलोचक मार्टिन एस्लिन ने 1961 में अपनी पुस्तक 'एब्सर्ड ड्रामा' में सबसे पहले 'थियेटर ऑफ दि एब्सर्ड' पद का उपयोग किया। उन्होंने ही सैमुएल बैकेट, ज्यां जेने, आर्थर एदामोव, हेरोल्ड पिंटर आदि को एब्सर्डिस्ट नाटककारों के रूप में पहचाना।

एस्लिन ने अपनी पुस्तक ''थियेटर ऑफ दि एब्सर्ड' में असंगत नाटक को परिभाषित करने और उसकी संरचना को समझने का प्रयास भी किया है। असंगत नाटक की परिभाषा देते हुए वे लिखते हैं,

"The Theatre of the Absurd strives to express its sense of the senselessness of the human condition and the inadequacy of the rational approach by the open abandonment of rational devices and discursive thought." 1

आगे वे असंगत नाटक की विशिष्टताओं को उसके सामाजिक-राजनीतिक संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए बताते हैं कि यह नाटक चरित्र-विरोधी (aAnti-character), भाषा-विरोधी (Anti-language), कथानक-विरोधी (Anti-plot) और नाटक-विरोधी (Anti-drama) है। वे बताते हैं कि हर तरह की संरचना के विरोधी इस नाटक की भी आख़िर एक संरचना तो है ही। वह संरचना एक वृत्त सी है, जिसका कोई सिरा नहीं।2

ये सभी विशिष्टताएँ विद्रोह का भाव लिये हुए हैं। ध्वंस की जिन परिस्थितियों में असंगत नाटक की शुरुआत होती है, उनमें सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक— हर तरह की संरचना के विरुद्ध विद्रोह ही जन्म ले सकता था।

हिन्दी में असंगत नाटक की शुरुआत पश्चिम की नकल से नहीं हुई। भुवनेश्वर के जिस एकांकी 'तांबे के कीड़े' को पहले असंगत एकांकी के रूप में पहचाना गया, उसकी रचना बैकेट, जेने तथा पिंटर के प्रसिद्ध एब्सर्ड नाटकों से पहले ही हो चुकी थी। इन सबके बाद 1969 में प्रकाशित होने वाला विपिन कुमार अग्रवाल का एकांकी ''तीन अपाहिज' एस्लिन की असंगत नाटक की संरचना की सभी विशिष्टताएँ लिये हुए है। लेकिन इसकी अंतर्वस्तु विशुद्ध भारतीय परिस्थितियों से उपजी है। आज़ादी के बाद के कुछ वर्ष नये मनुष्य, नयी उम्मीदों और नये स्वप्नों के साथ देश के नवनिर्माण के वर्ष थे। जिस उत्साह और भरोसे के साथ सभी एकजुट होकर इस राह पर चल पड़े थे, वह उत्साह कुछ वर्षों में शिथिल पड़ने लगा और भरोसा टूटने लगा। 'यह आज़ादी झूठी है, देश की जनता भूखी है' जैसे नारे सुनायी पड़ने लगे। 1960 के बाद की कविता-कहानी में भी स्वप्न भंग और मोहभंग के स्वर मुखर होने लगे। अकविता-अकहानी का दौर आया, जिसमें कविता-कहानी की संरचना से इनकार किया जाने लगा। इसी साठोत्तरी समय में विपिन कुमार अग्रवाल ने 'तीन अपाहिज' एकांकी लिखा।

'तीन अपाहिज' में तीन पुरुष हैं—कल्लू, खल्लू और गल्लू। एकांकीकार ने उन्हें ''अपाहिज-से'' कहा है। एकांकी के आरंभ में आधा दिन गुज़र चुकने के बाद तेल के एक लैंप के नीचे बैठे कल्लू, खल्लू और गल्लू दिखायी देते हैं। उसी लैंप के नीचे निरुद्देश्य बैठे वे बेतुकी बातें करते हैं। कभी बैठे से लेटे होते हैं और कभी उठने को होते हैं। और अंत में उसी लैंप के नीचे ही रात हो जाती है। कहने का अर्थ यह है कि सुनाने के लिए इस एकांकी की कोई कहानी नहीं है। कहानी यहाँ से गायब है। कहानी की जगह है जीवन की वह विसंगति, जिसमें कल्लू, खल्लू और गल्लू फंसे हैं। यहाँ उनकी बेतुकी बातें हैं और हरकते हैं। उन्हीं के तालमेल से पाठकों/दर्शकों के सामने वह स्थिति खुलती है, जिससे यह एकांकी उपजा है। वह स्थिति है आज़ादी के बाद के उस हताश दौर की, जिसमें युवाओं के सामने कोई भविष्य स्वप्न नहीं है, व्यवस्था के नाम पर अराजकता है, नेताओं की भाषणबाज़ियाँ हैं, आज़ादी एक निरर्थक शब्द मात्र है। ऐसी निराशाजनक परिस्थिति में तीन पुरुष एक ही जगह बैठे-लेटे सारा दिन गर्क किया करते हैं।

नेमिचंद्र जैन, जिन्होंने एकांकी को लघु नाटक कहा, अपनी पुस्तक 'नये हिन्दी लघु नाटक' की भूमिका में लिखते हैं—''विपिन कुमार अग्रवाल के नाटकों में आज के राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक जीवन की आत्मवंचना, ढोंग और दिशाहीनता को उधेड़ा गया है। 'तीन अपाहिज' में स्वाधीनता के बाद पूरी पीढ़ी के अपाहिज बना दिये जाने की हालत दिखायी गई है। तीनों अपाहिज बड़े तीखे ढंग से सारी व्यवस्था और मानवीय आधारों के टूट जाने की स्थिति को पेश करते हैं।3

शारीरिक और मानसिक रूप से पूरी तरह दुरुस्त ये तीनों पात्र परिस्थितिवश 'अपाहिज' हैं। अपनी बुद्धि, योग्यता और क्षमता का स्वयं और समाज के लिए किसी भी तरह सार्थक उपयोग करने के अवसरों और परिस्थितियों का न होना उन्हें अपाहिज बनाता है। इस त्रासद स्थिति को एकांकी हास्यास्पद बनाकर प्रस्तुत करता है, जिससे इसका तीखापन और बढ़ जाता है। जीवन का हर पहलू किस प्रकार उपहास करने की चीज़ हो गया है, बहुत-से संवादों से यह बात उभरती है। उदाहरण के लिए 'आज़ादी' का जिक्र दो जगह आता है और उपहासात्मक ढंग से ही आता है :

खल्लू : तो कल्लू ऐसी भाषा क्यों बोलता है?

गल्लू : उसकी मर्जी। अब हम आज़ाद हैं।

खल्लू : खाक।

कल्लू : (अपने उपर आक्रमण मानकर) क्या कहा!

खल्लू : खाक।

कल्लू : खाक...खा...क...(सिर हिलाता है, मानो संबंध न समझ पा रहा हो।)

खल्लू : अब बोलो बच्चू!

गल्लू : हम लोग जब मिलकर बैठते हैं, तो लड़ते क्यों हैं?

खल्लू : क्योंकि हम आज़ाद हैं। हि...हि...हि...!4

अथवा

खल्लू : कल्लू!

कल्लू : हाँ!

खल्लू : हम कब आज़ाद हुए?

कल्लू : यही टिल्लू की उम्र समझ लो।

खल्लू : कोई दस साल का होगा, कुछ उपर।

कल्लू : और क्या।

खल्लू : तो आज़ाद अभी बच्चा है। हम बच्चा कैसे बन सकते हैं?

गल्लू : आज़ाद बच्चा नहीं, देश है।

खल्लू : देश बच्चा कैसे बन सकता है?

कल्लू : अपनी किस्मत से!5

एकांकी के इन उद्धरणों में तीनों पात्र

आज़ादी का उपहास करते दिखायी देते हैं। पार्श्व में चल रहे भाषण की आवाज़ में आगे सुनायी देता है-"हमारे प्रधानमंत्री ने कहा है कि अब हमें काम करना चाहिए। खाली हाथों नहीं बैठना चाहिए।" शब्द जो कह रहे हैं, उससे उलट मंच पर तीनों पात्र खाली हाथ बैठे दिखायी देते हैं। इस प्रकार भाषण, पात्रों के ये संवाद और उनका निष्क्रिय बैठे रहना--यह सब मिलकर तत्कालीन भारतीय समाज की विसंगति को सामने लाता है।

अपने एक लेख 'नाटक : कैसा, क्यों ओर किसके लिए' शीर्षक लेख में विपिन कुमार अग्रवाल लिखते हैं, "जब नाटक में हरकत और भाषा का आमना-सामना होता है, तब शब्दों के प्रयोग के कई अर्थ खुलते हैं। जो सामने है, उसे नाम देना पहला स्तर है। जो सामने नहीं है, उसे पुकारना दूसरा स्तर है। जो सामने है, पर शक्ल बदले है, उसे भेदकर नाम देना तीसरा स्तर है। हरकत कुछ और हो और उसके भाव को पकड़कर नाम कुछ दूसरा दिया जाए, तब शब्द का तीसरा अर्थ खुलता है और यह नाटक में सहज ही लाया जा सकता है।"6

भाषा और हरकत का यह आमना-सामना इस एकांकी में निरंतर पाठक/दर्षक के सामने उस छिपे हुए अर्थ का उद्घाटन करता चलता है, जो इसका मंतव्य है। एकांकी का आरंभ ही इस तरह होता है :

कल्लू : (उठने का उपक्रम करते हुए) चलो!

खल्लू : चलो क्या?...कैसे चलें?

कल्लू : (झींककर उठना बंद करता है) उठकर।

खल्लू : ओ, उठकर! (और आराम से बैठ जाता है।)7

भाषा में 'चलो' शब्द और बैठ जाने की हरकत की भाषा का मिलना आगे चलने की प्रेरणा समाप्त हो जाने और समाज की गति अवरुद्ध हो जाने के अर्थ को उजागर करता है। इसी तरह टूटे पहिये का प्रसंग भी समाज की गतिशीलता के टूट जाने को उभारता है।

समाज की विसंगतियों को व्यक्त करने में हरकत की भाषा के प्रयोग पर अपने लेख 'नये नाटक के जन्मदाता : भुवनेश्वर' में विपिन कुमार अग्रवाल लिखते हैं—""यदि शब्द झूठे पड़ गए हैं, तो हमें हरकत की भाषा का सहारा लेना पड़ेगा। हरकत की भाषा हमारे जीवन का अंग है। कभी हम हरकतें ज़्यादा करते हैं और कभी बोलते अधिक हैं। दोनों का संतुलन ही पूरी भाषा है। पर जब एक पर से आस्था उठ जाती है, तब दूसरी उसकी जगह ले लेती है। आज लगता है, बहुत-से शब्द अर्थ खो बैठे हैं या संप्रेषण के लिए फाज़िलमय हो गए हैं। इनके सहारे हम कहना कुछ चाहते हैं, कह कुछ और जाते हैं। इसलिए हरकत की भाषा का सहारा लेना अनिवार्य हो गया है।"8

बेतुके संवादों की भाषा इस एकांकी में संदर्भ से जुड़कर विशिष्ट अर्थ पा लेती है। विपिन कुमार अग्रवाल अपने पाठक/दर्शक से उस विशेष संदर्भ परिचित होने की माँग करते हैं, जो इस एकांकी की बुनावट में बहुत ही छिपे ढंग से मौजूद है। उसकी सहायता के लिए वे तीनों पात्रों के बेतुके और असंगत संवादों में सूत्र के तौर पर कुछ शब्द छोड़ते हैं। आज़ादी, एकता, पहिया, भाषण, लड़ाई, धरती माँ, दोस्त इसी तरह के शब्द हैं। जीवन में उद्देश्यहीनता घर कर गई है, शब्द अपने अर्थ खो बैठे हैं, आपसी अविश्वास बढ़ रहा है, तमाम सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं पर से जनता का भरोसा हट रहा है, नेता सब एक-से हैं, भविष्य-स्वप्न लुप्त हो गया है--यह सब पूरे एकांकी की निर्मिति में बहुत प्रच्छन्न रूप में उपस्थित है। एकांकी के पाठ में इन सबके पाठक से थोड़ा छूट जाने भी खतरे हैं। हाँ, उसकी मंचीय प्रस्तुति में शब्दों और हरकत का यह आमना-सामना प्रत्यक्ष होने से अर्थों का उद्घाटन बेहतर हो सकता है। शब्दों पर बलाघात, शब्दों के बीच हल्का विराम, भाव को व्यंजित करते स्वर और उनके साथ अभिनेताओं की गतिविधियाँ--एकांकी के कथ्य के उस प्रच्छन्न अर्थ को उभारने में ये सब सहायक होंगे।

असंगत नाटक की विषिष्टता ही यह है कि उसके कथ्य और शिल्प में असंगत से ही संगति आती है। कथावस्तुविहीन इस एकांकी के संवादों में कथोपकथन नहीं हैं। अतार्किक बातों का बेतरतीब सिलसिला और संवादों का बेतुकापन जीवन के तार्किक सिलसिले के टूट जाने और उसकी तुक चले जाने को बख़ूबी उभारता है। बहुत जगह संवाद पूरी पंक्ति में न होकर दो-दो तीन-तीन शब्दों के हैं। भाषा की सहज संरचना को तोड़ते। तीनों पात्रों के नाम भी एक-दूसरे में गड्ड-मड्ड हो जाने वाले हैं। नामों से उनकी कोई पहचान उजागर नहीं होती। न ही उनकी कोई चारित्रिक विशिष्टताएँ उभारना एकांकीकार का उद्देश्य है। वह उन्हें अस्तित्व होते हुए भी अस्तित्वहीन ही दिखाना चाहता है।

एकांकी तेल के जिस लैंप के नीचे बैठे तीन पात्रों के साथ शुरू होता है, उसी लैंप के नीचे ही समाप्त हो जाता है। अंतिम पंक्ति है-""रात हो जाती है।" यानी सुबह यहीं से फिर वही सिलसिला शुरू होगा। जैसे जीवन एक वृत्त में चक्कर काट रहा हो। जैसे कोई सिरा न मिल रहा हो भविष्य का, जिसे पकड़कर आगे बढ़ा जा सके। उपर से खिलंदड़े, बेफिक्र, मजाकिया और हास्यास्पद दिखते कल्लू, खल्लू और गल्लू की त्रासद परिस्थिति पाठक/ दर्शक के भीतर बेचैनी और छटपटाहट भर देती है। पात्रों की निष्क्रियता और सिर्फ बातें उसे निरर्थकताबोध का तीखा अहसास कराती हैं। इस तरह भाषा-विरोधी, चरित्र-विरोधी, कथानक-विरोधी और नाटक-विरोधी अपनी असंगत संरचना में यह एकांकी अपने प्रयोजन में सृजनात्मक रूप से सफल होता है।

000

संदर्भ

1 'दि थियेटर ऑफ एब्सर्ड : मार्टिन एस्लिन, एंकर बुक्स, अमेरिका, 1961; पृष्ठ 25, 2 वही, पृष्ठ 28-29, 3 नये हिन्दी लघु नाटक : संपादक : नेमिचंद्र जैन, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया; 1986; पृष्ठ 10, 4 तीन अपाहिज : विपिन कुमार अग्रवाल; लोकभारती प्रकाशन; द्वितीय संस्करण 1982, पृष्ठ 12-13, 5 वही, पृष्ठ 16, 6 वही, पृष्ठ 212-213, 7 वही, पृष्ठ 11, 8 नये नाटक के जन्मदाता : भुवनेश्वर; हिन्दी गद्य विवेचना; संकलन और संपादन जवरीमल्ल पारख।

वंचितों के प्रवक्ता

डॉ. सचिन गपाट

डॉ. सचिन गपाट
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय
महात्मा गांधी रोड, फोर्ट
मुंबई 400032 महाराष्ट्र
मोबाइल 9423641663

नई सदी कई संदर्भों में विशिष्ट है। मानवाधिकारों की पहल इसके वैश्विक अजेंडा के रूप में लक्षित हो रही है। इस दौर में मानवाधिकारों की चर्चा ने आंदोलन का रूप धारण कर लिया है। जो समाज लंबे समय से हाशिए पर था, वंचित था उसे मुख्य धारा में लाने का प्रयास कई स्तरों, आयामों पर तथा माध्यमों द्वारा हुआ है। इसमें साहित्य की भूमिका उल्लेखनीय है। नई सदी के साहित्य ने इस पहल को आंदोलन में परिवर्तित करने के लिए संबल प्रदान किया है। भारतीय साहित्यकरों ने एक ओर हाशिए के समाज की पीड़ा को चित्रित किया है तो दूसरी ओर उनकी चेतना, विद्रोह और प्रतिरोध को। रचनाकारों ने हाशिए पर खड़े समाज को, वंचितों को उनके अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्रवक्ता की भूमिका निभाई है। इन प्रवक्ताओं में पंकज सुबीर अग्रणी हैं। वे नई सदी के सशक्त कथाकार हैं। इन्होंने नई सदी के कथा साहित्य को व्यापकता प्रदान की है। हिन्दी साहित्य में यह नाम अब जाना-पहचान बन चुका है। इनके कथा साहित्य की विवेचना से ही नई सदी के कथा साहित्य की आलोचना संभव है। नई सदी के भारत का यथार्थ चित्रण इनके कथा साहित्य में हुआ है। भारतीय समाज जीवन का पूरा ढांचा इनका कथा साहित्य प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद की तरह इनकी कथा का कैनवास विशाल है। गाँव और शहर के बदले हुए रूप-रंग को इनका कथा साहित्य सूक्ष्मता से अभिव्यक्त करता है। इनके कथा साहित्य की वैचारिकी का आधार मानवीयता है। वे मानवधिकरों के लिए वंचितों के प्रवक्ता की भूमिका अपनाते हैं।

पंकज सुबीर नई सदी के चर्चित और संवेदनशील कथाकार हैं। इनके 'ये वो सहर तो नहीं', 'अकाल में उत्सव' और 'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क पे नाज था' ये तीन उपन्यास तथा 'ईस्ट इंडिया कंपनी', 'महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ', 'कसाब. गांधी @ यरवदा. इन', 'चौपड़े की चुड़ैलें', 'रिश्ते', 'हमेशा देर कर देता हूँ मैं', 'होली' और 'प्रेम' ये आठ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। पंकज जी का यह कथा संसार विचार और संवेदनाओं से अनुप्राणित है। उन्होंने कथाओं के माध्यम से भारतीय समाज के यथार्थ को अभिव्यक्ति दी है। जो समाज सदियों से पीड़ित है, वंचित है और नए दौर में भी शोषित और हाशिए पर है ऐसे समाज को शोषण मुक्त कर मुख्य धारा में लाने की पहल वे कथा साहित्य के माध्यम से करते हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि और किसान भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है। वैश्विक आर्थिक महासत्ता का जो सपना हम देख रहे हैं वह कृषि और किसानों के बिना संभव नहीं है। लकिन नई सदी के दौर में हम देख रहे हैं कि किसान आत्महत्याएँ कम नहीं हो रही हैं। जिसके बलबूते पर हम सपना देख रहे हैं उसका ही अस्तित्व आज संकट में है। वह हालातों से मजबूर होकर फाँसी के फंदे को अपना रहा है। मुख्य आधार होने के बावजूद अब वह मुख्य धार से कटकर हाशिए पर चला गया है। प्रेमचंद जी द्वारा चित्रित वंचित होरी आज आज़ादी के अमृत महोत्सव के बाद भी हमें 'रामप्रसाद' के रूप में दिखाई दे रहा है। ऐसे वंचित, शोषित और समस्याओं के मकड़जाल में घिरे किसान का यथार्थ पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में चित्रित हुआ है। इस संदर्भ में सुशील सिद्धार्थ लिखते हैं, "'गोदान' का होरी किसान से मज़दूर बन गया था, 'अकाल में उत्सव' का रामप्रसाद किसान से भिक्षुक बन जाता है। हमारे देश ने 1936 से 2016 तक इतनी प्रगति की है।"1

यह उपन्यास रामप्रसाद और कमला किसान परिवार के माध्यम से भारतीय किसानों की

पीड़ा को व्यक्त करता है। वर्तमान में किसानों के सामने सबसे बड़ा सवाल अपने अस्तित्व के संकट का है। क्योंकि "सारे हालात तो मर जाने के हैं। जिंदा कैसे रहा जाए ?"2 रामप्रसाद की स्थिति भी ऐसी ही है लेकिन प्रशासन और सरकारी तंत्र उत्सव के आयोजन में व्यस्त है। रामप्रसाद की समस्याओं के प्रति वह उदासीन है। अपनी समस्याएँ वह जब प्रशासन के सामने रखने की कोशिश करता है तब उसे उत्तर मिलता है कि "आपको किसने कहा है खेती करो ? मत करो अगर नुकसान का इतना ही डर है तो। जब कहा ही जाता है कि खेती मौसम के भरोसे खेला जानेवाला जुआ है, तो क्यों खेलते हो इस जुए को? किसी ने कहा है क्या आपसे ? मत करो खेती, कोई दूसरा काम करो।"3 प्रशासन और सरकारी तंत्र की उदासीनता से रामप्रसाद को फाँसी का फंदा अपनाना पड़ता है। रामप्रसाद आत्महत्या कर लेता है। व्यवस्था की उदासीनता यहाँ पर भी ख़त्म नहीं होती बल्कि वह अमानवीयता का रूप ले लेती है। रामप्रसाद की आत्महत्या को किसान की आत्महत्या करार न देते हुए सरकारी तंत्र इसे पागल की आत्महत्या साबित करने में जुट जाता है। मीडिया भी प्रशासन और सरकारी तंत्र का ही साथ देता है। मृत्यु के बाद भी रामप्रसाद को इस शोषण से मुक्ति नहीं मिल पाती। तब सुशील सिद्धार्थ का कथन सार्थक लगता है कि "कौन है जो स्वतंत्र भारत में स्वतंत्रता से वंचित है ?" उत्तर मिलता है रामप्रसाद जैसे किसान ! ऐसे किसानों के प्रवक्ता की भूमिका पंकज सुबीर निभाते हैं और किसान जीवन की समस्याओं को वे उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं साथ ही किसान जीवन की समस्याओं के समाधान भी वे बताते हैं। मुख्य धारा के समाज को वे समझाने की कोशिश करते हैं कि किसान ही समाज को सबसे अधिक सबसीडी सदियों से देता आ रहा है।

पंकज सुबीर समाज में व्याप्त समस्याओं एवं विसंगतियों को बारीकी और बेबाकी से अभिव्यक्त करते हैं। वर्तमान वैश्विक दौर में आज भी लोग जाति, धर्म और संप्रदाय के आधार पर भेदभाव करते हैं। इस भेदभाव की विसंगति को वे 'ईस्ट इंडिया कपनी' कहानी संग्रह की 'कुफ्र' कहानी में चित्रित करते हुए वंचितों की पीड़ा को अभिव्यक्त करते हैं। कहानी में धर्म, संप्रदाय और जाति तथा भूख के बीच का जो संघर्ष है उसे प्रमुखता से व्यक्त किया है। कहानी का प्रमुख पात्र जफर मुस्लिम समुदाय से है। वह उस संप्रदाय से होने के कारण उसे रोज़गार नहीं मिल पाता है। जफर की किस्मत उसके धर्म के सामने हार जाती है। वह रोज़मर्रा की ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाता। धर्म और संप्रदाय के कारण उसे भूखा रहना पड़ता है। कहानी का पात्र विनय कहता है "जब पेट में रोटियाँ छम-छम करके नाच रही हो, तब होता है आदमी हिंदू या मुसलमान वरना तो हम एक ही जात के हैं भूखमरों की जात के। हिंदू या मुसलमान होने का शौक पालना हमारी औकात से बाहर की चीज़ है।"5 जफ़र को धर्म के कारण नौकरी नहीं मिलती। आज ऐसे कई संदर्भ मिलते हैं तथा घटनाएँ दिखाई देती हैं जहाँ केवल व्यक्ति का धर्म, संप्रदाय और जाति देखी जाती है। मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं देखा जाता। जफ़र कहता है कि "जैसे ही मैं अपना नाम बताता हूँ वैसे ही लोगों के माथे पर शिकन पड़ जाती है जैसे मैं मुसलमान ना होकर कोई जानवर हूँ।"6 जफ़र जैसे वंचितों की पीड़ा को पंकज सुबीर अभिव्यक्ति देते हैं। 'रामभरोस होली का मरना' यह कहानी भी इस दृष्टि महत्त्वपूर्ण है।

आज स्त्री पुरुष के साथ हर क्षेत्र में दिखाई दे रही है। लेकिन उसे शोषण से मुक्ति नहीं मिली है। पुरुष प्रधान समाज में उसका कई आयामों पर शोषण हो रहा है। वह आज भी शोषित, वंचित है। पंकज सुबीर स्त्री का पक्ष लेते हुए उसके शोषण को उजागर करते हैं। 'ईस्ट इंडिया कंपनी' कहानी संग्रह की 'तमाशा' कहानी स्त्री विमर्श और चेतना के संदर्भ में उल्लेखनीय है। यह पत्र शैली में लिखी गई कहानी है। एक युवती अपने पिता को पत्र लिखती है क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसकी शादी में वे आए और अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर अपना अधिकार जताए। जिस पुरुष ने उसे 'तमाशा' नाम दिया हो और माँ तथा दादी को उसके कारण बहुत कुछ सहना पड़ा हो ऐसे पिता का वह विरोध करती है। 'महुआ घटवारिन और अन्य कहानियाँ' कहानी संग्रह की 'दो एकांत' कहानी स्त्री जीवन की त्रासदी को अभिव्यक्त करती है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्री को विभिन्न रूपों में स्वीकार किया जाता है लेकिन बेटी के रूप में आज भी समाज अपनाने के लिए तैयार नहीं है। इस विडंबना को वे चित्रित करते हैं। कहानी में एक युवक दादाजी को पूछता है कि सारी लड़कियाँ कहाँ चली गई ? इस पर दादाजी का जवाब विचलित करनेवाला है। वे कहते हैं कि "कहीं नहीं गई, हमने ख़त्म कर दी, हमने। हमने, हम जो दूसरे हर रूप में स्त्री को पसंद करते थे, लेकिन बेटी के रूप में उसे देखते ही हमें जाने क्या हो जाता है?"7 बेटी के रूप में स्त्री को स्वीकृति न देना चिंता का विषय है। इस चिंता को पंकज सुबीर प्रकट करते हैं। 'चौपड़े की चुड़ैलें' कहानी संग्रह में भी स्त्री शोषण का यथार्थ चित्रित हुआ है।

पंकज सुबीर बदलते समय के अनुसार विमर्शों की बदलती स्थितियों को भी चित्रित करते हैं। 'नक्कारखाने में पुरुष विमर्श'. कहानी में वे पुरुष विमर्श पर चर्चा करते हैं। वे कहानी के माध्यम से यह बताते हैं कि आज ऐसे भी कई पुरुष हैं जो पत्नी द्वारा प्रताड़ित हैं। कहानी के मैनेजर साहब पत्नी के तानों और उल्लाहनों से तंग आकर अपने जीवन को पूर्णविराम देते हैं। मैनेजर साहब की पीड़ा के माध्यम से पंकज सुबीर शोषित पुरुषों के शोषण को अभिव्यक्त करते हैं।

पंकज सुबीर वंचितों, शोषितों एवं हाशिए की आवाज को किस्सागोई के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने कथा साहित्य में नई भाषा, नया शिल्प और कई रोचक प्रयोग किए हैं। उनके उपन्यासों और कहानियों की वस्तु और शिल्प दोनों प्रभावी है और कहानी कहने के अंदाज में ऐसा देसीपन और पहचान है कि वह पाठक को भाव व स्थिति की एक नई ज़मीन पर ले जाकर खड़ा कर देती है। पंकज सुबीर की कहानियाँ अक्सर लंबी होती हैं, पर यह कहानियाँ न ऊब पैदा करती हैं और न थकाती हैं। इनकी कहानियाँ पाठकों को बांधे

रखते हैं। इनकी कहानियाँ किस्सों से भरी हुई होती है जो पाठकों को ऊब से बचाती हैं और बांधे रखती हैं। ऐसी सरल, सहज और पात्रानुकूल भाषा के माध्यम से वंचितों की आवाज़ को पाठकों तक पहुँचाते हैं। उनकी मुक्ति के लिए प्रयत्न करते हैं।

पंकज सुबीर नई सदी के ऐसे चर्चित कथाकार हैं जो वंचितों के पक्षधर हैं। उनके शोषण को ख़त्म करने के लिए वे उनकी आवाज़ बन जाते हैं। उनका प्रवक्ता बनकर वे बेबाकी से उनकी समस्याओं का चित्रण करते हैं और अपनी लेखकीय संवेदना का विस्तार करते हैं। साथ ही समस्याओं के निराकरण के लिए सही उपाय भी बताते हैं। पंकज सुबीर का कथा साहित्य मानवीय गुणों से भरपूर है। वे मनुष्यता की स्थापना और विकास के लिए निरंतर प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। वे होरी की तरह रामप्रसाद जैसे पात्र को गढ़ते हैं जो संवेदनाओं को झकझोर कर पाठक को सोचने के लिए विवश करता है। किस्सों के माध्यम से वे किसान, स्त्री, दलित और शोषित समाज का यथार्थ प्रकट करते हैं। उनके द्वारा की गई मानवाधिकारों की साहित्यिक पहल आज आंदोलन बन चुकी है। यह आंदोलन वंचितों को मुख्य धारा में लाने की दृष्टि निश्चित ही सफल होगा, ऐसा विश्वास है।

000

संदर्भ - 1.विमर्श–अकाल में उत्सव (स्थगित समय में फंसे जीवन का आख्यान) – संपा. डॉ. सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन, प्रथम संस्करण – जनवरी 2017, पृ. 25, 2.आख़िरी छलांग – शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2008, पृ. 79, 3.अकाल में उत्सव - पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, संस्करण 2017, पृ. 170, 4.विमर्श – अकाल में उत्सव (स्थगित समय में फंसे जीवन का आख्यान) – संपा. डॉ. सुधा ओम ढींगरा, शिवना प्रकाशन, प्रथम संस्करण – जनवरी 2017, पृ. 25, 5.ईस्ट इंडिया कंपनी – पंकज सुबीर, भारतीय ज्ञानपीठ, संस्करण 2009, पृ. 12, 6.वही, पृ. 12, 7.महुआ घटवारी और अन्य कहानियाँ – पंकज सुबीर, सामयिक प्रकाशन, संस्करण 2012, पृ. 151

पुस्तक समीक्षा

(ग़ज़ल संग्रह)

मेरी माँ में बसी है

समीक्षक : सत्यम भारती

लेखक : डॉ.भावना

प्रकाशक : श्वेतवर्णा प्रकाशन

माँ का संघर्षपूर्ण जीवन, उनका सहचर्य, ममत्व, स्नेह, पात्रता, वात्सल्यता आदि को आत्मसात् करने वाली पुस्तक 'मेरी माँ में बसी है...' श्वेतवर्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुई है। डॉ. भावना द्वारा लिखित यह ग़ज़ल संग्रह 'माँ' के संपूर्ण जीवन संघर्ष की कथा कहने के साथ-साथ संपूर्ण स्त्री जीवन की संवेदनाओं, मुक्ति, संघर्ष, दु:ख, दर्द, पीड़ा, अस्मिता आदि सवालों से जुड़ती नज़र आती है। माँ और पिता के दिए हुए संस्कार जीवन भर उनके औलादों के साथ रहते हैं, जिन्हें यह सभ्य समाज 'संस्कार' की संज्ञा देता है। यह संस्कार माँ के साँचे में ढल कर ही अपना वास्तविक रूप प्राप्त करता है। डॉ. भावना इस पुस्तक में माँ के बनाए गए साँचे, प्रतिमान और उनके संस्कारों को शब्दों में ढालती हैं। माँ, इस स्वार्थी दुनिया में दोस्त और सहचर बनकर हमेशा अपने बेटे और बेटियों का साथ देती हैं। माँ का साथ, स्नेह और आशीर्वाद प्राप्त करके राम भी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम कहलाए, माखनचोर भी द्वारकाधीश बने, गणेशजी देवताओं में अग्रणी कहलाए। माँ का साथ अपनी औलादों को न केवल मंज़िल के उत्तुंग शिखर तक पहुँचाता है बल्कि इस दुनिया को देखने एवं समझने का एक नया नज़रिया भी प्रदान करता है- धीरे-धीरे प्रेमिल ख़त को दुहराऊँ, / आखर-आखर जी लूँ उसमें रम जाऊँ, / साथ तुम्हारा यदि मिल जाए पहले-सा / पहले जैसा स्वर में कोरस मैं गाऊँ। (पृष्ठ संख्या-22)

कला पक्ष पर अगर बात की जाए तो यह पुस्तक भावों के अनुकूल शब्द, रस, बिंब, प्रतीक आदि का प्रयोग करती नज़र आती है। लोक में प्रचलित शब्दावलियों के साथ अंग्रेज़ी, फारसी, उर्दू आदि के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। लोक में प्रचलित दंतकथा, मिथक, गाथा आदि के भाव और सीख भी इन ग़ज़लों में शामिल किया गया है। शब्दों का चयन सरल एवं प्रभावपूर्ण है। प्रतीक और बिंब का नवीन प्रयोग हमें ख़ासा प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए मिथक का प्रयोग देखें- उधर बुत है बनी बैठी अहिल्या / इधर कुछ राम की भी व्यस्तता है। बिम्ब का प्रयोग देखें- उतर आया हो जैसे चाँद घर में / कहीं से लाया है वह बिम्ब टटका।

अंतत: यह कहा जा सकता है कि यह पुस्तक माँ के संपूर्ण जीवन संघर्ष की कथा कहने के साथ-साथ संपूर्ण स्त्रियों के जीवन, उनकी अस्मिता, मुक्ति, संघर्ष तथा संवेदनाओं के साथ जुड़ती नज़र आती है। इस पुस्तक का मुख्य पृष्ठ (कवर) हमें ख़ासा प्रभावित करता है, मानो माँ की संपूर्ण जीवन गाथा रेखाओं और रंगों के माध्यम से उकेर दी गई हो।

000

सत्यम भारती
राजकीय इंटर कॉलेज प्रवक्ता, उत्तर प्रदेश

केंद्र में पुस्तक

(कहानी संग्रह)

ज़िंदगी की सबसे सर्द रात

समीक्षक : डॉ. राकेश शुक्ल
कल्पना मनोरमा
लेखक : कृष्ण बिहारी
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर मप्र 466001

डॉ. राकेश शुक्ल
117/254-ए, पी-ब्लॉक, हितकारी नगर,
काकादेव, कानपुर -208025
मोबाइल- 9839970460
ईमेल- rakeshshukla940@gmail.com

कल्पना मनोरमा
मोबाइल- 8953654363
ईमेल-kalpanamanorama@gmail.com

अकृत्रिम आख्यानों की प्रभावशाली व्यंजना

डॉ. राकेश शुक्ल

कृष्ण बिहारी की कहानियाँ पढ़ते हुए जो बात ज़ेहन में सबसे पहले आती है, यह कि उनका सृजनात्मक मन सामयिक या तात्कालिक महत्त्व के विषयों को भी अनूठे शिल्प में ढाल लेता है। उन्हें कथानक की तलाश नहीं करनी पड़ती है। टॉलस्टॉय के शब्दों में, "कथानक सदा जीवन के कोलाहल से, वर्तमान समय के जीवंत अंतर्विरोध से उत्पन्न होता है। यह किसी सामाजिक अंतर्विरोध के प्रकटीकरण की चाबी है।" उक्त कसौटी पर कृष्ण बिहारी की कहानियाँ खरी उतरती हैं। ये जीवन की तरह ही स्वाभाविक और अकृत्रिम आख्यानों की प्रभावशाली व्यंजना हैं। फ़ार्मूलाबद्धता से रहित सहजता उनकी कला की पहचान है।

'ज़िंदगी की सबसे सर्द रात' उनका सोलहवाँ कहानी संग्रह है, जिसमें शामिल दस कहानियाँ जीवन के अलग-अलग रंगों को पूरी कलात्मकता से अभिव्यक्त करती हैं।

'डुबकी' में गाँव के लोक-जीवन और वहाँ के अनुभवों की विराट् सम्पदा है। कमला अर्थात डुबकी का जीवन गाँव में बहती आमी नदी के बिना अधूरा है। कथाकार के शब्दों में, "आमी के पानी को कमलिया से प्यार हो गया है, या कमलिया पानी में जल की रानी हो गई है यह बता पाना कठिन था।" लोक दृष्टि सम्पन्न कहानीकार ने नदी के प्रति एक अंत्यज तथा अशिक्षित युवती के जिस आत्मीय अनुराग को व्यक्त किया है, वह अद्‌भुत है। सिकहरा ताल से निकलने वाली आमी नदी में डुबकी लगाकर उस पार निकल जाने वाली कमलिया का जब गौना होता है तो वह दु:खी होकर अपने पिता से कहती है, "बाबू... नद्दी बिना हम कइसे जीयब?" हम कह सकते हैं कि एक स्त्री भी नदी की तरह होती है, क्योंकि उसमें भी नदी जैसी शीतलता और सृष्टि को सम्पन्न करने का गुण विद्यमान है। मनुष्य सभ्यता के विकास क्रम में नदियाँ हमारी प्राण- धाराएँ रही हैं, यह विद्वानों के विमर्श का विषय हो सकता है, पर लोक जीवन में उनका कितना महत्त्व है, यह इस कहानी से सिद्ध होता है।

"जब पहले की तीन शादियों से ख़ुशी नहीं मिली तो चौथी से मिलेगी, इसकी क्या गारण्टी है?" खाड़ी- देश की राजधानी में नार्थ- ईस्ट ट्रेडर्स की एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में कार्यरत महक शुक्ला के जीवन, मन:स्थितियों तथा अस्तित्व की जद्दोजहद के साथ उसके हर्ष- विषाद को दर्शाती यह कहानी कॉँट्रेक्ट-मैरिज -जैसे सवालों को भी बड़ी शिद्दत से उठाती है। हर प्रकार से सुखी-सम्पन्न, लाखों डॉलर के पैकेज वाले आज के युवाओं के दाम्पत्य या अन्य पारिवारिक, रागात्मक सम्बन्ध अत्यंत खोखले हो गए हैं; इस खालीपन को भरने की कवायद सारी ज़िंदगी चलती रहती है। कहानी में भारतीय और पाश्चात्य परम्पराओं तथा जीवन-मूल्यों के अंतर्विरोध की व्यंजना के साथ ख़ासा बौद्धिक विमर्श भी है। इसे पढ़ते हुए महसूस होता है कि यदि कहानी को ज़िंदगी का प्रतिरूप मान लें, तो ज़िंदगी जितनी संघर्षशील, द्वंद्वात्मक, रहस्यमय और दार्शनिक चीज़ है; उतनी ही कहानी भी। तभी तो कथाकार का यह कथन कितना प्रासंगिक है, "कभी-कभी कहानियाँ और कभी-कभी जीवन एक-दूसरे के सामने चुनौती बनकर खड़े हो जाते हैं। तय करना मुश्किल हो जाता है कि दोनों में आश्चर्यजनक कौन है? रेगिस्तान के बीच जबरन खिलाए गए फूलों को जिस तरह हरदम जीवित नहीं रखा जा सकता उसी तरह जीवन के साथ अपनी मनमानी नहीं चलती। कुछ बातें ऊपर वाले पर छोड़कर मुक्त हो लेना चाहिए। क्योंकि कुछ सवालों के जवाब कभी नहीं मिलते।"

कृष्ण बिहारी जी रोज़मर्रा की सामान्य-सी घटनाओं पर भी सार्थक कहानियाँ लिख लेते हैं। इनमें जो यथार्थ व्यंजित होता है; उसमें मानवीय भाव-बोध है। 'बादशाह' का रिक्शाचालक सचमुच का बादशाह है, जो न सिर्फ़ रोज़ कथानायक के हालचाल पूछता है; बल्कि गंतव्य पर पहुँचकर उसके द्वारा पैसे दिए जाने पर यह कहना नहीं भूलता कि, "बाबू जी, पैसे न हों तो न दें, और.. पैसे चाहिए तो हम दें आपको।"

'अकेला चना' सिर्फ़ खाड़ी-देशों में स्कूलों के प्रबंधतंत्र की मनमानी और तानाशाही की

कहानी नहीं, बल्कि सभी पब्लिक स्कूलों की कहानी है, जहाँ एक शिक्षक अपने अधिकारों के लिए लड़ता है। सिर्फ़ अपने लिए नहीं; वह उन सबके लिए लड़ता है, जो लड़ाई के लिए कभी हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। इस कहानी में खाड़ी-देशों के विकास की अन्तर्कथा भी बड़ी रोचक है, जहाँ कभी कबीलाई संस्कृति थी। आपस में मारकाट होती थी। और जहाँ के लोग कभी समुद्री लुटेरे थे, वहाँ तेल क्या निकला कि दुनिया भर की कम्पनियाँ उसे निकालने दौड़ पड़ीं, और पेट्रो-डॉलर के चलते 'कल के लुटेरे- भिखारी आज के रॉयल फ़ैमिली हो गए।' कहानीकार का बहुत-सा समय नौकरी के दौरान यू. ए. ई. में बीता है, इसलिए वहाँ के सामाजिक जीवन, विशेषकर प्रवासी भारतीय समाज का बहुत ही बारीक विश्लेषण है। शुष्क या नीरस विषयों पर रोचक कहानियाँ रचनाकार की कलात्मक उत्कृष्टता का उदाहरण है।

'सेन चाइल्ड' में विद्यार्थियों की निरंकुशता की समस्या को उठाया गया है। कक्षा में अनुशासन न हो तो, और किसी विद्यार्थी को डाँट दें तो भी शिक्षक की नौकरी जाना तय है। कहानीकार के शब्दों में, "फ़ाख़्ता हुए वे दिन जब प्रिंसिपल और स्कूल मैनेजमेंट अपने शिक्षकों के मान-सम्मान को सबसे ऊपर रखते थे, और बच्चों के माँ-बाप भी गुरु जी का सम्मान करते थे। मगर अब वह ज़माना बीत गया।" ऐसे में एक तथाकथित सेन चाइल्ड की अजीबोग़रीब हरकतें सारे स्कूल के लिए चिंता का सबब बनती हैं। कुतूहल से परिपूर्ण यह कहानी आज की शिक्षा व्यवस्था पर भी करारा व्यंग्य करती है। अपने कथ्य और शिल्प में भी यह बेहतरीन है।

कृष्ण बिहारी की कहानियों में अनुभव का वैविध्य है। प्रवासी भारतीयों के सामाजिक जीवन की जैसी अभिव्यक्ति उनकी उनकी कलम से हुई है, अन्यत्र नहीं दिखाई देती। उनकी जीवन-दृष्टि और मानवीय सरोकार इन कहानियों को सार्थकता प्रदान करते हैं। 'दो लाख का थप्पड़' में रूम पार्टनर दो मित्रों के बीच होने वाला छोटा-सा झगड़ा कैसे 'तिल का ताड़' बन जाता है। इसे रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'सर्वप्रिया' भी उसी परिवेश की कहानी है, जिसका कथानक विस्तृत है। अंतरराष्ट्रीय या वैश्विक परिदृश्य के उत्तर आधुनिक समाज की सांस्कृतिक-दृष्टि तथा धर्म के संकीर्ण दायरे में स्त्री-मुक्ति का कुछ हद तक प्रतीक है कथानायिका सूडानी मूल की सैली, जो इस्लाम को मानती है; पर मुस्लिम सम्प्रदाय के ढकोसलों की हँसी भी उड़ाती है। मूल्य-संक्रमण के दौर में कहानीकार ने भारतीय जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता को भी दर्शाया है। कथानायक के शब्दों में, "मैं पूछना चाहता था कि क्या अनकल्चर्ड को सभ्य नहीं बनाया जा सकता? मैं बताना चाहता था कि हिंदुस्तान में यदि तीन तलाक देने की सुविधा सबको मिल जाए, तो पच्चानबे प्रतिशत शादियों का भविष्य एक मिनट से भी कम समय में तय हो जाए। लेकिन ऐसा न होने के कारण ही तलाक जैसी बात कभी-कभी ही सुनने में आती है। हिंदुस्तानी लोग शादी को निभा ले जाने में ही रिश्तों का महत्त्व समझते हैं।"

मानवीय-पक्षधरता के कारण इन कहानियों में संवेदना का ताप है। 'कीमा' के एम.ए. बी एड. बेरोजगार यूसुफ़ को उसका ससुर खाड़ी-देश ले आता है, जहाँ उसकी लॉन्ड्री है, लेकिन वह तो अपनी अभिरुचि का कार्य शिक्षण करना चाहता है। विडम्बना यह कि वहाँ उसे स्कूल-बस की क्लीनरी करनी पड़ती है। उसे बस तथा स्कूल के क्लास रूम्स और टॉयलेट तक साफ़ करने पड़ते हैं। और एक दिन कथानायक की सलाह पर वह अपने देश में ही रूखी-सूखी खाने, और प्रतीक्षारत तथा पत्नी तथा परिवार की मुहब्बत को महत्त्व देता है।

'अभागी' में कोरोना-काल में एक कामवाली की व्यथा-कथा, उसकी यातना और पीड़ा को पढ़ते हुए हमारी आँखें सजल हो जाती हैं। किसी की सहायता लेने पर एक सुंदर स्त्री का आशंकित होना स्वाभाविक ही है। ऐसे में एक निश्छल बुज़ुर्ग द्वारा पैसा वापस न किये जाने की शर्त पर किया गया आर्थिक सहयोग, कुछ दिन बाद जिनकी कोरोना से मृत्यु हो जाती है, आदि विवरण इस कहानी को अपूर्व ऊँचाई प्रदान करते हैं।

शीर्षक कहानी 'ज़िंदगी की सबसे सर्द रात' मार्मिक प्रेम कथा है, असफल प्रेम कथा। फ़्लैशबैक में चलती यह प्रेम कहानी हमारे अंत:करण को आलोड़ित करती है। बेपनाह मोहब्बत करने वाले एक जोड़े की सहजीवन में परिणति न हो पाना। प्रेम-स्मृतियों की पूँजी सम्हाले कथानायक का आजीवन एकाकी रहना, और प्रेयसी वेदांगी का पति की निरन्तर उपेक्षा और प्रताड़ना से अन्तत: विक्षिप्त हो जाना आदि, इसकी कथावस्तु है। कथानायक के शब्दों में, "भविष्य की योजनाएँ बनतीं और बस एक मुकाम पर ख़ामोशी के हवाले हो जातीं कि दोनों घरों के लोग अगर मान जाते तो सब कुछ ख़ुशी-ख़ुशी सम्भव होता। लेकिन ज़माना वह था, जिसमे मोहब्बतें घर-परिवार के आगे सिर पटकती थीं। लहूलुहान हुआ करती थीं। दम तोड़ती थीं।"

कृष्ण बिहारी जी बहुत सादगी के साथ कथा-संयोजन करते हैं। वे कलात्मकता के स्थान पर सम्प्रेषणीयता और किस्सागोई को विशेष महत्व देते हैं। देश, काल और वातारण की जीवंत प्रस्तुति इनका विशेष गुण है। कुलमिलाकर व्यापक समाज में संवेदना जाग्रत करना ही कहानियों का उद्देश्य है।

000

मानवीय मन की उथल-पुथल

कल्पना मनोरमा

'ज़िंदगी की सबसे सर्द रात' कहानियों में जितनी शिद्दत से भारत का लोक-जीवन आया है, उतनी ही गरिमा और सौष्ठव के साथ अबु धाबी का परिवेश, समाज, कल्चर, हाव-भाव और जीवन-व्यवहार भी पढ़ने को मिलता है। कहा जाता है कि एक रचनाकार के लिए भ्रमण अति आवश्यक है। इस मामले में लेखक का अनुभव सघन है। कहानियाँ पढ़ते हुए यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

संग्रह की पहली कहानी भारतीय ज़मीन की है। 'डुबकी' कहानी में आमी नदी की चर्चा के साथ कमला के जीवट की बात भी शिद्दत से कही गई है। पेवन और निहोरिया को जब बेटी होती है तो बभनौटी की तरह ये दोनों दु:ख मनाने की जगह पंडित के पास जाकर अपनी

नवजात पुत्री के लिए नाम विचरवाते हैं। पंडित उस बच्ची का नाम कमला रख देते हैं लेकिन माँ-बाप को कमला कहने में स्नेह प्रतीत होता है इसलिए वे लाड़ से उसे 'कमलिया' ज़्यादा पुकारते हैं। लक्ष्मी का एक नाम कमला भी है इसलिए बेटी को वे दोनों ग़रीब दम्पत्ति अपने लिए भाग्यशाली मानते हैं। न जाने चलते-घिसटते कमला को आमी नदी से कब प्यार हो जाता है। कहानी की भाव-भूमि का अंदाज़ा इस वाक्य से लगाया जा सकता है। "कहानी उस डुबकी की है जिसे अगर मौका मिलता तो न जाने कब उसने महिला तैराकी में हिन्दुस्तान का नाम रोशन कर दिया होता।" यह कहानी महिला सशक्तिकरण की बात करती है।

'ढाके की मलमल' कहानी इस वाक्य से शुरू होती है। "कहानी खाड़ी देश की राजधानी में नार्थ ईस्ट ट्रेडर क्लब की वह शाम" ऑफिस स्टाफ़ अपने परिवार के साथ एक क्लब में पार्टी के लिए इकट्ठा है, उसमें कुछ लोग बिना परिवार के भी पहुँचे हैं, कुछ लोग नई ज्वाइनिंग वाले भी पहुँचते हैं। महक शुक्ला नाम की लड़की अनवर के साथ पार्टी में शामिल होती है। जिसे अनवर अपने दोस्त से मिलवाता है। महक शुक्ला को देखते ही कथा के नैरेटर के मुँह से अचानक उसका नाम 'मलमल' निकल जाता है। जिसे सुनकर उसका एक मित्र बेहद खुश होकर कह उठता है, "क्या नामकरण किया है!" कुछ समय बाद महक शुक्ला को अपना नाम 'मलमल' पसंद आने लगता है। वह अपने बदले हुए नाम मलमल से चिढ़ती नहीं है बल्कि धीरे-धीरे अपने बारे में अनवर को बताती चलती है। अनवर को पता चलता है कि महक शुक्ला की तीन शादियाँ हो चुकी हैं और जिस शादी में वह अभी बसर कर रही है, वह महज एक कांट्रेक्ट है जो ख़त्म होने जा रहा है लेकिन उस समझौते वाली शादी को महक शुक्ला बचा लेना चाहती है। समझौते में बँधा ग्वाटम नहीं चाहता कि उसकी बीवी को किसी भी प्रकार से पता चले कि वह किसी अन्य स्त्री के साथ कांट्रेक्ट में विवाहित पुरुष की तरह रह रहा है। कांट्रेक्ट ख़त्म होने के बाद वह महक शुक्ल के साथ न रहकर अपनी पत्नी के साथ रहना चाहता है। ये कहानी बेहद दर्द समेटे हुए दिखी। अंत में कथा नायिका कहती है, "अनवर ढाके की मलमल की तरह मैं भी।" यानी कि ढाका की मलमल फिर भी सोलह चरणों से गुज़र कर कम से कम 'मलमल' बन जाती है लेकिन चार शादियाँ करने के बाद भी महक शुक्ला को शादी का सुख नहीं मिलता है और वह अमेरिका लौटने का निश्चय कर लेती है। कहानी की बुनावट में ढाका की मलमल जैसा स्त्री-जीवन के दुखद चरण भी हैं।

'बादशाह' कहानी परतदार है। एक रिक्शा चालक जब ये जान जाता है कि उसके रिक्शे में बैठा व्यक्ति कहानी लिखता है तो वह थोड़ा विचार कर कहता है कि,"पैसे न हों तो ना दो बाबूजी और कभी पैसों की ज़रूरत पड़े, हम से कहना ज़्यादा नहीं लेकिन दो-चार हज़ार की मदद मैं कभी भी कर सकता हूँ।" जिसे सुनकर कथानायक हतप्रभ सोचने लगता है कि आख़िर रामआसरे ने ये क्यों कहा? दूसरे कहानी उस व्यक्ति की बात कहती है जो किसी भी हालत में घर-परिवार, रिश्तेदार और एक आम व्यक्ति की भी मदद करने के लिए तत्पर है क्योंकि उसके पास संतोष है और जितना वह कमाता है वह उसके लिए काफ़ी है। आज की भागमभागी सभ्यता में जुते व्यक्ति को रुककर सोचने के लिए ये कहानी मजबूर करती है। 'अकेला चना', 'सेन चाइल्ड' और 'कीमा' कहानियों में विद्यालयी दाँव-पेंच की बारीक पच्चीकारी है। कैसे एक एम्प्लाई को शोषित किया जाता है, कैसे बिना सही बताए उसे इतना टॉर्चर कर उस स्थिति में पहुँचा दो कि वह इस्तीफ़ा स्वयं लिख दे और उसका हिसाब-किताब भी ठीक से न करते हुए लच्छेदार वादों-बातों में घुमाते रहना, दर्द से भर देता है। दूसरी कहानी में किस कदर शिक्षा व्यवस्था पर अभिभावकों का दबदबा बढ़ता जा रहा है और एक शिक्षक कितना निरीह प्राणी बनता जा रहा है कि उसकी गर्दन न हो जैसे मुर्गी की गर्दन बन गई है, जिसे कभी भी मरोड़ दिया जा सकता है। 'कीमा' कहानी बताती है कि बाहर के देशों में पैसे तभी कमाए जा सकते हैं जब आपके पास काबिलियत होगी और साथ में ये भी कि एक दूसरे की मदद करके दुनिया को बदरंग होने से बचाया जा सकता है।

'दो लाख का थप्पड़' कहानी के लिए यही कहूँगी कि ये कहानी बहुत प्यारी है। जब ऐसा दौर चल रहा हो कि जहाँ अपने काम बनाने के लिए मित्रता को भी इस्तेमाल कर लिया जाता हो वहीं इस कहानी का नायक अपने मित्र के लिए कैसे नींद हराम कर पूरी रात उसकी तीमारदारी में बिता देता है। 'सर्वप्रिया' कहानी पढ़ते हुए बार-बार हँसी आती रही। ऐसा नहीं कि कहानी में सब हँसने की बाबत ही लिखा गया हो। इन दोनों कहानियों में अरबी शब्दों के प्रयोग ने जीवन्तता बढ़ा दी है और परिवेश विश्वशनीय लगने लगा है। 'अभागी' और 'ज़िंदगी की सबसे सर्द रात' कहानी में सम्वेदनाओं को इस कदर बुना गया है कि किरदारों के माध्यम से जीवन के उतार-चढ़ाव को ये कहानियाँ चित्रांकित करती चलती हैं और पढ़ने वाले को लगने लगता है कि कोई सामने बैठा अपने जीवन के खट्टे-मीठे अनुभव सुनाए जा रहा है। कहानी थोड़ी दूर चलती है कि एक कथानायक का संवाद आता है,"मेरी मुहब्बत लहुलुहान है। खून से लथपथ है अनगिनत चोटों से घायल है।" इसके बाद कथानायक अपनी अशरीरी हो चुकी प्रेमिका को जब याद करता है तो मन कचोट के साथ भारी होता चलता है।

मानवीय मन की उथल-पुथल में निबद्ध कहानी संग्रह को पढ़ना यानी कि भारत और खाड़ी देश के जन-जीवन के संघर्षों को नजदीक से देखना और जानना है, साथ में यह भी समझना है कि समाज चाहे जहाँ का भी हो, लोग और उनके जीवन के संघर्ष, आशा, निराशा, उत्सव और भ्रांतियाँ एक जैसी होती हैं।

निश्चित रूप से इन कहानियों को पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि इन कहानियों में कल्पना कितनी है, का तो पता नहीं लेकिन यथार्थ कथ्य के धरातल पर अपनी बात मज़बूती से कहता दिखाई पड़ता है।

000

(कविता संग्रह)

सूखे पत्तों पर चलते हुए

समीक्षक : राज बोहरे

लेखक : शैलेन्द्र शरण

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

राज बोहरे
मोबाइल– 9826689939

शैलेंद्र शरण एक विचारशील कवि हैं वे अपनी कविता में दर्शन विचार और सामाजिकता को शामिल करते हैं। यह शामिल करना सायास नहीं अनायास होता है यानी यह सब उनके चिंतन में शामिल है। तभी तो कविता लिखते वक्त वह सहज रूप से कविताओं में आ जाता है। शैलेंद्र शरण का कविता संग्रह 'सूखे पत्तों पर चलते हुए' शिवना प्रकाशन से पिछले दिनों प्रकाशित होकर आया है। इस संग्रह की सारी कविताएँ कवि के वैचारिक पक्ष के साथ-साथ उनके सहज रूप से पर्यवेक्षण और समाज में शामिल मुद्दों पर अपने विचार प्रकट करती हैं। हर कविता यूँ तो विचार से ही गहराई पाती है, वे कविताएँ जिनमें विचार नहीं होता, उन्हें महज संगीत के साथ गा लेने भर की रचनाएँ माना जाता है। लेकिन आज कविता वैचारिक समृद्धि और वैचारिक उपस्थिति के कारण ही महत्त्वपूर्ण या महत्त्वहीन होती है।

इस संग्रह में कुछ ख़ास मुद्दों पर कवि की लिखी गई कविताएँ शामिल है। इन कविताओं से गुज़रने के बाद हम महसूस करते हैं कि कवि इस संग्रह में ज़्यादा परिपक्व होकर पाठकों के सामने आए हैं। उनकी कविता 'संबोधन किसानों के लिए ' देखिए-

किसानों .../ करो / इतना करो / कि आज करने को / कुछ बाकी ना रहे
मौत आए और कहे / "चलो" / तुम हाथ बढ़ाकर कहो / चलो ...कहाँ चलना है
और मौत / रास्ता भटके सर्प की तरह / सर सराकर भाग जाए।।(पृष्ठ 18)

कविता 'नेम प्लेट' में पिता को शिद्दत से याद करते कवि लिखते हैं

पिता ने मुझे जूझना सिखाया / इस संघर्ष में बहुत बार हारा / हाथों में शस्त्र लिए डरता रहा / गंभीर मसलों में शर्तों पर अड़ा रहा / ज़रूरी प्रमाण के बदले तर्क दिए /कुल मिलाकर मिथ्या और अनिश्चितता का वलय रचता रहा / सोचता हूँ निश्चिंतता का वह नीला आसमान कहाँ से लाऊँ / जो अब तक माथे पर भरोसा बना तन रहा।(पृष्ठ 19)

इस कविता की अंतिम पंक्तियाँ यह व्यक्त करती हैं कि अब पिता नहीं हैं, जिन्हें नायक याद कर रहा है लेकिन फिर भी अंत तक आते-आते कभी कवि कम रह जाता है, मनुष्य और मार्मिक व्यक्ति रह जाता है। तभी उसमें कविता भाषा कुछ कम हो जाती है।

इस संग्रह की सबसे लंबी कविता मॉब लिचिंग:कुछ कविताएँ है। एक ही विषय पर अनेक कविताएँ लिखने की परंपरा हिन्दी में शुरू से रही है। आज के समाज और राजनीतिक परिदृश्य में 'मॉब लिचिंग' ऐसी दहशत भरी खतरनाक घटना है, जो मनुष्य के विवेक को हर लेती है, मनुष्य के धैर्य को ख़त्म कर देती है। मॉब लिचिंग : कुछ कविताएँ में कवि ने अनेक कविताएँ लिखी हैं। इसमें पहली कविता है- वे लोग जो / भीड़ बनकर मुझे पीट रहे थे / चुप नहीं थे / आक्रोश में उनकी मुट्ठियाँ और दांत / एक साथ भिंच जाते / मुँह खुलता तो गोली सी गालियाँ निकलती / बोल...जय बोल बोल...जय../ मैं उस समय वही कहता गया जो वे लोग चाहते थे / वे सब हत्या के जुनून में थे / जब मैं बेसुध होकर पलके मूंद रहा था / मैंने देखा / मोहम्मद और राम दोनों भीड़ के पीछे खड़े हैं।

पीछे यानी कवि कहना चाहता है कि वे दोनों असहाय से अपने बंदों की अविवेकी भीड़ को

देख रहे हैं और कुछ कर नहीं पा रहे हैं।

यह एक सार्वभौम नियम है कि सारा साहित्य इसी समाज से रचा जाता है। यही मिलती हैं कविताओं की परिस्थितियाँ, अनुभूतियाँ और शब्दावली या यही मिलते हैं रचनाओं के विषय उपन्यास के विषय। कवि की एक कविता है - विषय यहीं पैदा होते हैं इसमें वे लिखते हैं - आदमी की जीवन संहिता में ही विषय पैदा होते हैं / दर्ज करना चाहता हूँ फिलहाल / नींद में सर उठाकर छटपटाती / दूर से आती हुई, कराह... कविता में / वैसे भी कुछ उस पर कहानियाँ लिखने में व्यस्त हैं / और कुछ उपन्यास लिखने की तैयारी में।

एक और उदहारण : वैसे तो पूरा का पूरा उपन्यास है वह / संत्रास के इर्द-गिर्द भटकता हुआ / टुकड़ा टुकड़ा जुड़कर महानगर की लोकल में लटका हुआ।

हम सभी ने कोविड-19 के दौरान भयानक विस्थापन देखा - आज़ादी के बाद का सबसे बड़ा विस्थापन। अन्तर की बात यह थी कि आज़ादी के विस्थापन में हिंसा साथ में थी, सड़क पर चल रहा व्यक्ति हर कदम इस दहशत में था कि कोई काफिला उन पर हमला ना कर दे, लेकिन इस तुरंत गुज़र चुके विस्थापन में ऐसे कोई भय नहीं थे, डर नहीं थे। कभी कभार पुलिस वालों की डाँट फटकार, समझाइश, के अलावा भूख और थकान के हमले ही ऐसे विस्थापन के ख़तरे थे। लेकिन थोड़ी राहत, थोड़े सुस्ताने और थोड़ी सी निश्चिंतता मिल जाने, सहयोग मिल जाने के बाद यह काफिले आराम से अपने घरों तक पहुँचे। कवि ने अपने समकाल की इस घटना को कविता 'लॉकडाउन में विस्थापन' में लिखा है- बोझा लादे बच्चों का हाथ थामे / बोतल में भीगे चने लेकर चले होंगे / पता नहीं सत्तू बचा भी होगा उनके पास / या वैसे ही ख़त्म हो चुका होगा / जैसे मालिक पर विश्वास ... / कुएँ के पास रुके होंगे / तब बिना रस्सी-बाल्टी / उनकी प्यास / ऊपर की जेब में रखी रेज़गारी की तरह / झाँकते ही कुएँ में भीतर गिर गई होगी.../ पता नहीं वह मेरे शहर का नाम जानते भी हैं या नहीं / पते की डायरी छूटी होगी बदहवासी में / नंबर तो अवश्य होगा उनके फ़ोन में / या क्या पता बैटरी चली गई हो / मैंने नहीं देखा उन्हें .../ बूढ़े होने को आए होंगे पिता की तरह रिश्तो पर बरसों की जमी काई पर / फिसलने लगे होंगे यादों के पैर।

शैलेंद्र शरण की सबसे अधिक कविताएँ दर्शन पर आधारित हैं। इस तरह की कविताएँ न केवल कवि के विचार पक्ष को प्रकट करती हैं बल्कि भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन के अनेक मुद्दे प्रकट करती हैं। ऐसी कविताओं में मृत्यु की आशंका के बीच, शमशान, मंत्रों का शल्यशोधन, कोई रात, ढलकर पक जाने के बाद, हे देव, सच को सच की तरह, शिखंडी होने पर, मंथन, विपरीत कैसे जी लेते हो यार, जो नियंत्रित नहीं होते, ढलान पर,) अंततः, शामिल हैं।

सँग्रह की अनेक कविताएँ मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों और उनके विश्लेषण के बाद लिखी गई हैं और वे मनुष्य के द्वंद, मनोवैज्ञानिक चिंतन और इस तरह मनोगत विश्लेषण के बाद निकलते हुए निष्कर्षों पर केंद्रित है। ऐसी कविताओं में सपनों की पांडुलिपि, अकेलेपन की त्रासदी, विषय यहीं पैदा होते हैं , क्या कहूँ इस सुख को, राधेश्याम तिवारी, का नाम लिया जा सकता है।

संग्रह में प्रेम और दांपत्य पर भी ख़ूब बात की गई है। मनुष्य का केंद्रीय भाव प्रेम है। यह प्रेम अपने परिजनों के प्रति भी होता है, अपनी पत्नी के प्रति भी और प्रेमिका के प्रति भी। संग्रह में कवि अपने प्रेम की बात स्त्रियों को संबोधित करते हुए कविता लिखते हैं, किसी में वे प्रेमिका को संबोधित करते हैं तो किसी में पत्नी को। संग्रह की कविता ओ विदुषी, रंगमंच, बूढ़ा जो हो चुका था, ब्रेक अप, आप से नहीं डरती, पहली बार, सहयात्री, पतझड़ के ठीक बाद, कविताएँ चिन्हित की जा सकती हैं जिनमें प्रेम की गहराई और दांपत्य का माधुर्य भी अलग-अलग कविताओं में आया है।

कवि स्त्री (या कहें लड़की) के प्रति सहानुभूति नहीं बल्कि समानुभूति अनुभूति के स्तर पर चिंतन करते हैं उनकी कुछ कविताएँ लड़कियों, यात्रियों के मानसिक द्वंद्व पर केंद्रित हैं ऐसी कविताओं में इंतजार:एक दृश्य, एक अनचाही यात्रा, एक और सच, समझौता, जो नियंत्रित नहीं होते, के नाम लिए जा सकते हैं।

कोई भी रचनाकार कवि हो या कहानीकार और चाहे व्यंग्यकार या निबंधकार हो वह अपने आसपास के वातावरण यानी प्रकृति, कुदरत, जलवायु और पृथ्वी को अनदेखा नहीं कर सकता अगर वह रचनाकार है, तो उसका पहला प्रेम कुदरत है, प्रकृति है, जलवायु है, अपना वातावरण है। एक युग था जब हर कवि बहुतायत में प्रकृति पर ही कविताएँ लिखता था। उन दिनों पेड़, चिड़िया, नदी, तारे, जानवर आदि कविता के विषय हुआ करते थे। लेकिन इस संग्रह में शैलेंद्र शरण केवल प्राकृतिक वर्णन नहीं करते, बल्कि प्रकृति के उपादानों का मानवीकरण भी करते हैं और उन्हें एक नए अर्थ में आयोजित भी करते हैं। प्रकृति से जुड़ी कविताओं में नदी, विपरीत कैसे जी लेते हो यार, पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु, के नाम लिए जा सकते हैं। आख़िरी पाँच कविताएँ पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, वायु तो मनुष्य देह के पंच तत्व पर केंद्रित हैं। जिन पर एक नए और प्रभावशाली तरीके से शैलेंद्र शरण ने कविताएँ लिखी है।

यथार्थ और बदलते समय की परिस्थितियाँ भी कवि की नज़र से छूटी नहीं है। वे विकास, बदलते समय में मेरा शहर, इन दिनों सपना, मॉब-लिंचिंग कुछ कविताएँ, बसंत आने के संकेत, लॉक डाउन में विस्थापन, के माध्यम से बदलते समय की स्थितियों को चित्रित ही नहीं करते बल्कि उन पर एक वैचारिक टिप्पणी भी देते हैं।

कवि पिता पर 'नेम प्लेट ' और 'खपरैल की छत' कविता में पिता के प्रेम बारे में लेकिन तार्किक भाव से कविता लिखता है तो प्रेम और वात्सल्य का गठजोड़ कविता में माँ को बहुत शिद्दत से याद करता है।

किसानों- मजदूरों को संबंधित उनकी कविताएँ 'संबोधन किसानों के लिए ' और 'इच्छाओं की गाथा' है तो महानगरीय बोध

यानी आधुनिकता पर उनकी कविता तथागत हम कहाँ जाएँगे, अन्याय भूलते हुए, याद करते करने लायक कविताएँ हैं। जलवायु कहें, बदलता समय कहें या अपनी जन्मभूमि से लगाव की कविता डूब के बाद एक दृश्य हरसूद, संग्रह की सबसे मार्मिक कविता कही जा सकती है। कवि ने अपने तरीके से नए प्रतीक बनाए हैं, तो राजनीतिक वातावरण पर भी अपनी बेबाक टिप्पणी दी है। ऐसे नए प्रतीक और राजनीतिक वातावरण पर लिखी गई उनकी कविता सॉर्बिट्रेट, मेरी भेड़ें, के नाम लिए जा सकते हैं। समाज में बदलती, व्याप्त होती मान्यता पर उनकी कविता ओ महानुभाव, मेरी टोपी छीन ली, आदमी ने कहा जी मालिक के नाम उल्लेखनीय है।

आज मनुष्य के सामने देह महत्त्वपूर्ण है, यश नहीं है, नाम नहीं है। ऐसी कविताओं में निशानदेही, कहीं भी जा सकता हूँ के नाम लिए जा सकते हैं। कवि अपने बचपन को भूलता नहीं है, वह अपने रूप को याद करता हुआ पर स्कूल में के दिन कुछ चित्र नामक कविताएँ इसमें शामिल करता है।

इस संग्रह से गुज़रने के बाद हम अगर ठंडे दिमाग से विचार करें तो महसूस होता है कि कवि के स्वर पहले सँग्रह की तुलना में ज़्यादा तीखे हुए हैं, या यूँ कहें कि पहले संग्रह के बाद इस दूसरे संग्रह में उन्होंने अपनी ज़्यादा तर्कशील कविताएँ रखी है। इन कविताओं से कवि का वैचारिक पक्ष प्रकट होता है। हालांकि एक अंतिम निर्णय, विचारधारा के निर्धारित करने वाले रूप का अंतिम अक्स इन कविताओं से प्रकट नहीं होता। यह नहीं कह सकते कि कवि किसके साथ खड़ा है, किस विचारधारा को मानता है, फिर भी हर रचनाकार की विचारधारा मानवतावादी होती ही है। मानव के लिए संघर्ष करता, वंचितों की बात को उजागर करता हर रचनाकार ही जनमानस को स्वीकार योग्य होता है। नेताओं की, सत्ताधीशों की प्रशस्ति गाता कोई भी कवि जनता स्वीकार नहीं करती।

इस संग्रह की कविताओं में आम आदमी की पीड़ा, हताशा और द्वंद्व को कवि ने प्रकट किया है। इस संग्रह कुछ कविताएँ कमज़ोर भी हैं। ये कुछेक ऐसी ऐसी कविताएँ हैं जिनमें कवि पहली कुछ पंक्तियों में एक मुद्दे को सही ठहराते है तो दूसरे और तीसरे पद में विकसित अलग मुद्दे को सही ठहराने लगते है। कविता केंद्रीकृत नहीं रह पाती। बिखरी हुई सी लगती है। कविता का मूल भाव कविता को पढ़ते-पढ़ते तक समझ में नहीं आता।

काव्य भाषा को लेकर भी कुछ कविताओं पर पुनर्विचार किया जा सकता था। पहले संग्रह में कवि जिस काव्य भाषा के साथ प्रस्तुत हुए थे, इस संग्रह की कुछ कविताओं में वह काव्य भाषा ज्यों की त्यों नहीं रही है। तर्क शीलता या वैचारिक दबाव दोनो में कारण जो भी रहा हो, कवि इस संग्रह की कविताओं में वैसे ही सरल प्रकट नहीं हो पा रहे है। यानि इस संग्रह की कुछ कविताएँ कठिन हैं, लगता है जैसे प्रबुद्धवर्ग के लिए लिखी गईं हों। संभव है संपादित करते समय, कविताओं का आकार घटाते समय यह अनजाने में हो गई जल्दबाजी हो या विचार कविताओं के प्रति आग्रह के कारण जानबूझकर कला और काव्य वैभव की अनदेखी करते हुए कवि सायास योजना हो। अलबत्ता कविता में एक ख़ास भाषा, ख़ास अंदाज़, हौसले की तलाश करता पाठक कुछ कविताओं में ऐसे जुमले अंदाज़ को नहीं पाता है तो निराश होता है।

कवि शैलेंद्र शरण जनता के कवि हैं, समाज की कवि है। हालाँकि हम उन्हें मज़दूर के कवि, किसानों के कवि या समाज के अंतिम जन के कवि नहीं कह सकते, फिर भी मध्यवर्ग के, क़स्बाई समाज के कवि हैं।

इस संग्रह की कविताओं को देखें तो भारतीय दर्शन के मुद्दों को उठाते कवि के रूप में शरण इस संग्रह में सामने आए हैं।

हम आशा करते हैं कि उनकी काव्य यात्रा में आगे कई सोपान आएँगे, जिनमें वे मोहक काव्य भाषा, प्रभावशाली शब्द संसार और अपनी पहले संग्रह जैसी काव्य शिल्प की कविताओं के साथ 'सूखे पत्तों पर चलते हुए' नामक इस कविता संग्रह को इससे अधिक गहन विचारशील तेवर साथ लेकर प्रकट होंगे।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

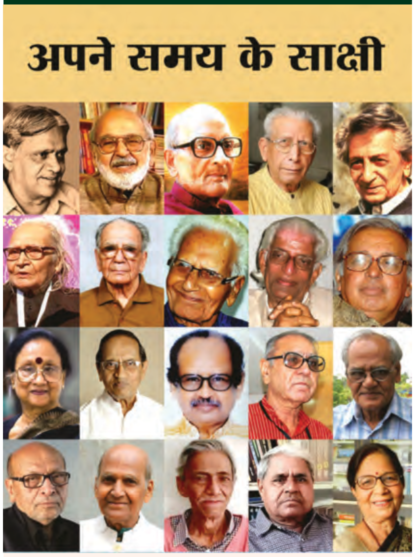

(कहानी संग्रह)

अपने समय के साक्षी

समीक्षक : रितु सिंह वर्मा

लेखक : नंद भारद्वाज

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

कहानी उपन्यासों में बसा कल्पनालोक पाठक के तौर पर भाता है, परन्तु तभी जब उस कल्पना के पीछे कोई ठोस ज़मीनी हक़ीक़त हो, पूरी तरह से काल्पनिक उड़ान एक सजग पाठक को बाँध नहीं पाती। फेंटेसी अच्छी लगती है, लेकिन उसकी भी एक उम्र होती है। जीवन के संघर्षों से गुज़रते हुए वही रचनात्मक साहित्य पाठक को आकर्षित करता है, जो अपने आसपास को समझने की समझ देता हो, बशर्ते विचारों के बोझ से भारी और आदर्शों की गठरियों से बोझिल न हो, जिनसे आज का युवा बचकर भागता है, तो फिर क्या तरीका हो कि जिज्ञासू मस्तिष्क की खोज पूरी हो? मुझे लगता है :आत्मकथाएँ सब से ज़्यादा पसंद की जानेवाली विधा है, लेकिन जब अपने प्रिय लेखक की बात आती है तो एक पाठक की दिलचस्पी उसके जीवन के उन पहलुओं को जानने की अधिक होती है, जिसने उसे लेखक बनाया। क्यों और कैसे वह लेखक बना उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि क्या है ? उसके रचे हुए पात्रों को वही स्वरूप क्यों मिला जैसे प्रश्न नये लेखकों और गम्भीर पाठकों के मन में उठना स्वाभाविक है तो ऐसे ही पाठकों के लिए है नंद भारद्वाज की हाल ही में शिवना प्रकाशन से आई बीस नामी लेखकों से साक्षात्कारों के संग्रह की पुस्तक 'अपने समय के साक्षी'।

एक सजग मनुष्य का अपने समय के साथ क्या संबंध हो सकता है, यह जानने के लिए चिन्तनशील मस्तिष्क के धनी व्यक्ति से बातचीत करना सब से सरल तरीका अवश्य है, परन्तु उस चिन्तक को उसके मानसिक स्तर तक पहुँचाने के लिए उत्प्रेरक के रूप में सामने वाले व्यक्ति से भी उसी स्तर पर बातचीत की अपेक्षा स्वा भाविक है, तभी यह बातचीत निर्णायक स्वरूप पर पहुँचती है। बीते हुए को देखना और समझना आसान है, परन्तु अपने वर्तमान को समझना थोड़ा मुश्किल। बीते हुए काल को खण्डों में बाँटकर समझा जा सकता है, जो साथ चल रहा हो उसे कैसे देखा जाए, कैसे समझा जाए? अपने समय को न सिर्फ देखना वरन् ठीक से जानना और व्याख्यायित करना हो तो इसके लिए साक्षी भाव का होना आवश्याक है। एक संश्लिष्ट बुद्धि वाला इंसान ही ऐसा कर सकता है। ऐसे ही अपने समय के साक्षी प्रबुद्ध व्यक्तियों से मुलाकात, जो सुखद संयोग से लोकप्रिय रचनात्मक लेखक भी हैं, उन्हीं से संवाद इस पुस्तक की विषयवस्तु है।

इस संवाद कृति में इक्कीसवीं शताब्दी के आठवें दशक से लेकर कोरोना काल तक अलग अलग कारणों से लिये गए साक्षात्कार प्रसिद्ध लेखकों की वैचारिकता को हमारे सामने लाते हैं, जिसके कारण पाठक एक लेखक की मनोभावों और सरोकारों को तो समझता ही है, अपने समय को भी समग्र रूप में समझ पाता है। नंद भारद्वाज स्वयं हिन्दी जगत् के एक जाने माने कवि कथाकार समीक्षक और संस्कृति के समालोचक हैं, अत: इन साक्षात्कारों में नया जानने के लिए बहुत कुछ है।

एक और बात जो इस पुस्तक को महत्त्वपूर्ण बनाती है, वह है इसकी संवाद शैली। यह आपसी संवाद ही है, जो समय की निरन्तरता को बनाए रखता है। समय स्वयं में कुछ नहीं, केवल मानवीय संस्कृति की परिकाल्पनिक सम्पदा है, जो सदैव परिवर्तनशील होते हुए भी अक्षुण्ण् है, निरन्तर है। समय की इसी अक्षुण्णन सम्पदा के विभिन्न आयामों को पहचानने और समझने में संवाद महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1993 में नंद भारद्वाज और श्यामाचरण दुबे ने संस्कृति की परिकल्पना, संस्कृति के दायरे और संस्कृति में राजनीति पर जो बातचीत की थी, वह सांस्कृतिक दृष्टि से देशज चिंतन के जिस अभाव की ओर इंगित करती है, वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। सर्वप्रिय साहित्यकार

रितु सिंह वर्मा
बी-35, ज्योति मार्ग, बापू नगर,
जयपुर, 302004, राजस्थान
ईमेल- reetuverma78@gmail.com

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय से 1981 में साहित्य के बुनियादी सरोकारों और प्रासंगिकता पर हुए संवाद के दौरान अज्ञेय कहते हैं "बाहर और भीतर के जगत् एक दूसरे से जुड़े हुए हैं, तब उस संबंध को स्पष्ट करने वाली चीज़ साहित्य होती है। तब उसकी प्रासंगिकता बनी रहती है। -विषमताओं के बीच जीने का सामर्थ्य साहित्य हमें देता तो नहीं लेकिन उसमें वृद्धि करता है - साहित्य का प्रभाव ऐसा होता है कि उससे हमारे संवेदन का विस्तार होता है -क्योंकि साहित्य हमारा संवेदन बदलता है इसलिए मनुष्य के रूप में हम थोड़ा बदलते हैं, इसलिए हम समाज को बदलना चाहते हैं, पूरी प्रक्रिया ऐसी है।" अज्ञेय जी के साथ हुई इस बातचीत का यह एक अंश है, जो सचेतन रूप से हमेशा लिए पाठक के मानस पटल पर अंकित हो जाता है।

साहित्य की प्रगतिशील धारा अथवा दूसरी परम्परा पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. नामवरसिंह से सुविस्तृत साक्षात्कार पुस्तक में दर्ज है। यहाँ वे बताते हैं कि एक आलोचक के रूप में मूल्यांकन के उनके अपने मापदण्ड क्या हैं। उनके अनुसार हर रचनाकार वस्तुत: एक आलोचक भी होता है अत: वे समानधर्मा हैं। आलोचना के आधार स्तम्भ डॉ. रामविलास शर्मा रचना और आलोचना के आपसी संबंध पर पूछे गए प्रश्न के जवाब में विस्तार से यूरोप में कलात्मक तथा विवेचनात्मक साहित्य के विभेद पर अपनी बात कहते हैं – वास्तव में कोई रचना विवेचनात्मक हो सकती है और आलोचना कलात्मक, दोनों के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं है। साहित्य बोध चीज़ों के आपसी संबंध को पहचानने से ही विकसित होता है।

उपन्यास 'तमस' के माध्यम से जनमानस में अपनी पैठ बनानेवाले भीष्म साहनी कहानी को अपने आप में पूर्ण और समर्थ विधा मानते हैं। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दो तीन दशकों में कथा साहित्य की दशा और दिशा का जो लेखा जोखा वह खींचते हैं, वह पाठक के लिए एक पूरी खुराक बन जाता है। हाँ एक विशेष बात जो उनके कहे में उभरकर आती है, वह यह कि रचनात्मक लेखन में जो भावनात्मक गहराई होती है, आलोचना में नहीं होती, वहाँ समग्र और तटस्थ दृष्टि चाहिए।

दारा शिकोह उपन्यास लिखनेवाले उर्दू अफसानानिगार काजी अब्दुल सत्तार से उनके अदबी सफ़र पर मानीखेज़ बातचीत मुख्तलिफ कौमों के बीच एक पुल की ज़रूरत पर आकर ठहरती है। इसी तरह आकाशवाणी से जुड़े साहित्यकर्मी गोपालदास जी से संवाद एक महत्त्वापूर्ण उपलब्धि है, जिनका महादेवी वर्मा, बाबा आम्टे जैसे कई दुर्लभ साक्षात्कारों के पीछे महती हाथ रहा, उनसे लोक प्रसारण की बदलती भूमिका पर संवाद बहुत रोचक बन पड़ा है।

सुप्रसिद्ध कवि नंद चतुर्वेदी अपने साथ हुए संवाद में रचना और विचार के अन्तर्संबंध पर कहते हैं कि कोई रचना विचाररहित नहीं हो सकती, लेकिन चूँकि आजकल वैयक्तिकता उभरकर आ रही है, विचार यदि आत्मीयता एवं समस्याओं से सम्बद्धता को खो देगा तो कविता या रचना कभी बड़ी नहीं हो सकती। वे समाजवाद और कविता पर अपने विचार बतलाते हैं और आठवें दशक में आगाह करते हैं कि व्यवस्था के पास जो संचार के साधन हो गए हैं, वे सत्य को चाहे जैसे पेश कर सकते हैं।

कविता को सामाजिक कर्म मानने वाले राजस्थान के जनकवि हरीश भादानी कहते हैं "कविता के दो कर्म हैं वह नियामक वर्ग को सोचने को विवश करती है और शोषित वंचित को बदलाव के लिए उकसाती है।" उनकी अपनी काव्य भाषा की अलहदा गूँज उन्हें शेष कवि गीतकारों से अलग पहचान देती है।

कविता और आलोचना के सशक्त हस्ताक्षर अशोक वाजपेयी लेखकीय जवाबदेही के प्रश्न पर कहते हैं कि कवि की बुनियादी जवाबदेही कविता एवँ भाषा के प्रति है, अंतत: यही उसकी सामाजिक ज़िम्मेदारी है। भाषा को उसकी समस्त अन्तर्ध्वनियों के साथ बचाए रखना कवि का कृतज्ञता ज्ञापन है। 'आवां' और 'नाला सोपारा' जैसे चर्चित उपन्यासों की लेखिका चित्रा मुद्गल एक संवाद में एक बेहद विचारणीय मुद्दे की ओर संकेत करते हुए कहती हैं कि 'आधी आबादी का सब से बड़ा दर्द है कि उसे अपनी कोख पर भी अधिकार नहीं।'

के के बिरला फाउंडेशन के बिहारी पुरस्कार से सम्मानित कवि मरुधर मृदुल न केवल अच्छे कवि-लेखक रहे हैं, वरन् एक प्रखर अधिवक्ता भी रहे। उन्होंने साहित्य और संस्कृति से जुड़े विभिन्न संगठनों के साथ काम भी किया है। इस पुस्तक में अधिवक्ता और लेखक के तौर पर उनकी यात्रा को पाठक बेहतर ढंग से जान सकेंगे।

इसी तरह हमारे लोक की सांस्कृतिक विरासत और साहित्य को सहेजने थामनेवाले एनसाक्लोपीडिया विजय वर्मा से सार्थक वार्ता यहाँ संकलित है। जाने माने कवि चिन्तक नंदकिशोर आचार्य जब पूरी आत्मीयता से अज्ञेय के लेखकीय व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं पर बात करते हैं तो कई नये अध्याय खुलते हैं। इसी तरह सुप्रसिद्ध कथाकार रमेश उपाध्याय अपनी नयी कृति 'मुक्तिबोध का मुक्तिकामी स्वप्नद्रष्टा' पर केन्द्रित इस संवाद में मुक्तिबोध की कविताओं के कथा-पाठ पर नयी विवेचना और अपना दृष्टिकोण सामने रखते हैं।

2018 में जब नंद जी वरिष्ठ कथाकार-नाटककार असगर वजाहत का जयपुर के प्रैस क्लब में साक्षात्कार ले रहे थे तो संयोग से मैं भी उसी बैठक में मौजूद थी। दो प्रबुद्ध व्यक्तियों का वार्तालाप सुनना अपने आपको समृद्ध करना था। एक रचनाकार के सामाजिक उद्देश्यों से जुड़ने और बनने की पूरी प्रक्रिया उन्होंने खुलकर बताई। कथाकार स्वयं प्रकाश जब आज की हिन्दी कहानी पर कहते हैं कि 'आज की कहानी में पसीने की कोई कमी नहीं है, आँसुओं की कमी है' तो यह उनके गंभीर विश्लेषणात्मक नज़रिये का आकलन है। 'सच्चे लेखन में तासीर दर्द, उत्पीड़न, अन्याय से ही उपजती है' यह कहना है वरिष्ठ कथाकार पानू खोलिया का, जिनका यह मानना है कि लेखक की रचनात्मक यात्रा उसकी स्वयं की विकासयात्रा भी होती है।

आदिवासी समाज और साहित्य के पर्याय

कहें या प्रमुख आवाज़, हरिराम मीणा जी ने अपनी पुलिस सेवा की पृष्ठभूमि होने बावजूद कविताएँ, प्रबंध काव्य, यात्रा वृतान्त, संस्मरण, वैचारिक गद्य और विशेषकर आदिवासी विमर्श पर कई पुस्तकें लिखी हैं। स्वभाविक है, नंद जी के साथ उनका यह संवाद भी उतना ही रोचक और विविधता लिये है।

पत्र आपसी संवाद का एक बेहतरीन माध्यम रहे हैं तो नंद जी और सूर्यबाला जी का एक पत्र संवाद भी पुस्तक की विषयवस्तु है। एक सजग और मर्मज्ञ पाठक के मन में सवाल किस तरह उथल पुथल मचा सकते हैं, इस बात की बानगी है नंद जी के प्रश्न और प्रत्युत्तर में स्त्री-मनोजगत् के संजीदा तरीके से खुलते मनोभावों की परतें। वे बेहद स्पष्ट और महीन तरीके से जीवन के बारीक सच सामने लाती हैं कि पढ़कर कोई भी जीवन की विसंगतियों के मानव मन पर पड़नेवाले असर को उभारने की सूर्यबाला जी की काबिलियत का कायल हो जाए। एक जगह वे कहती हैं, "जीवन की बहुत सी स्थितियाँ तर्क से परे होती हैं। अन्याय किया नहीं जाता, लेकिन हो रहा होता है। ऐसे में दो रास्ते होते हैं सामने, एक अपने हिस्से का सुख, जो मेरा प्राप्य है इसे सँवारूँ और ऊहापोह से मुक्त हो जाऊँ। यहाँ संस्कार और अन्तर्द्वंद्व की ऊहापोह उन्हें नहीं घेरते। दूसरा रास्ता अति संवेदनशील प्राणियों का होता है। मेरे स्त्री पात्र उनमें आते हैं।"

विवरण काफी लम्बा हो गया है - कारण यह भी रहा कि एक भी साक्षात्कार मुझे ऐसा नहीं लगा, जिसका परिचय छोड़ा जा सके, परन्तु यह ज़रूर कहना चाहूँगी कि पूरी पुस्तक में मात्र दो महिला रचनाकारों की उपस्थिति है, जबकि समकालीन रचना परिदृश्य में स्त्री रचनाकारों की बेहतर उपस्थिति को देखते हुए कुछ कम लगती है – संयोग या परिस्थिति जो भी हो। अपने समय और समाज को समग्रता में देखनेवाले वैचारिक समृद्धि से भरपूर कलम के धनी व्यक्तित्वों से ऐसे आत्मीय संवाद, जिस पुस्तक की थाती हो, वह निश्चित ही सहेजने योग्य है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

पेड़ तथा अन्य कहानियाँ

समीक्षक : अंतरा करवड़े
लेखक : अश्विनीकुमार दुबे
प्रकाशक : सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

'पेड़' जो कि शीर्षक कथा है, राजे महाराजाओं के समय से चलते हुए वर्तमान विकसित अवस्था में बदलती सोच का प्रतीक है। 'मृत्युबोध' कहानी, आज कितने ही ऐसे घरों की मूक व्यथा है जहाँ कोई बड़े पद से सेवानिवृत्त कोई बुज़ुर्ग बैठा है और अपनी अकड़, अफ़सरी, व्यस्तता और मान सम्मान के सुनहरे दिनों और सेवानिवृत्ति के बाद की वास्तविकता और प्राथमिकताओं से आँख मूँद लेना चाहता है। यदि 'स्मृतियाँ' शीर्षक की कथा को देखें, तो अपने जीवन को चलचित्र कि भाँति एक असफल निर्देशक के नज़रिए से देखने वाला सामान्य व्यक्ति दिखाई देता है। प्रत्येक परिवार में इस प्रकार के व्यक्ति का कुछ न कुछ प्रतिशत किसी न किसी पात्र में दिखाई दे ही जाता है। ये दोनों ही कहानियाँ, समय के साथ मन का विस्तार न कर पाने वाले, एक ही साँचे में रहने वाले और एक ही दृष्टि से संसार को देखने वाले ऐसे बुज़ुर्गों की व्यथा है, जो सब कुछ समझकर भी, अपनी ही आदतों से स्वयं परेशान हैं। 'दहशत' कथा हम सभी की कथा है। लॉकडाउन के दौरान की बदली हुई स्थितियाँ जिन्होंने केवल मानवता को ही नहीं बदला है, हम सभी के आपसी संबंधों पर प्रभाव डाला है और अंतरात्मा के रुप में भी हमें जो लगता था कि हम स्वयं ऐसे है, वैसा सब कुछ कहीं भी नही था। 'बँटवार' और 'चेक बुक' जैसी कथाएँ लेखक की व्यापक दृष्टि और स्त्रियों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं। इसके अलावा अनेक कथाएँ ध्यान खींचती हैं जैसे 'डैडी, चाचा कब आएँगे', 'बदचलन' ।

देखा जाए, तो यह संग्रह लेखक के विस्तारित दृष्टिकोण, समाज की वर्तमान स्थिति और भविष्य की चुनौतियों के बीच एक संतुलन का शाब्दिक प्रयास बनकर हमारे सामने आता है। अधिकांश कथाएँ हैं जिनमें एक स्पष्ट समापन का अभाव थोड़ा खटकता है। लेकिन इसे शायद लेखक द्वारा पाठक पर किया हुआ विश्वास या उन्हें अपने मन के विस्तार के लिए दिया गया अवसर भी कहा जा सकता है। भाषा सरल है, शैली में लेखक का कार्यक्षेत्र और भौगोलिक पृष्ठभूमि स्पष्ट रुप से सामने आती है। इन रचनाओं में यदि कुछ मानवीय संवेदनाओं के बारीक चित्रण को भी स्थान दिया जाए, प्राकृतिक चित्रण, सौन्दर्य और कल्पनाशीलता के कुछ शब्द मिलकर इन कथाओं को और अधिक रंजक, प्रस्तुति के लिए परिपूर्ण बना सकते हैं। कुल मिलाकर यह संग्रह और इसकी कहानियाँ लंबे समय तक आपके साथ बने रहते हैं। इसके केवल पात्र या घटनाएँ नही, समग्रता आपकी साथी होती है।

000

अंतरा करवड़े, 117, श्री नगर एक्स्टेन्शन, इन्दौर, मप्र
मोबाइल- 9752540202

(कविता संकलन)

मन की तुरपाई

समीक्षक : अदिति सिंह भदौरिया
संपादक : सुधा ओम ढींगरा
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

अमेरिका के हिन्दी रचनाकारों की कविताओं, ग़ज़लों, दोहों, गीतों का यह संग्रह है, जिसे सुधा ओम ढींगरा ने संपादित किया हैं। विभिन्न भावों और संवेगों को समेटे इस काव्य संग्रह का नाम है 'मन की तुरपाई'। अमेरिका में बसे, अपनी माटी से दूर, पर उसके प्रति अपना कर्त्तव्य निभाते हुए नॉर्थ कैरोलाइना साहित्य मंच के कवियों की सुंदर प्रस्तुति को प्रदर्शित करता है यह काव्य संग्रह।

भावों को अपने ही अंदाज़ में कहा जाना एक कला है। इस कला को अपने अंदाज़ से प्रस्तुत करते हुए चैपल हिल, नॉर्थ कैरोलाइना के अफ़रोज़ ताज अपने दोहों और ग़ज़ल से दिलों में दस्तक देते हैं- पंछी बैठा पींजरा, मन ही मन में शाद / सारी दुनिया जेल में, मैं ही एक आज़ाद

अपने भीतर सब कुछ पा लेने की दौड़ में जब हम ख़ुद को ही इच्छाओं के बंधन में बाँध चुके होते हैं तब ये पंक्तियाँ हमें अपने से ही मिलाते हुए पूछती है कि क्या खोज रहे हो और कहाँ जा रहे हो? इसका कोई जवाब है तो बताओ। मानवीय त्रासदी को उकेरती पंक्तियाँ देखिए- गंगा उल्टी राम की, कह दूँ साँची बात / मुर्दों को है ताज महल, ज़िन्दों को फुटपाथ

अपनी जड़ों को मान देते हुए अफ़रोज़ जी ने बहुत सुन्दर भावों से कहा है - वृन्दावन बस नाम है, वन का अजब है हाल / घर घर गैया पूछती, कहाँ गए गोपाल

इसके साथ ही अपनी जन्मभूमि को नमन करते हुए भेदभाव की लकीर को मिटाते हुए लिखते है- बामन, ज्ञानी, मौलवी, सय्यद छूत अछूत / माँ तेरे परिवार के, सारे पूत सपूत

अफ़रोज़ जी ग़ज़लों में उनका कमाल देखें- कम से कम इतना तो ग़म भरपूर होना चाहिए / दिल के इक इक ज़ख्म को नासूर होना चाहिए

शब्दों ने पीड़ा को उकेरा नहीं बल्कि महसूस किया है। हर शब्द ने हमें भीतर तक झकझोर दिया है।

शार्लट, नॉर्थ कैरोलाइना की रेखा भाटिया ने कविताओं में ख़ुद को जिया है। रेखा जी की कविताएँ थोड़ी लम्बी ज़रूर हैं पर यह पन्ने पलटने पर मजबूर नहीं करती बल्कि इसके साथ चलने लगते हैं। भावों की प्रस्तुति बहुत ख़ूब है। ऐसे जैसे हमारी बात उन्होंने अपनी कलम से कही हो। हर कविता में एक नया भाव, जो उड़ेल देता है स्त्री के अनेक उथल-पुथल विचारों को, उन बातों को जो वे अपने अंदर रख लेती हैं। 'बावरा मन' में मौसम के माध्यम से मन की गहराइयों को जीया है लेखिका ने, वहीं दूसरी ओर मकान को घर बनाने के सफ़र में रिश्तों के महत्त्व को बताया है - एक घर बनाया धीरज से / डाल सौहार्द जीवन भर का / मज़बूत घर में ठहर बड़े हुए रिश्ते / दरारें पड़ते छोड़ गए पुराना घर

मानवीय जीवन में रिश्तों का क्या महत्त्व है और एक छोटी सी ग़लतफ़हमी भी रिश्तों के साथ-साथ घर को भी तोड़ देती है। लेखिका ने इस दर्द को बड़ी मार्मिकता से बुना है।

बादल के माध्यम से जीवन के शाश्वत सच को लेखिका लिखती हैं, बादल कभी नहीं मरता

अदिति सिंह भदौरिया
साहिल, सिद्धिविनायक टॉवर, फ़्लैट नं. 404, ब्लॉक- ए, बंगाली चौराहा, मयंक वाटर पार्क के पास, बिछोली मरदाना, इन्दौर, मप्र 452016
मोबाइल- 8959361111

तब वह मानवीय भाव से कहना चाहती हैं कि शब्द कभी नहीं मरते, जब चलायमान हवाओं में अपने भावों को शब्दों में उकेरना चाहो तो याद रखें कि वह आपको आपके जाने के बाद भी ज़िंदा रखेंगे- बादल उड़ चले गगन में / मिले खुशगवार धूप से / चलते हैं पर्वतों के आँचल में / वादियों में झीलों की, हंसों की फुलवारी में

अपने आस्तित्व के महत्त्व को बताती कविता 'काश'- मैं हूँ पतंग उस प्यार की / आज मैं उड़ रही हूँ बँधी / दूसरी डोर से और अफ़सोस तुम उस डोर को काटने में उलझ गए हो ख़ुद में ही!

इन पंक्तियों में अपने मज़बूत अस्तित्व के साथ-साथ यह बताना चाहा है कि भीड़ में अपनी पहचान बनाने के लिए मेहनत ही एकमात्र रास्ता है, जो आपके विरोधियों को भी उनके ही अहम् के कारण स्वयं हरा दे।

डरहम, नॉर्थ कैरोलाइना की कुसुम नैपसिक की हाल ही में विदेशी छात्रों के लिए हिन्दी की पाठ्यपुस्तक अमेरिका में प्रकाशित हुई है।

प्रेम के अटूट बंधन को कविताओं में पिरोते हुए उम्र की सीमाओं के परे शब्दों में जान डाल देने वाली रचना को बुना गया है। कविता 'जब तुम मिलोगे' में प्रेम के उस रूप को बताया गया है जहाँ प्रेमिका को चाह है कि उम्र के हर बदलते दौर में वह अपने साथी को अपने साथ देखे। पर लेखिका की कलम मात्र प्रेम तक ही सीमित नहीं कर रही। आधुनिकता की दौड़ में हम कब किसके साथ हो रहे है, विचारों और भावों से परे मात्र शरीर ही दिखाई दे रहे हैं। उस पर कटाक्ष करती कविता 'कुत्ते और मालिक' में भावनाओं का कोई स्थान नहीं है- मेरे कुत्ते की तो नसबंदी कब की हो गई / अब जहाँ चाहे, वहाँ मुँह मारे

यह कटाक्ष है उस सोच पर जो बेहद निम्न स्तर के तर्क से स्वयं को आधुनिक और खुले विचारों वाला बताने में जुटे हुए हैं।

समाज के एक दूसरे पहलू को छूती कविता 'एक औरत एक आदमी' आज के समाज में स्त्री की दशा को बख़ूबी प्रदर्शित करती है, जहाँ आज भी स्त्री अकेली सुरक्षित नहीं है।

अगली कविता माँओं द्वारा की जा रही परवरिश पर प्रश्न चिह्न लगाती है। लेखिका पूछती है - बेटियों को करवाती हैं, सिलाई, बुनाई / बेटों को क्यों नहीं देती ज्ञान, इज्ज़त करें बने इंसान

स्त्री को सिर्फ खाना नहीं चाहिए। जीने के लिए उसकी सबसे ज़्यादा ज़रूरत भरी खुराक है मान सम्मान और प्यार। इस बात को प्रमाणित करती लेखिका की अगली कविता 'दरवाज़ा' है- खटखटाया बहुत दरवाज़ा उसने भूखी प्यासी थी प्यार की वह

यह पंक्तियाँ अन्दर से झंझोड़ देती है। लेखिका ने बख़ूबी समाज के हर पहलू को छुआ है-

एपैक्स, नॉर्थ कैरोलाइना में रहने वाले चरनजीत लाल की कविताएँ प्रेम के विभिन्न रूपों को सुंदरता से पाठकों के सामने प्रेम के विशुद्ध रूप में सजाती हैं। सजाना शब्द बरबस ही आ जाता है। जब हम इन कविताओं के भावों को महसूस करते हैं। ऐसी कविताएँ पाठकों के लिए एक ऐसा रूमानी माहौल को बनाती हैं, जहाँ प्रेम देह से परे आत्मा के मिलन की बात करता है। उसका प्रेम इंतज़ार करता है। वह प्रेमी से कुछ भी चाहता नहीं है,वह बस समय के साथ अपने भावों को अपने में समेटे हुए है।

इन कविताओं में प्रेम को पाने की लालसा नहीं बल्कि प्रेम के समीप रहने की चाह है। जो प्रेम के पवित्र भाव को हमारी आँखों के सामने ला देती है।

कैरी, नॉर्थ कैरोलाइना के अमृत वाधवा ने जीवन की दार्शनिकता को करीब से अनुभव करके, अपनी चिंता को शब्दों में बाँधकर पाठकों के सामने एक प्रश्न छोड़ा है। 'क्या मैं सच में जीत गया' कविता में युद्ध के बाद की घटना का मार्मिक चित्रण किया है। क्या युद्ध ही हल है? इस प्रश्न को पाठकों के सामने सजीवता से चित्रित करने में अमृत जी पूरी तरह सफल रहे हैं। 'माँ धरती से क्यों छल करें' और 'गंगा और जीवन' कविताओं में प्रकृति के प्रति हमारे बदलते विचारों को चित्रित करने में लेखक ने जो पंक्तियाँ लिखी हैं, वे पाठकों को भावुक कर देती हैं- माँ से बढ़कर धरती है, इससे न करे कोई इनकार / लेकिन हे मानव, क्यों ना करे इसका तू सत्कार

बदलते समय में विकास के नाम पर जो हम प्रकृति को नुकसान पहुँचा रहे हैं, यह पंक्तियाँ उनपर एक कटाक्ष है।

संग्रह रूपी बगिया में शब्दों से सजे फूलों में अगला नाम है एपैक्स,नॉर्थ कैरोलाइना में रहने वालीं ममता त्यागी जी का। स्त्री के विभिन्न मनोभावों को प्रदर्शित करतीं वे एक स्त्री बनकर, माँ बनकर अपने दायित्वों को पूरा करने के बाद जब हथेलियों को टटोलती हैं तो सब खाली है। बचा है तो बस इंतज़ार। जो शायद अब हमेशा के लिए उसका है। फिर भी वह आस के पंछी को उड़ने नहीं देती। उसे भरोसा है कि वह कल ज़रूर आएगा। जिस कल में वह किसी रिश्ते की मोहताज नहीं बल्कि वह सम्पूर्ण स्त्री है। 'मेरी चाहत' में एक माँ की बेबसी है, तो 'बिखराव' में एक स्त्री की चाहत, 'लौट आना' में एक आस जगाए प्रेमिका इंतज़ार कर रही है प्रेमी का।

डरहम, नॉर्थ कैरोलाइना की उषा देव की कविताएँ आपको जीवन की एक अलग दिशा में ले जाती हैं। श्री राम के प्रति उनके भावों को देखकर पाठक स्वयं ही उन पलों को जीने लगता है,जब श्री राम वनवास में गए। मात्र यही से लेखिका पाठकों को अपने साथ सिर्फ़ बाँधती ही नहीं बल्कि ले जाती हैं प्रेम के उस शाश्वत रूप में जब वह प्रेम को मात्र दो लोगों के बीच के सान्निध्य तक नहीं देखती। उनकी नज़रों में वह भी प्रेम है, जब बेटी अपने माता-पिता का सहारा बनें। और बेटी को पाने का सुख जब माता-पिता अनुभव करें। उन पलों को सफलता से भावुक क्षण बनाकर लेखिका पाठकों को अपना बना लेती हैं।

रॉले, नॉर्थ कैरोलाइना में रहने वालीं बिंदु सिंह की कविताएँ दिखने में हल्की-फुल्की लगती हैं। पर गहरे मनोभावों को समेटे हुए हैं। लाइक और डिसलाइक एवं कुकिंग शुकिंग और ज़िंदगी कविताओं में करारा तंज है आज के जीवन पर, जिस में फेसबुक एवं अन्य सोशल नेटवर्किंग साइड पर हम कितने निर्भर हो गए हैं। कुकिंग–शुकिंग में जीवन को

मसालों से जोड़कर एक अलग रूप बाँधा गया है। करीने से एवं सहजता से कठिन बातों को पाठकों के सामने रखने में लेखिका सफल रही हैं।

काव्य सागर में अगली लहर कैरी,नॉर्थ कैरोलाइना में रहने वाले गीता कौशिक 'रतन' की कविताओं की है। मानवता के प्रति चिंता तो जताती है पर आगे आने वाले समय के लिए आगाह भी कराती है। कोरोना जैसी महामारी के आने के बाद अपने आपको एक नई सोच से जोड़ने को कहती हैं। वक्त की मार में वह बलवान समय की गाथा कहती हैं। उनकी कविताओं में भावनाओं का एक अलग बहाव है,जो पाठकों को सीखने और सोचने दोनों दिशाओं की ओर ले जाता है।

मोर्रिस्विल, नॉर्थ कैरोलाइना में रहने वालीं अदिति मजूमदार की कविताएँ जीवन के कटु अनुभवों से परिचय कराती हैं। भूख से लाचार एक लड़की के माध्यम से जब उसके जीवन को देखें तो आँखें गीली हो जाती हैं-

पिता बड़ा परिवार उसके कंधे पर लाद / चले गए उस लोक / जहाँ जाने के लिए माँ तरसती है हर रोज़

इन पंक्तियों को पढ़कर उस लड़की के साथ एक जुड़ाव सा महसूस होने लगता है। उसके सारे दुखों को दूर करने को मन करता है। पाठकों को अपनी ओर खींचती अदिति जी की कलम से जब हम विजेता पढ़ते हैं तो दुनियावी समाज में पुरुष के होने का अर्थ हमें समझ में आता है। पिता, पति के रूप में वह आपको सुरक्षा देता है। यह उसके जाने के बाद आपको अधिक अनुभव होता है। हर पंक्ति में समाज का मार्मिक चित्रण लिए अदिति जी की कविताएँ बेहतरीन लगीं।

कैरी, नॉर्थ कैरोलाइना में रहने वाले सुरेन्द्र मोहन कौशिक 'निर्मोही' की कविताएँ कवि के उदासीन रूप को ज़्यादा बाहर लाईं हैं। इनकी रचनाओं में एक तलाश है,जो पाठकों को जीवन में आने वाली उम्मीद का इंतज़ार कराती है। पाठक इनकी कुछ नज़्मों से ख़ुद को जोड़ पाएँगे।

डरहम, नॉर्थ कैरोलाइना की मीरा गोयल की रचनाओं में जीवंतता दिखाई देती है। वह आश्वस्त कराना चाहती है कि यदि आप स्त्री है तो आप पूर्ण हैं। आपको कुछ और तलाशने की कोई ज़रूरत नहीं। मेरा जीवन, भावना, नोंक-झोंक, अभिमानी प्रीत, शतरंज, चुनौती इन रचनाओं में कवयित्री की कलम में आपको विविधता के दर्शन होंगे। वहीं पुनर्जन्म की साध में वह पाठक को आश्वस्त करती हैं। कवयित्री के जीवन में नकारात्मकता का कोई स्थान नहीं है। वह फिर से मानव जीवन को जीने के लिए उत्साहित है। इनकी रचनाओं को पढ़कर पाठक सकारात्मक हो जाएँगे और एक भीनीं–भीनीं सी मुस्कुराहट पाठक अपने होठों पर महसूस करेंगे। वनिता के माध्यम से स्त्री होने का जो मूल्य कवियत्री ने बताया है, उसको पढ़कर अपने स्त्री होने पर अभिमान हो जाएगा। बेहद सुन्दर एवं मन को मोह लेने वाले शब्दों से सजी वनिता दिल को छू लेगी।

संग्रह के अंतिम कवि को पढ़कर अनुभव हुआ कि भाव, भाषा के मोहताज नहीं होते। चैपल हिल, नॉर्थ कैरोलाइन के जॉन काल्डवेल ने हिन्दी में अपनी रचनाओं को बहुत सुन्दरता से पाठकों के सामने रखा है। जीवन की दार्शनिकता को ख़ुद में समेटे उनकी रचनाएँ बरबस ही पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। अनचुना रास्ता, एक बर्फीली शाम, मधुमक्खी का गीत इन रचनाओं में संकेतात्मक तरीके से भावों की अभिव्यक्ति की गई है।

अंत में मैं यह कहना चाहती हूँ कि कविताएँ संगीत की तरह होती हैं, जो आपके भीतर कई तरंगों को उत्पन्न करती हैं। आपके जीवन के कई अछूते पहलू आपको दूसरों की कलम के माध्यम से सजे मिलते हैं। यह संग्रह मार्मिक, भावनात्मक एवं सांकेतिक भाषा के माध्यम से पाठकों के मन को छू लेगा। इस संग्रह को पाठकों के समक्ष लाने के लिए इस संग्रह की संपादक सुधा ओम ढींगरा बधाई की पात्र हैं। गहरे सागर में से अनमोल मोतियों को ढूँढ़कर एक माला को पिरोना सराहनीय काम है। विभिन्न भावों और विधाओं को समेटे यह संग्रह पाठकों को अपनी और आकर्षित करेगा।

000

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2022

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

पुस्तक समीक्षा

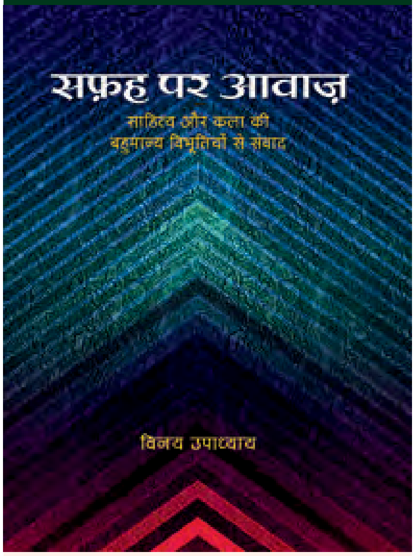

(साक्षात्कार संग्रह)

सफ़ह पर आवाज़

समीक्षक : कैलाश मंडलेकर

लेखक : विनय उपाध्याय

प्रकाशक : आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल

'सफ़ह पर आवाज़' कला समीक्षक तथा ख्यात उद्‌घोषक विनय उपाध्याय द्वारा लिए गए साक्षात्कारों का संग्रह है। इस कृति में ख्यातनाम रचनाकारों एवं कलाविदों के लगभग चालीस साक्षात्कार हैं जो मुख़्तलिफ़ समयों तथा अवसरों पर लिए गए हैं। इन साक्षात्कारों में एक तरह की बेतकल्लुफ़ी भी है, प्रश्नाकुलता भी और औत्सुक्य भी। दरअसल ये रूटीन इंटरव्यूज़ नहीं है इनमें गहरी जिज्ञासा है। अपने समय की कला, संगीत, रंगमंच जैसी विभिन्न विधाओं के नेपथ्य को अनावृत्त करने की कोशिश भी।

साहित्य, कला और मीडिया के क्षेत्र में विनय उपाध्याय एक जाना-पहचाना नाम है। उन्होंने नईदुनिया और दैनिक भास्कर जैसे नामचीन अख़बारों से अपने पत्रकारिता के कॅरियर की शुरुआत की और एक लम्बे वक्त तक सांस्कृतिक पत्रकारिता जैसे नवाचार पर गंभीरता पूर्वक काम किया। वे आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के लिए वृत्त चित्र तथा पटकथा लेखन से भी जुड़े रहे हैं। अनेक सरकारी और ग़ैर सरकारी आयोजनों में भी उद्‌घोषक के तौर पर आमंत्रित किये जाते हैं। विनय उपाध्याय के पास 'कला समय' तथा 'रंग संवाद' जैसी बड़ी पत्रिकाओं के सम्पादन का भी तवील हुनर है। वर्तमान में वे टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केंद्र भोपाल के निदेशक हैं। वस्तुत: कला और संस्कृति के क्षेत्र में काम करने के उनके सुदीर्घ अनुभव को ही इन साक्षात्कारों के साक्ष्य के रूप में देखा जा सकता है। अपने कलेवर और अंतर्वस्तु के नज़रिये से भी इनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

ध्यान देने की बात ये है कि हिन्दी की आधुनिक गद्य विधाओं में साक्षात्कार को आलोचना ने कभी भी विमर्श के केंद्र में स्थान नहीं दिया। इसके बजाए गद्य की अन्य समकालीन विधाओं जैसे डायरी रिपोर्ताज संस्मरण अथवा आत्मकथा अदि पर फिर भी चर्चाएँ होती रही हैं। जबकि साहित्य अथवा रचनाधर्मिता को और अधिक प्रामाणिक, ग्राह्य और विश्वसनीय बनाने में साक्षात्कारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कथाकार राजेन्द्र यादव द्वारा रूसी साहित्यकार अन्तोन चेखव एवं सेठ गोविन्द दास द्वारा लिया गया आचार्य रजनीश का इंटरव्यू आज भी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। बहरहाल आलोचना की इस एकांगी दृष्टि के बावजूद अपनी लोकप्रियता के बल पर साक्षात्कार एक बहुपठित अथवा बहुश्रुत विधा के रूप में सर्वमान्य है।

विनय उपाध्याय की कृति 'सफ़ह पर आवाज़' की भूमिका कवि कथाकार तथा सम्पादक डॉ. संतोष चौबे ने लिखी है। पुस्तक की लम्बी भूमिका में चौबे ने सर्जना के उत्स, प्रयोजन तथा कलाओं के अंतरानुशासन की गंभीर मीमांसा करते हुए साक्षात्कार की प्रविधि तथा साक्षात्कारकर्ता की अंतर्दृष्टि का विस्तार से खुलासा किया है। उन्होंने इन साक्षात्कारों के मार्फ़त रचनाकारों की यात्रा और सरोकारों का विस्तृत विवेचन किया है। सृजन की अंतर्यात्रा के परिप्रेक्ष्य को लेकर एक स्थान पर वे कहते हैं- "इन साक्षात्कारों से गुज़रते हुए मैं अपने कुछ निष्कर्षों तक पहुँचता हूँ कि कला में ऊँचाई प्राप्त करना असल में गहराई प्राप्त करना है। भूमिका के बतौर ही लिखे गए अपने संक्षिप्त आलेख में पत्रकार अजय बोकिल भी अमूमन इन्हीं निष्कर्षों पर ठहरते हैं। बोकिल का मानना है कि किसी भी साक्षात्कार की सार्थकता तभी है जब वह हमें कलाकार या साहित्यकार के मर्म तक ले जाए तथा उस सत्य को उद्‌घाटित करने पर विवश कर दे जो कई बार अनजाने रह जाता है। उल्लेखनीय है की 'सफ़ह पर आवाज़' ऐसी कई जिज्ञासाओं अथवा प्रश्नाकुलताओं की शिनाख्त करती है। विनय उपाध्याय कहते हैं कि ये तारीख़ों में लौटती और समय को पुकारती आवाज़ें हैं।

यह किताब लगभग तीन सौ साठ भरे-पूरे पृष्ठों में विस्तृत है। उल्लेखनीय है कि पेपरबैक संस्करणों, शार्ट स्टोरीज़ और हैंडी किताबों के दौर में यह अपेक्षाकृत व्रहद ग्रन्थ है। लेकिन पाठ-सुख का ध्यान रखते हुए लेखक ने इन भेंट वार्ताओं को विधा वार क्रम देकर कतिपय उप शीर्षकों में विभाजित कर दिया है। इन साक्षात्कारों को पढ़कर लेखक की अंतर्दृष्टि, शोध तथा अध्ययन का पता चलता है। रंगमंच, गायन, पेन्टिंग्स तथा समकालीन लेखन में प्रयोग धर्मिता, कल्पनाशीलता एवं शिल्प इत्यादि को लेकर किये गए प्रश्नों से हमें अपने समय की कला और

कैलाश मंडलेकर
15-16, कृष्णपुरम कॉलोनी, जेल रोड,
सिविल लाइन्स माता चौक
खंडवा म. प्र. 450001
मोबाइल- 9425085085, 9425086855
ईमेल- kailashmandlekar@gmail.com

सर्जना को समझने तथा आकलन करने की दृष्टि मिलती है। निसंदेह यहाँ विनय उपाध्याय ने साहस के साथ उन सवालों को भी उठाया है जो रचनाकार की विचार दृष्टि और स्वायत्तता से जुड़े हैं और बाज दफे जिनसे टकराने से लोग बचते हैं। जैसे एक स्थान पर वे अली सरदार जाफरी से सरस्वती वंदना विषयक प्रश्न करते हैं या जावेद अख्तर से नितांत निजी सवाल पूछते हैं कि उन्होंने अपने ससुर कैफी आज़मी पर तो लिखा लेकिन अपने पिता जाँ निसार अख्तर पर कुछ नहीं लिखा। समकालीन पत्रकारिता विषयक पूछे गए सवाल पर प्रख्यात साहित्यकार अशोक वाजपेयी ने वर्तमान पत्रकारिता के गैर ज़िम्मेदाराना रवैये पर क्षोभ प्रगट किया है। जबकि गुरु-शिष्य परम्परा पर लोक चिन्तक डॉ. कपिल तिवारी का साक्षात्कार वर्तमान बाज़ारवाद के बरअक्स पौराणिक और पारंपरिक मूल्यों की गहरी मीमांसा करता है। विश्वरंग और पुस्तक यात्रा जैसे नवाचारों को लेकर संतोष चौबे बहुत आशान्वित दिखाई देते हैं। किशोरी अमोणकर की सुर से आगे जाने की अभिलाषा तथा नए थियेटर को लेकर मशहूर रंगकर्मी हबीब तनवीर की चिंताएँ ग़ौर तलब हैं।

पुस्तक में संग्रहित साक्षात्कारों को लेकर इंटरव्यूकार किसी भी किस्म के आग्रहों से मुक्त है। जिस गंभीरता के साथ वे मंच के जाने-माने कवि नीरज से वार्तालाप करते हैं उसी सरलता और शाइस्तगी के साथ नई कविता के मकबूल रचनाकार मंगलेश डबराल से भी गुफ्तगू कर लेते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक प्रभाकर श्रोत्रिय ने विचारधाराओं के द्वंद्व पर खुलकर बातचीत की है। साथ ही ललित निबन्ध की उपेक्षा को लेकर डॉ. परिहार की चिंताएँ वाजिब हैं। साक्षात्कारों के इस वृहद संग्रह में नौशाद, सैयद हैदर रजा, भज्जू श्याम, गिरजादेवी, डॉ. श्यामसुन्दर दुबे तथा कथाकार चित्रा मुद्‌गल की उपस्थिति ध्यान आकृष्ट करती है। भरोसा है कि सफ़ह की आवाज़ दूर तक पहुँचेगी और अनेक प्रतिध्वनियों में लौट कर आयेगी।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

बन्द कोठरी का दरवाज़ा

समीक्षक : अनिता रश्मि

लेखक : रश्मि शर्मा

प्रकाशक : सेतु प्रकाशन, दिल्ली

संग्रह की 12 कहानियों में जीवन की विविधवर्णी ज्वलंत छवियाँ हैं। मानवीयता इन कथाओं का मुख्य स्वर है। हादसा, मैंग्रोव वन, उसका जाना, नैहर छुटल जाए, निर्वसन, महाश्मशान में राग-विराग, बन्द कोठरी का दरवाज़ा और चार आने की खुशी जैसी कहानियों में आज का समाज बेहद मुखर है। 'निर्वसन' साहसिक कथा है, जिसमें पौराणिक पात्र सीता विवश नहीं, एक मज़बूत नारी का प्रतिनिधित्व करती है। राम, लक्ष्मण की अनुपस्थिति में दशरथ का पिण्डदान करने का सीता का फैसला सही है। दशरथ उनके पिण्डदान को स्वीकार भी करते हैं पर राम नहीं। गया की फल्गु नदी, गाय, केतकी फूल आदि के साथ नहीं देने के बावजूद इसमें पितृसत्ता पर गहन प्रहार स्पष्ट नज़र आता है। 'जैबो झरिया लैबो सड़िया', कोयले से समृद्ध राज्य के जलते शहर के बहाने पलायन, रहवासी की ग़रीबी, मजबूरी को स्वर देती है। खुले कोयला खदान के कारण अग्निपुंज बन गया है झरिया। अब भी जल रहा है। उसी की पृष्ठभूमि में सार्थक कथा। 'मनिका का सच' बहुचर्चित डायन प्रथा पर लिखी गई है। आज इक्कीसवीं सदी में भी डायन कहकर स्त्री को प्रताड़ित किया जाता है। यहाँ विधवा स्त्री बुरी, गंदी नज़र से बचने के लिए ख़ुद को डायन प्रचारित करवा देती है। यह कथा प्रामणिकता एवं थोड़ी और कसावट की माँग करती है। प्रथम कहानी 'महाश्मशान में राग-विराग' वाराणसी के तट पर बैठी नायिका के मनोजगत् की सैर कराती है। मोक्ष प्राप्ति की आस में आते लोगों की लंबी लाइन वैराग्य की ओर ढकेलती है। कश्मीर से पलायन करने के बावजूद अपने प्रेम से विमुख नहीं होती है नायिका। कहानी के साथ आप इतिहास, भूगोल की सैर कर सकते हैं। वह भी पूरी सहजता के साथ। 'हादसा' हर ओर, हर समय स्त्री के साथ होनेवाले हादसों की याद दिलाती कथा है। पारिवारिक संबंधों से लेकर पितृसत्ता के विरोध पर रश्मि शर्मा ने सुंदर शैली का जामा पहनाकर कथाओं को परोसा है। सुख-दुख, प्रेम, वैराग्य, पारिवारिक संबंधों से लेकर शोषण, यौन हिंसा, सम्पत्ति में बेटी के उत्तराधिकारी होने के विविध मौज़ूँ प्रश्न इन कहानियों में उठाए गए हैं। विविध कथाभूमि के सामाजिक प्रश्न पाठकों के मन को जैसे कुरेदते हुए परिवर्तन की माँग करते हैं। प्रकृति की ज़रूरी उपस्थिति कहानियों को रोचकता प्रदान करती हैं। एक तरफ प्रेम राग तो दूसरी तरफ शोषण, यौन हिंसा, अंधविश्वास की कुरीतियाँ...न जाने कितने बंधन। लेखिका की सजग दृष्टि सबका संधान करती हैं। कुछेक प्रूफ की अशुद्धियाँ सुधारी जानी चाहिए थीं।

000

अनीता रश्मि, 1सी, डी ब्लॉक, सत्यभामा ग्रैंड, डोरंडा, कुसई, राँची -834002, झारखंड
मोबाइल- 9431701893, ईमेल- rashmianita25@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

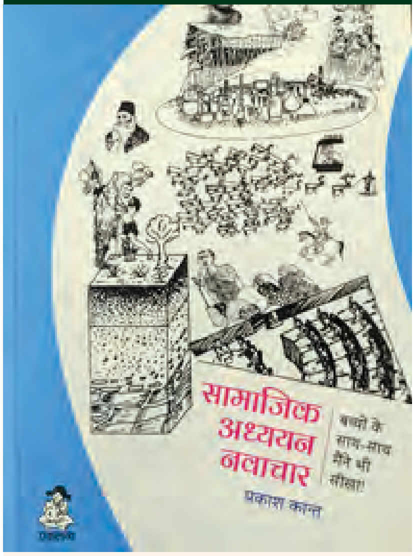

(निबंध)

सामाजिक अध्ययन नवाचार

समीक्षक : गोविन्द सेन

लेखक : प्रकाश कान्त

प्रकाशक : एकलव्य फाउंडेशन, भोपाल

गोविन्द सेन
राधारमण कालोनी, मनावर
454446, धार, म.प्र.
मोबाइल- 989310439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

यह एक कटु सत्य है कि शिक्षा को लेकर तमाम बहसों, योजनाओं, कार्यक्रमों के बावजूद सीखना आनंददायक नहीं बन सका। पाठ्यक्रम, किताबें, परीक्षाएँ, मंथली टेस्ट, पढ़ने के तौर-तरीके, स्कूल और कक्षा का वातावरण सब मिलकर सीखने को यातनादायक बनाते रहे। पहली कक्षा में दाखिल बच्चा कुछ ही दिनों में स्कूल से बचने लगता है। उसे स्कूल और शिक्षक डरावने लगने लगते हैं। उसके चेहरे की हँसी और मन की ख़ुशी ग़ायब हो जाती है। वह एक बुझा हुआ बच्चा बनकर रह जाता है। सरकारी स्कूल इन बुझे हुए बच्चों के भण्डारगृह बनकर रह जाते हैं। आज भी कमोबेश यही स्थिति है। प्राइवेट स्कूल इनसे बहुत अलग नहीं है। वे सजे-सँवरे क़त्लगाह हैं जहाँ बच्चों की संवेदना के साथ-साथ उनकी जिज्ञासा और उत्साह भी क़त्ल होते रहते हैं।

इन्हीं हालात को बदलने के लिए 'एकलव्य' स्कूली शिक्षा में नवाचारी प्रयोगों को लेकर आई थी। एकलव्य ने प्रायोगिक रूप से तैयार की गई पुस्तकों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित कर और ऐतिहासिक स्थलों की यात्रा करवाकर चयनित शालाओं में बच्चों के सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को सहज, सुगम और आनंदमयी बनाने की कोशिश की थी। यह सही माने में बाल केन्द्रित शिक्षा थी जिसने पारम्परिक जड़ता को तोड़ा था।

एकलव्य का सामाजिक अध्ययन का कार्यक्रम मध्यप्रदेश शासन के सौजन्य से 1988 से लेकर 2000 तक होशंगाबाद, हरदा और देवास के चुनिन्दा आठ मिडिल स्कूलों में चला। देवास जिले की चयनित स्कूलों में एक स्कूल मानकुंड भी थी। प्रकाश कान्त इसी मानकुंड स्कूल में पढ़ा रहे थे।

प्रस्तुत पुस्तक 'सामाजिक अध्ययन नवाचार : बच्चों के साथ-साथ मैंने भी सीखा' प्रकाश कान्त के उस दौर के बतौर ग्रामीण शिक्षक के अनुभवों का उपयोगी, प्रेरक और जीवंत दस्तावेज़ है। भूमिका की प्रारम्भिक पंक्तियों में प्रकाश कान्त ने स्पष्ट लिखा है – 'स्कूलों में पढ़ाने के लिए किसी विषय की प्रायोगिक तौर पर तैयार की गई कोई पुस्तक बच्चों के साथ-साथ शिक्षक के लिए ख़ुद भी सीखने का कैसा प्रभावशाली माध्यम हो सकती है यह मैंने 'एकलव्य' द्वारा कक्षा छह, सात और आठ के लिए तैयार की गई सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों से जाना।'

पुस्तक में 19 सार्थक और रोचक शीर्षकों के जरिए प्रकाश कान्त ने तफ़सील और सिलसिलेवार ढंग से अपने अनुभवों को दर्ज किया है। इनसे गुज़रते हुए शिक्षा की वर्तमान दशा और दिशा का भी अंदाज़ लगाया जा सकता है। एकलव्य की प्रायोगिक रूप से तैयार की गई पुस्तकों और प्रशिक्षणों ने सीखने-सिखाने की प्रकिया को बच्चों के लिए कितना आनंददायक बनाया गया और शिक्षक के मन को कितना संतोष दिया, इस पुस्तक से जाना जा सकता है। रटंत की पुरानी जड़ परंपरा को तोड़कर गतिविधियों के जरिए सिखाना बच्चों में बुनियादी समझ को पैदा करता है। यही नहीं एक शिक्षक के लिए भी यह गूँगे के गुड़ के समान एक आनंददायक अनुभूति होती है।

एटलस सामाजिक अध्ययन शिक्षण की अनिवार्य सहायक सामग्री है। लेकिन आमतौर पर सरकारी हो या निजी स्कूल इस विषय का पढ़ना-पढ़ाना इसके बिना ही निपटा दिया जाता है। प्रकाश कान्त ने जब एक निजी स्कूल के युवा शिक्षकों से पूछा कि वे पढ़ाने के दौरान एटलस का उपयोग किस तरह करते हैं तो वे दोनों ही चौंके। उन्होंने एटलस का नाम ही नहीं सुना था तो उसके उपयोग का सवाल ही नहीं उठता। वे शिक्षक पोस्ट ग्रेजुएट थे और हाई स्कूल में तीन-चार सालों से भूगोल पढ़ा रहे थे। उन्हें प्रश्नोत्तर लिखवा कर इतिहास-भूगोल पढ़ाया गया था और उसी तरीके का उपयोग वे बच्चों को पढ़ाने में करते थे। जबकि प्रकाश कान्त अपनी कक्षा में आख़िर तक एटलस को एक ज़रूरी औजार की तरह इस्तेमाल करते रहे।

सामाजिक अध्ययन विषय के शिक्षण में बच्चों में बुनियादी समझ तब पैदा होगी जब उन्हें नक्शों, ग्लोब और एटलस के जरिए पढ़ाया जाए। बच्चे इनका उपयोग करें। इन सहायक सामग्रियों को बच्चों को उपलब्ध कराया जाए और शिक्षक उनका मार्गदर्शन करें। लेकिन कक्षा में अधिक बच्चे अधिक हों और शिक्षण सामग्री कम हो तो शिक्षक की सूझ-बूझ से समस्या का हल हो सकता है। प्रकाश कान्त ने नक्शों की कमी को देसी ट्रेसिंग पद्धति से बच्चों से पर्याप्त संख्या में नक़्शे बनवाए और बच्चों से उन पर काम करवाया। यह उनका मौलिक किन्तु सफल तरीका था। ग्लोब की कमी को बच्चों को समूहों में बारी-बारी से ग्लोब को देकर पूरा किया गया। छठी कक्षा में ही पाठ्यपुस्तक के साथ एटलस भी अनिवार्य कर दिया गया। इस एटलस का उपयोग आठवीं तक तो होना ही था। इस तरह हर बच्चे को ग्लोब और एटलस देखने, सीखने-समझने और धरती पर मौजूद महाद्वीपों, महासागरों, पर्वतों, नदियों, वनों, विभिन्न देशों आदि की स्थिति को जानने का मौका मिल गया। उनका ज्ञान पुख्ता हुआ।

बच्चों ने एटलस के जरिए नक्शों को रँगना भी सीखा। इस तरह सीखना उनके लिए बुनियादी समझ बनाने में बहुत सहायक था। बाद में उनमें से कुछ बच्चों ने उच्च कक्षाओं में भूगोल में अच्छा प्रदर्शन किया। बच्चे रंगों का उपयोग मनचाहे चित्र बनाने में करने लगे। बाल पत्रिका 'चकमक' की गतिविधियों में भाग लेने लगे। मानकुंड के एक बच्चे इकबाल का बनाया मोर का चित्र चकमक के बीच के दो पेजों पर छपा और चर्चित हुआ। यह प्रकाश कान्त और उस बच्चे के लिए कितना उत्साहवर्धक रहा होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है।

इतिहास पढ़ाने के लिए बच्चों से मानकुंड गाँव का इतिहास तैयार करवाया गया। इसमें बच्चों ने ख़ूब सहभागिता की। कुछ सवालों को देकर यह काम करवाया गया। गाँव से संबंधित आँकड़े इकट्ठे किए गए। कुछ सवाल बच्चों ने ख़ुद भी बना लिए। मानकुंड का नाम मानकुंड क्यों पड़ा ? गाँव में हाट कब से लगने लगा ? गाँव में बिजली कब आई ? गाँव में पंचायत कब बनी ? जैसे प्रश्नों के जवाब तलाश करने में बच्चों ने काफी मेहनत की। इस तरह उनकी इतिहास की बुनियादी समझ बन गई। उसमें उन्हें आनंद भी आया। ख़ुद करके सीखने का आनंद अलग ही होता है।

नागरिक शास्त्र की पढ़ाई के लिए भी बच्चों को गाँव की ग्राम पंचायत के माध्यम से विधान सभा, लोकसभा से जोड़ा गया। पंचायत से संबंधित कामों को समझने के लिए गाँव के सरपंच की मदद ली गई। हाट, टैक्स, ग़रीबी, खेती-किसानी, रोज़गार, सामाजिक सुधार आदि सभी पाठों को पढ़ाने-समझाने के लिए गाँव को औज़ार की तरह इस्तेमाल किया गया। संबंधित पाठों से बच्चे सहज ही व्यावहारिक तौर पर जुड़ गए।

शिक्षण का काम इतना सहज नहीं है, जितना समझा जाता है। अमूर्त अवधारणाओं को समझाना कठिन होता है। अप्रैल की एक दोपहर को कान्त जी का एक छात्र डालाराम उनके सामने उपस्थित होता है। एक सवाल से वह परेशान था। उसका सवाल था-'सर, इस पाठ में लिखा है कि गौतम बुद्ध का जन्म सन 563 ई.पू. में हुआ और मृत्यु 483 ई.पू. में ! किसी भी व्यक्ति की मृत्यु पिछली तारीख में कैसे हो सकती है।' तब प्रकाश कान्त का जवाब था-'ऐसा इसलिए बेटा कि ईसा पूर्व में सन् उल्टे चलते हैं।'

यहाँ जवाब की अपेक्षा सवाल महत्त्वपूर्ण है। एक सड़क मज़दूर के बेटे के दिमाग़ में यह सवाल उठना ही ख़ास बात है। वह यदि बिना समझे ही रट लेता तो उसमें तर्क शक्ति पैदा ही नहीं होती। बच्चे की विचार प्रक्रिया का शुरू होना एक उपलब्धि है।

यह किताब आद्योपांत रोचक है। भाषा-शैली में एक सादगी, सहजता और प्रवाह है। कहीं भी अतिरिक्त ज्ञान उड़ेलने की कोशिश नहीं की गई है। इससे सहज ही बाल मनोविज्ञान के आधार पर शिक्षण की गतिविधियों को अपनाने और विकसित करने की इच्छा पैदा होती है। परोक्ष रूप से यह जानने का मौका भी मिलता है कि शिक्षक और बच्चों के बीच कैसा संबंध होना चाहिए। शिक्षा समाज की मूलभूत आवश्यकता है। इसलिए यह पुस्तक शिक्षक ही नहीं, पालक और उन सबके लिए अत्यंत पठनीय है जो अपने बच्चों के लिए सहज और आनंददायक शिक्षा चाहते हैं। जो चाहते हैं कि उनके बच्चों के लिए शिक्षा यातनादायक न हो। उनका बच्चा हँसते हुए स्कूल जाए और हँसते हुए ही लौटे।

000

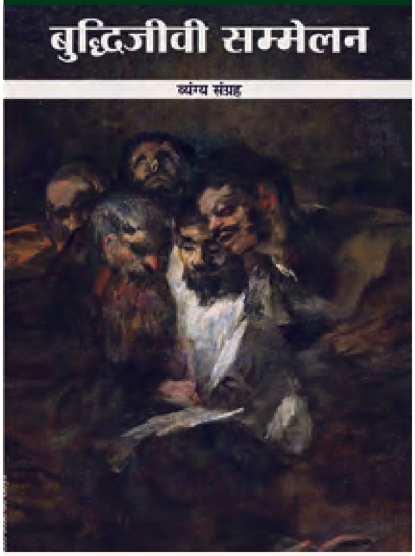

(व्यंग्य संग्रह)

बुद्धिजीवी सम्मेलन

समीक्षक : गोविन्द सेन

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

गोविन्द सेन
राधारमण कालोनी, मनावर
454446, धार, म.प्र.
मोबाइल- 989310439
ईमेल- govindsen2011@gmail.com

"लोग कहते हैं कि समय बहुत बदल गया है अब कोई किसी का सम्मान ही नहीं करता, मगर यह सच नहीं है, लोग अपने ही चारों तरफ नहीं देखते कि कितने सम्मान हो रहे हैं। संतेलाल, भंतेलाल का सम्मान कर रहा है, तो भंतेलाल, संतेलाल का सम्मान कर रहा है।" पंकज सुबीर के व्यंग्य संग्रह 'बुध्दिजीवी सम्मेलन' की पहली व्यंग्य रचना 'सम्मानित होते बाल-बाल बचना' की ये प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं। व्यंग्य में सम्मान लोलुपता और सम्मान-प्रबंधन करने वाली एजेंसियों पर गहरा तंज है। यह या संग्रह में आगे की कोई भी व्यंग्य रचना हो, पाठक किसी की एक भी पंक्ति 'स्किप' करना पसंद नहीं करेगा।

समकालीन समय अनेक विसंगतियों से भरा है। यह समय व्यंग्य रचना के लिए खाद-पानी का काम करता है। सामाजिक, राजनैतिक हो या नितांत व्यक्तिगत जीवन, अनेक विसंगतियों, विडम्बनाओं, विद्रूपताओं और पाखंडों से भरा है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी पंकज सुबीर ने इन सब पर बख़ूबी प्रहार किया है। शायद ही कोई विषय छूटा हो जिस पर पंकज की वक्रदृष्टि न पड़ी हो। इन व्यंग्य रचनाओं में कमाल का चुटीलापन है। चूँकि पंकज सुबीर एक कथाकार भी हैं, इसलिए उनके व्यंग्य में कथात्मकता का पुट भरपूर है। दरअसल हर व्यंग्य रचना एक रोचक और रसभरा क़िस्सा ही है।

राजनीति का क्षेत्र विसंगतियों, विडम्बनाओं और पाखंडों से आपादमस्तक भरा है। पंकज ने नेताओं को एकाधिक व्यंग्य रचनाओं में निशाने पर लिया है। पंकज जी का हर व्यंग्य पाठक को अपनी शुरुआती पंक्तियों से पकड़ लेता है, फिर आख़िर तक नहीं छोड़ता। मसलन 'नेता हो जाने के ठीक पहले' की प्रारंभिक पंक्तियाँ देखिए-"नेता हो जाना परतदार चट्टानों के निर्माण की तरह सतत प्रक्रिया नहीं है कि एक परत पर दूसरी परत और इस प्रकार कई परतें जमकर कालांतर में एक चट्टान बनती है। नेता बनना तो बहुत छोटी प्रक्रिया है।" व्यंग्य के नायक के इक्कीसवें कारोबार को छोड़कर नेता के रूप में बाईसवें कारोबार में प्रवेश करने की रोचक कथा है। नेता के लिए पूरा देश ही दूकान होता है, उसे अपने लिए अलग से दूकान नहीं खोलनी होती है। 'नेता, राजनीति शास्त्र और एक अदद प्रश्नपत्र' के प्रश्न बहुत चुटीले हैं जो राजनीति की पूरी पोल को

खोल देते हैं। प्रश्नपत्र का एक प्रश्न नमूने के तौर पर देखें - "यदि एक क्षेत्र में ढाई सौ पोलिंग बूथ हैं तो बताइए जीतने के लिए उम्मीदवार को बंदूकों, बदमाशों और बमों की कुल कितनी संख्या लगेगी?" इसी तरह प्रश्नपत्र में दल बदल, बूथ केप्चरिंग,चमचा आदि की परिभाषाएँ और मतदान की पूर्वरात्रि, एक नेता की पत्नी, एक चुनावी रैली आदि में से किसी एक विषय पर चार सौ शब्दों का निबंध भी पूछा गया है।

जनता, नेता मतलब पत्थर के सनम, को ख़ुदा मानने पर मजबूर है-'नेता से एक मुलाकात' में यही बात दिलचस्प ढंग से उभर कर आई है। 'नेताजी की सुबह' और 'मूंगफली छाप नेता' में भी टुच्चे नेताओं की दिनचर्या और मुफ्तखोरी पर तंज किया गया है। 'ए ग्रेट लीडर' नेताओं के चरित्र को उजागर करने वाला छात्र द्वारा लिखित एक रोचक निबंध है।

बुद्धिजीवियों के पाखंडों पर पंकज जी ने अनेक व्यंग्य रचनाओं में किया है। भीतरी पोलपट्टियों को बेबाकी से उजागर किया है। 'बुद्धिजीवी सम्मलेन' ने 304 पृष्ठों के व्यंग्य संग्रह को शीर्षक देने की ज़िम्मेदारी निभायी है। इस व्यंग्य रचना में बुद्धिजीवी के लक्षणों और उनकी विभिन्न मुद्राओं पर खुलकर प्रकाश डाला है। बुद्धिजीवी की परिभाषा के साथ उसका सजीव चित्र देखिए-"हिन्दुस्तान में एक विशेष प्राणी होता है, जो फ्रेंचकट दाढ़ी रखता है, बालों में कंघी नहीं करता और आसमान की ओर देखता हुआ ऐसी बातें करता है, जो किसी की समझ में नहीं आती, यहाँ तक की उसको ख़ुद को भी नहीं, उसी को बुद्धिजीवी कहते हैं।"

'कवि फिर भी विनम्र है', 'एक होते-होते रह गए कवि की शादी' 'एक वीभत्स कवि गोष्ठी' 'सुनसान पार्क में कविता के साथ एक शाम' आदि व्यंग्य रचनाओं में कवियों और उनके क्रियाकलापों को निशाने पर लिया गया है। 'इंतजार करते करते साहित्यकार बने हुए लोग' 'वरिष्ठ साहित्यकार' में साहित्यकारों के छद्म को उजागर किया है।

'हिंदी में एम.ए. करना भले ही इंतज़ार की बोरियत को दूर करने का उपाय समझा जाता है, मगर उसी की गर्भ से आजकल सहित्यकार पैदा हो रहे हैं। तो अगर आप को भी किसी का इंतज़ार है, तो पागल होने, मरने, जैसे टुच्चे कार्य हरगिज़ न करें, सकारात्मक, रचनात्मक और साहित्यिक कार्य करें। हिंदी में एम.ए. कर डालें, यह इंतज़ार का एक मात्र प्रोडक्टिव जवाब है, कि जा तूने इंतज़ार करवाया तो देख ज़ालिम, तेरे इंतज़ार में मैंने हिंदी में एम.ए. कर डाला, और सहित्यकार हो गया और अब ढेर सारी नवोदित कवयित्रियों से घिरा हूँ। तू नहीं और सही, और नहीं और सही, देर मत कीजिए, सहित्यकारों की पूरी जमात आपके हिंदी एम.ए. होने की प्रतीक्षा कर रही है, आइए और कर डालिए हिंदी में एम.ए.।'

बालों पर पंकज ने एकाधिक व्यंग्य लिखे हैं और सभी में विविधता बनाकर रखी है। 'आपके भी बाल झड़ रहे हैं ?','गए दिन जुल्फों के साए के' और 'हाँ साहब झड़ रहे हैं...अब बोलो...?' तीनों में विषय एक ही है किन्तु सबका निर्वाह और सन्दर्भ अलग-अलग है। इन्हें पढ़ना भी एक आनन्ददायक अनुभव से गुज़रना है।

इन व्यंग्य रचनाओं में भाषा का प्रवाह पाठक को बाँध लेता है। भाषा का खिलंदड़ापन बहुत गुदगुदाता है। मुस्कुराने पर मजबूर करता हैं। पंकज जी ने कई नए मजेदार और मारक उपमाओं, विशेषण, मुहावरों और पदों का सृजन किया है जिनसे भाषा का जायका और बढ़ जाता है। इस भाषा में एक देशीपन और बेलौसपन भी है। मसलन – चरण धतूरों, फुल क्रोधावस्था, नवनीत विलेपन, गोबर विलेपन, काला- ढुस्स, गीदड़ावलोकन, भाड़गमन, हस्तपाद वार्ता आदि। एक व्यंग्य 'शब्दों का इस्तेमाल' भी ज़ोरदार है। कुछ स्वनिर्मित नवीन वक्र वाक्य भी आपको आनंदित करेंगे। जैसे-"नंगे को चीरहरण का क्या डर?" अनेक नवीन लेकिन मजेदार शब्दों के संक्षिप्त रूप भी व्यंग्य के प्रवाह में तैरते हुए मिल जाते हैं। इसी तरह इनमें संदर्भानुसार फिल्मी गीतों की रोचक पैरोडियों का ज़ायका मिल जाता है।

पंकज जी ने इन व्यंग्यों के जरिए 'भंतेलाल' या 'भंते' के चरित्र को सफलतापूर्वक गढ़ा है। कहीं वह पत्रकार है तो कहीं साहित्यकार के रूप में आता है। अनेक व्यंग्य में वह व्यंग्य नायक के मित्र के रूप में नज़र में आता है जो उससे कुछ न कुछ पूछता रहता है। इस चरित्र के सहारे पंकज जी ने जन जीवन में व्याप्त अनेक विसंगतियों को अपने ढंग से उजागर किया है। इसी तरह झमकुड़ी बाई भी एकाधिक व्यंग्यों में एक ग्रामीण अनपढ़ महिला के रूप आती है।

यह संग्रह व्यंग्य के पंच परमेश्वरों हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, लतीफ़ घोंघी, मुश्ताक अहमद यूसुफी, श्रीलाल शुक्ल और व्यंग्य के डॉक्टरों डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी और डॉ. प्रेम जनमेजय को समर्पित है। मुझे इसे पढ़ते हुए रवींद्रनाथ त्यागी भी बहुत याद आए। किताब का आवरण स्पेनिश चित्रकार के चित्र से सज्जित है। मुझे पूरा विश्वास है कि संग्रह की ये अस्सी व्यंग्य रचनाएँ पाठक को सम्मोहित कर लेगी। यह किताब हास्य की मखमली म्यान में रखी व्यंग्य की तेज़ तलवार है।

000

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

पुस्तक समीक्षा

(निबंध संग्रह)

दुनिया मेरे आसपास

समीक्षक : प्रकाश कान्त

लेखक : एकता कानूनगो बक्षी

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन,जयपुर

पुस्तक 'दुनिया मेरे आसपास' एकता कानूनगो बक्षी के चयनित आलेखों का संग्रह है। इनमें एक ज़रूरी किस्म की प्रासंगिकता है। जिसका पता पुस्तक में सम्मिलित आलेखों के विषयों से ही चल सकता है : संवाद की संवेदना, रिश्तों की महक, जीवन का उत्सव, रिश्तों की रंगोली, प्रकृति के ऋण, बिदा होती बारिश को सुनते हुए, जीवन संगीत, घरेलू हिंसा, बाज़ार में घर, कामयाबी के औज़ार, निजता का प्रश्न इत्यादि! संग्रह के लगभग सभी आलेख इसी तरह के विषयों पर केन्द्रित हैं। जो कि सिर्फ़ लेखिका की ही नहीं बल्कि हमारे भी आसपास की दुनिया है। तक़रीबन हर दिन घटित होने और हमारे सार्वजनिक जीवन का अतिपरिचित हिस्सा बन जानेवाली दुनिया! आप इसे एक तरह से बासी होती जा रही दुनिया भी कह सकते हैं। लेकिन, एकता इसे अपनी युवा नयी नज़र से देखती हैं। इस देखने में जो ताज़गी है वह इन आलेखों में उभर कर आती है।

समग्र रूप से देखें तो संग्रह की रचनाओं में एक ख़ास तरह की रचनात्मकता का भाव है। स्वीकार्यता का भी! इसलिए इनमें शिकायतें नहीं हैं। जहाँ कहीं थोड़ी-बहुत अगर हैं भी तो वहाँ भी वह बजाय रद्द करने के समझने-समझाने की कोशिश करती दिखाई देती हैं। एक ज़रूरी किस्म के आग्रही भाव से! विडम्बनाओं-विसंगतियों के साथ भी वह इसी तरह पेश आती हैं। घरेलू हिंसा जैसे विषयों पर लिखे आलेखों में इसे देखा जा सकता है। यूँ भी, इस तरह के कुछेक आलेख अगर छोड़ दें तो संग्रह में नकारात्मक विषयों पर केन्द्रित आलेख नहीं हैं। अधिकतम आलेखों में आम ज़िंदगी के अनेक छोटे-बड़े सहज-सामान्य प्रसंग मौजूद हैं।

ऐसा नहीं कि निजी, पारिवारिक एवं सार्वजनिक मुद्दों को लेकर लिखे गए इन आलेखों में आलोचनात्मक दृष्टि का अभाव है। इनमें आलोचनात्मक दृष्टि तो है लेकिन वह इकहरी न होकर सन्तुलित किस्म की है। एकता उन चीज़ों बातों पर फ़ोकस करती हैं जो जीवन-जगत् को किसी न किसी तरह बुनियादी तौर पर सुन्दर-सुखद बनाती हैं। एक निरन्तर क्रूर और अमानुषिक होते जा रहे समय में उनकी कुल जमा कोशिश हर तरह की कोमलता, मधुरता और सुन्दरता को बचाने की है। समस्या को देखने समझने का उनका नज़रिया और तरीक़ा किसी हद तक मासूम किस्म का है। यह मासूमियत नकली, बनावटी और ओढ़ी हुई किस्म की नहीं बल्कि सहज-स्वाभाविक है। सदाशयता, संवेदनशीलता और आत्मीयता से भरी हुई! और ऐसा सिर्फ़ कवि होने के कारण नहीं है। कविता का उनके रचना-विवेक पर कोई अतिरिक्त दबाव नहीं है। अप्रिय और नकारात्मक मुद्दों पर भी उनके आलेखों का स्वर कोमल ही है। मन की साफ़-सफ़ाई, कड़वे का भी स्वागत जैसे विषयों पर लिखे गए आलेख पढ़कर इसे समझा जा सकता है।

संग्रह के कई आलेख ऐसे हैं जिनसे गुज़रते हुए विनम्र किस्म के आह्वान, आग्रह और नसीहत का बोध होता है। किसी तरह की आक्रामकता इनमें अनुभव नहीं होती। विध्वंस तो ख़ैर उनमें है ही नहीं! ये आलेख मूल रूप से संसार को ताज़ा, पवित्र, आस्था और विश्वास के भाव से देखी जानेवाली रचनाएँ हैं। जहाँ कहीं असहमति अथवा विरोध है वहाँ भी विनम्रता है। लेकिन यह विनम्रता लिजलिजी नहीं है। उसमें भी ज़रूरी मानी जानेवाली दृढ़ता है। बचपन, स्मृतियाँ, कठपुतलियाँ जैसे विषयों पर लिखते वक़्त उनका स्वर और अधिक कोमल हो जाता है। बारिश, प्रकृति इत्यादि से सम्बन्धित आलेख भिन्न बोध की रचनाएँ हैं।

इन आलेखों में बिदा होती बारिशों की सुनने की कोशिश, फरिश्तों की चहल-क़दमी, वसन्त में जीवन की उमंग को महसूस किया जा सकता है। वैसे, इनमें ज़रूरी मौक़ों पर संघर्ष करने का भी आह्वान है। अच्छी बात है कि सारी कोमलता, मधुरता, संवेदनशीलता के बावजूद इनका इनमें अतिरेक नहीं है। और इसी कारण ये आलेख भावुक प्रलाप या रुदन होने से बच गए हैं। 'रिश्तों को बनाये रखने के लिए कृतज्ञता का भाव ज़रूरी है।' या फिर, 'घर के अटाले के निपटान की तरह ही हमें अपने भीतर की सामग्री का निपटान भी करते रहना चाहिए।' जैसे वाक्य इन आलेखों की भाषा और कहन की गहराई का अनुभव करवाते हैं।

000

प्रकाश कांत
१५५, एल आई जी,मुखर्जी नगर,
देवास 455001 मप्र
मोबाइल- 9407416269

पुस्तक समीक्षा

नक़्क़ाशीदार केबिनेट

(उपन्यास)

नक़्क़ाशीदार केबिनेट

समीक्षक : कमल चंद्रा

लेखक : सुधा ओम ढींगरा

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

नक़्क़ाशीदार केबिनेट का आरम्भ एक पूर्व में भोगा गया सत्य,जो प्राकृतिक आपदा के रूप में जीवन में अवतरित हुआ था, से किया गया है। भयभीत करने वाले टॉरनेडो के अनुभव का बहुत ही सटीक वर्णन किया है, जिसे पढ़कर पाठक उस विपत्ति को स्वयं भोगते अनुभव करते हैं। बर्फ़ीला अंधड़, बारिश का चक्रवात, वृक्षों का समूल उखड़ना, घरों में पानी भर जाना, बिजली गुल हो जाना, आकाश में सहायता के लिए उड़ रहे हैलीकॉप्टर, बेसमेंट में सुरक्षित या घर के मध्य बने स्थान को चुनने की सलाह देते रेडिओ टी. वी., ये सभी लिखित दृश्य हमारा मानसिक तारतम्य सीधा कथानक से जोड़ते हैं।

सुधा जी ने उपन्यास में पश्चिमी एवं भारतीय पारिवारिक व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला है। संयुक्त परिवार तथा एकाकी परिवार के आपदा प्रबंधन को भी बढ़िया तरीके से प्रस्तुत किया है।

प्राकृतिक आपदा हॉरिकेन और टॉरनेडो के प्रभाव से वृक्ष का टूट कर बड़ी टहनी द्वारा घर की खिड़की तोड़कर घर में पानी भरने से कहानी में नया मोड़ आता है, एक नक़्क़ाशीदार केबिनेट से डायरी का मिलना, नायिका का उसे पढ़ना एक नई कहानी को पाठकों से परिचित करवाता है। यह कहानी मूल कहानी के साथ ही चलती है। हम नए पात्रों से मिलते हैं। अभी तक हम नायिका उनके पति सार्थक से ही मिले हैं, इस सहायक कहानी में कुछ पात्र पम्मी मीनल, सोनल, सुख़्खी, से हमारा आमना-सामना होता है। अनेक परिस्थितियाँ जन्म लेती हैं। जहाँ एक ओर अवसाद, ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ के रिश्ते पटल पर उभरते हैं, वहीं दूसरी ओर नि:स्वार्थ प्रेम प्रसंग भी हैं। कहानी अनेक आरोह-अवरोह के साथ आगे बढ़ती है। पाठकों के सामने अनेक प्रश्न एवं उत्सुकता पैदा करती है, जैसे... नक़्क़ाशीदार केबिनेट में रखी डायरी को नायिका द्वारा अभी तक न पढ़ना, जिसमें बहुत सी ऐसी आसमान्य और दु:खद घटनाओं का ज़िक्र है। यह कहानी हमारे सामने पृष्ठ 22 से 68 तक अनवरत तथा आगे भी रुक-रुक कर चलती है, जो पाठकों के मन में आगे क्या होगा की जिज्ञासा जगाती है। आगे भी पाठक इस कहानी से गाहेबगाहे रू-ब-रू होते जाते हैं।

सहायक कहानी में सोनल को बलदेव बने सुलेमान द्वारा प्रेमजाल में फँसा कर अनौपचारिक विवाह कर अमेरिका ले जाकर कुत्सित कुचक्र में फँसाने की मंशा रखना वर्तमान की अनेक श्रद्धा, अंकिता, आदि आदि की याद दिलाता है, व सिहरन पैदा करता है। यद्यपि सोनल अपनी सतर्कता के कारण इस प्रपंच से बच कर भाग निकलती है। वहीं एक अमेरिकन दंपति के घर में शरण मिलना तथा सुरक्षित पुलिस एवं शेल्टर होम तक पहुँचना सुखद अनुभूति का अहसास कराती है।

प्रस्तुत उपन्यास में दो कहानियाँ समानांतर चल रही हैं, जबकि दोनों कहानियों का कथानक भिन्न है। एक ओर भीषण प्राकृतिक आपदा है, वहीं दूसरी ओर प्रेम जैसा कोमल और हृदय स्पर्शी भाव है, धोखा, मक्कारी है, मानवता, नि:स्वार्थ सेवाभाव है। कहानी का एक अन्य प्रसंग भी मन को छू गया जाता है। प्राकृतिक आपदा में ही एक हिरणी अपने शावक के साथ घर के बैकयार्ड में भोजन की तलाश में सार्थक को दिखती है वह उन्हें बिस्किट खिला कर पानी पिलाता है, यह मानव हृदय के पशुप्रेम एवं सहृदयता का अनुभव करता है।

उपन्यास में खालिस्तान, लेनिनवाद, मार्क्सवाद, शोषित, मेहनतकश, धार्मिक कट्टरता, वैश्विक पूँजीवाद जैसे शब्दों ने गहरी पैठ बनाई है। कहानी में प्रेम, त्याग, समर्पण जैसे मानवीय मूल्यों को भी समुचित स्थान दिया गया है। प्रेम में ठगी, संयोग, वियोग जैसे अर्विभाव भी आकर्षण केंद्र बने हैं। जहाँ तक लेखन की बात करें तो लेखिका प्रवासी भारतीय हैं, हिन्दी के साथ अंग्रेज़ी वाक्यों एवं शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। उपन्यास की भाषा बहुत सरल धाराप्रवाह है, चित्रात्मक एवं विवरणात्मक शैली है। पाठक के समक्ष घटनाक्रम पढ़ते समय दृश्य उत्पन्न करते हैं, यह लेखन की सफलता है। संवाद छोटे प्रभावपूर्ण हैं। अंग्रेज़ी, पंजाबी भाषा का प्रभाव भी दिखाई देता है।

000

कमल चंद्रा
277-रोहित नगर, फेज़ -1,
बावड़िया कलां, E-8, एक्सटेंशन,
भोपाल 462039 मप्र
मोबाइल- 9893290596
ईमेल- kjc158.jc1@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

काला सोना

समीक्षक : डॉ. एस. शोभना
लेखक : रेनू यादव
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

'काला सोना' की कहानियाँ स्त्री-जीवन के संघर्षों की कहानियाँ है। समकालीन रचना परिदृश्य में जहाँ अन्य रचनाकार स्त्री के वजूद से जुड़े सवालों और सरोकारों तक ही सीमित दिखाई देते हैं, वही रेनू ऐसी कथाकार हैं जिन्होंने इससे आगे बढ़कर स्त्री-जीवन के महत्त्वपूर्ण सवालों को उठाया है और साथ ही अपनी गहरी संवेदना से कहानी को और भी तथ्यपरक और सत्य बना दिया है। इस कहानियों को पढ़ते हुए सत्य और कल्पना में भेद मिटता हुआ सा प्रतीत होता है। यह कहानियाँ स्त्री-दासता के विरुद्ध खड़ी स्त्रियों का पाठ है जिसमें आधुनिक ही नहीं लम्बे अर्से से स्त्री-संघर्षों से जुड़ी कई अनकही बातों को बिना किसी शोर-शराबे के साथ पाठक तक ले आती हैं। 'काला सोना' के जरिए लेखिका उन तमाम कोनों को भी भरती हुई नज़र आती हैं जहाँ किसी का ध्यान अमूमन नहीं जाता।

'काला सोना' कहानी-संग्रह में 12 कहानियाँ संकलित हैं- नचनिया, काला सोना, वसुधा, मुखाग्नि, छोछक, कोपभवन, टोनहिन, अमरपाली, चऊकवँ राँड, डर, खुखड़ी, मुँहझौसी – यह नाम सिर्फ उन कहानियों में चित्रित पात्रों की ही कहानी नहीं बल्कि उन हजारों-लाखों स्त्रियों की जीवंत दशा का ऐसा चित्र है जो मन को झंकृत कर देता है। उन्होंने समाज में स्त्रियों के शोषण के उन पहलुओं की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है जो स्त्री की अस्मिता को आहत करते हैं। पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता वाले समाज में स्त्री के स्वाभिमान, उसकी इच्छाओं और उसकी मनोकामनाओं को क्षत-विक्षत किया है। 'नचनिया' संग्रह की पहली कहानी है जिसमें राजन को अपनी रुचि का अनुसरण करने के लिए समाज में स्वीकृति नहीं मिलती और सोनपरी को समाज में फूहड़ के रूप में देखा जाता है। नचनिया में लोक कलाओं और प्रतिभा संपन्न कलाकारों के जीवन के संघर्षों का ज़िक्र किया गया है। 'काला सोना' बाछड़ समुदाय की कहानी है जहाँ एक माँ अपनी बच्ची को माहवारी आने तक ही बचाकर रख सकती हैं और उसके बाद पेट भरने के लिए बिजनेस में छोड़ना पड़ता है।

लेखिका की कहानियों का कथानक स्त्री-मन पर आधारित है। उन्होंने स्त्री मन के कोने में बरसों से दबी सिसकियों को अपनी कहानियों में कुछ ऐसे बुना है कि कहानियाँ सजीव हो उठती हैं और पात्र जीवंत हो जाते हैं। यह सब कहानियाँ स्त्री-जीवन की विडंबना को दर्शाती हैं। स्त्री अपने जीवन के हर क्षण कभी स्वयं से, कभी अपने आसपास के लोगों से, कभी समाज से संघर्ष करती रहती है। वर्चस्ववादी सत्ता में पैसों के लिए मोहताज दादी, वसुधा का अपने अस्तित्व को बचाने का प्रयास, आम्रपाली का अपनी ज़िंदगी को पुन: बनाने का प्रयास, राधिका का अपने बेटी को अधिकार दिलाने की छटपटाहट आदि सब पाठक के हृदय को संवेदित करते हैं। इन कहानियों को पढ़ने पर यह प्रश्न में उभरता है कि क्या यही स्त्री की नियति है ? या उसके अस्तित्व की स्वतंत्रता की माँग है ?

कोई भी रचनाकार कभी भी अपने तक सीमित नहीं रहता। वह अपने समाज और अपने वर्ग की प्रतिनिधि के रूप में अपने साहित्य का सृजन करता है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि लेखिका की रचना में शोषित-पीड़ित, वंचित वर्ग की पीड़ा और स्त्री मन की वेदना मुखरित हुई हैं। यह उम्दा व भावप्रधान कहानियों से परिपूर्ण संग्रह है। चिंतन और मनन के माध्यम से जो ताना-बाना बुना गया है, वह काबिले तारीफ है। उसे बिना, लाग-लपेट के सरलता से व्यक्त करना उत्कृष्ट कहानीकार की छवि को दिखाता है।

किसी भी रचनाकार की ताक़त उनकी भाषा होती हैं भाषा को ताक़त शब्दावली से मिलती है, लेखिका ने भाषा और शब्दों का चयन कहानी की परिवेश के अनुसार किया है। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि लेखिका की भाषा एवं कृति प्रेरणादायक है। आधुनिक गद्य क्षेत्र में लेखिका की यह कहानी-संकलन एक सार्थक हस्तक्षेप है और आशा है कि वे साहित्य सृजन के क्षेत्र में लगातार आगे बढ़ती रहेंगी और हिन्दी साहित्य भंडार की वृद्धि में अपना योगदान देती रहेंगी।

000

डॉ. एस. शोभना
असिस्टेंट प्रोफेसर
क्रेस्टा महाविद्यालय, अनलहल्ली ग्राम
मैसूर 570028 कर्नाटक

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

धापू पनाला

समीक्षक : अखतर अली

लेखक : कैलाश मंडलेकर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर, मप्र 466001

धापू पनाला वाह को आह में तब्दील करती व्यंग्य रचनाओं का संग्रह है। शिवना प्रकाशन से जो एक सौ बयालिस पृष्ठ का व्यंग्य संग्रह आया है न, जिसमें एक से बढ़ कर एक रचनाएँ शामिल हैं, जिसका कवर पेज के. रविन्द्र ने तैयार किया है, जिसकी साफ़ चिकने कागज़ पर त्रुटिहीन साफ़ स्पष्ट छपाई है, जिसका मूल्य दो सौ रूपये और नाम धापू पनाला है, जिसके लेखक कैलाश मंडलेकर हैं, इसमें भाषा का कमाल गज़ब का है। इसमें दो किस्म की भाषा है एक बोलती भाषा है, एक मौन की भाषा है। एक शब्दों की भाषा है, एक इशारों की भाषा है। लिखित के बीच में जो अलिखित है वह ज़्यादा अर्थवान है, उसकी आवाज़ अधिक तेज़ और तीखी है। असल रचना वह नहीं है, जो लिखित है, लिखित तो बस अलिखित को उभारने का मात्र माध्यम है। इसमें गुदगुदाते-गुदगुदाते मंडलेकर जी अचानक चिमट देते हैं और वाह आह में तब्दील हो जाती है। वाह निकलते निकलते आह निकल जाए, यही तो व्यंग्य है।

व्यंग्य की यह गंगा कैलाश से निकली है। कैलाश मंडलेकर जी की सोच से निर्मित हुई रचनाएँ किताब से निकल कर आँख तक ही नहीं आतीं, बल्कि दिमाग़ तक पहुँचती हैं और पहुँचते ही उथल पुथल मचा देती हैं। पत्थर जैसे विषय पर मोम जैसी रचना लिखने वाले लेखक हैं कैलाश जी। जब हम संग्रह की रचनाएँ पढ़ते हुए आगे बढ़ते हैं तब अहसास होता है कैलाश जी शौकत थानवी, इब्ने इंशा और मुश्ताक अहमद युसुफी की परंपरा के व्यंग्यकार हैं।

व्यंग्य में हास्य भी है हास्य ही नहीं है, ये बेमकसद की रचनाएँ नहीं इसके लिखे जाने में लिखे जाने की वजह शामिल है जिसमें रचनाकार साफ़गोई से यह कहने में पूरी तरह कामयाब हुआ है कि हमें यात्रा नहीं मार्ग बदलने की ज़रूरत है।

संग्रह की पहली रचना "कॉलोनी के दंत चिकित्सक" है। पहले नंबर की रचना एक नंबर की रचना है। एक साधारण सी बात को आगे बढ़ाते हुए मंडलेकर जी इसे असाधारण रचना बना देते है। यह काव्य जैसा आलेख है पद्य जैसा गद्य। यह लेखन की कशीदाकारी है, नक्काशी है, व्यंग्य लेखन में किया गया सुनारी काम है, जो स्थान-स्थान पर लोहारी काम में तब्दील हो जाता है।

कैलाश मंडलेकर बात कहने के लिये रचना में उपयुक्त मौसम पैदा करते है, पंच के लिये स्थान बनाते हैं और सहजता से व्यंग्य का ऐसा वाक्य निर्मित कर देते हैं कि अब तक जो रचना ठंडे पानी की बौछार कर रही थी अचानक खौलते हुए पानी सी लगने लगती है। मंडलेकर जी का यह हुनर काबिले तारीफ़ है कि ये रचना में चीखते चिल्लाते नहीं है लेकिन बात दूर तक पहुँचाते हैं। बिगड़ा हुआ कूलर वाली रचना की यह लाईन ही इनके लेखन का अंदाज़ बयान कर देती है देखिए "कई बार कूलर इस दौर के नेताओं की तरह धोखाधड़ी पर उतर आते है पंखा चल रहा है लेकिन पंप बंद है"।

धापू पनाला पढ़ते पढ़ते यह महसूस होने लगता है कि रोटी कपड़ा मकान की तरह व्यंग्य भी जीवन की आवश्यक आवश्यकता है। व्यंग्य आम आदमी की सोच और समझ को वहाँ तक ले जाता है, जहाँ तक वह स्वयं नहीं पहुच पाता है। व्यंग्य हमें सियासत की चालाकियों से अवगत कराता है, व्यंग्य ही हमें एहसास कराता है कि हम कहाँ कहाँ ठगे जा रहे हैं, व्यंग्य हमें चौकन्ना, जागृत और ज़िन्दा करता है। यह बहुत पाक, पवित्र और मुक़द्दस कार्य है।

जब हम इस संग्रह को हाथ में लेते हैं, तो शुरुआत में ही ज्ञान चतुर्वेदी जी की लिखी भूमिका नज़र आती है इसे पढ़े बिना कैलाश मंडलेकर के रचना संसार में प्रवेश करना उचित नहीं होगा। यह भूमिका किसी मकान के मुख्य द्धार में लगी कॉल बेल की तरह है, जिसे बजाए बिना प्रवेश करना ग़लत है। जब हम कोई मशीन खरीदते हैं तो साथ में कंपनी उसे समझने और इस्तेमाल के लिये एक निर्देश पुस्तिका भी देती है, यहाँ भी ज्ञान जी की भूमिका वैसी ही निर्देशिका के रूप में मौजूद है।

किसी पुस्तक की समीक्षा या चर्चा में इतना ही बताया जा सकता है बाकी सब के लिए तो पुस्तक ही पढ़ना होगा।

000

अखतर अली
निकट मेडी हेल्थ हास्पिटल
आमानाका, रायपुर (छत्तीसगढ़) 492010
मोबाइल- 9826126781

पुस्तक समीक्षा

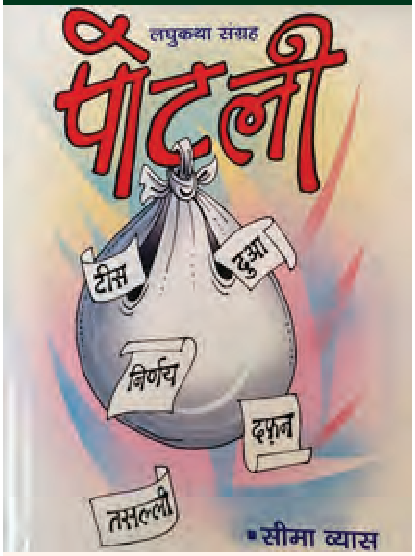

(लघुकथा संग्रह)

पोटली

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : सीमा व्यास

प्रकाशक : वनिका पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली

'पोटली' सीमा व्यास का पहला लघुकथा संग्रह है। इस संकलन में 89 लघुकथाएँ संकलित है। इस संग्रह की रचनाएँ अपने आप में मुकम्मल और उद्देश्यपूर्ण लघुकथाएँ हैं और पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू-ब-रू करवाती हैं।

'नो हॉर्न प्लीज़' हमारे वक्त की नब्ज़ पर उँगली रखती है। यह सामाजिक सरोकार के शाश्वत मूल्यों को बड़ी शिद्दत के साथ रेखांकित करती है। यह एक व्यापक जागरूकता की विचारोत्तेजक लघुकथा है, जिसमें हमारे समय का यथार्थ ध्वनित है। 'मुझसे पूछा था क्या' रचना में रचनाकार ने किशोरवय के बेटे, जिसके माता-पिता अलग हो जाते हैं, के मानसिक धरातल को समझकर उसके मन की तह तक पहुँचकर लघुकथा का सृजन किया है। यह एक किशोरवय के बेटे की कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति है। 'कहो ना प्यार है' शहरी जीवन की आपाधापी के बीच रिश्तों में बची हुई ताज़गी का चित्र प्रस्तुत करती है। रचनाकार ने इस लघुकथा में पारिवारिक संबंधों की धड़कन को बख़ूबी उभारा है। 'समाधान' एक बेहतरीन लघुकथा है, जो एक बच्ची की पीड़ा को अभिव्यक्त करती है। इस लघुकथा में बच्ची के माता-पिता आपस में झगड़ते रहते हैं। पिता और बच्ची के संवादों द्वारा ही माता-पिता के झगड़ने की समस्या का समाधान निकलता है। डाक बंगलों में रात रुकने वाले सरकारी अधिकारियों, नेताओं के कारनामों की तल्ख़ सच्चाइयों से रू-ब-रू करवाती है इस संग्रह की लघुकथा 'बारी'। 'वहाँ है पानी' रचना में पानी के दुरुपयोग की पड़ताल की गई है।

एक स्त्री के मन की व्यथा, उसकी वेदना, विवशता और लाचारी को स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है इस संग्रह की लघुकथा 'मैं नहीं थी न' में। लेकिन जब यही स्त्री अपने पैरों पर खड़ी होती है तो पुरुष का अहंकार चूर-चूर हो जाता है। बचपन कितना निश्छल और मासूम होता है उसकी बानगी है लघुकथा 'चरणामृत'। 'फॉर्मूला' में वर्तमान समय में स्कूलों में की जाने वाली धाँधली, भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण के साथ लेखिका ने कम पढ़े लिखे पिता की ईमानदारी का प्रामाणिक चित्रण किया है। 'समझ' लघुकथा में शिक्षा के गिरते स्तर पर चिंता प्रकट की गई है। 'ज़रूरी तो नहीं' अपने कथ्य और कथानक से काफी रोचक बन पड़ी है। 'सुपर ओवर' का कैनवास बेहतरीन है। इसमें वसुधा को उसकी मेहनत और ईमानदारी का फल मिलता है।

'दोस्ती : एक लघु संवाद' नाट्य शैली में लिखी गई एक लघुकथा है जिसमें आधुनिक जीवन शैली और मित्रता को रेखांकित किया गया है। 'फेर', 'अमरत्व', 'कीमत', 'शांति' और 'सौगात' इत्यादि लघुकथाओं में सीमा जी ने प्रतीकों का सार्थक प्रयोग कर अपनी कलात्मक क्षमता का परिचय दिया है। 'लक्ष्मी प्रसन्न', 'मैं नहीं थी न', 'मिलान', 'निर्णय', 'धरा पर चाँद', 'सुंदरता', 'भरोसा', 'हिसाब' जैसी रचनाओं में स्त्रियों के मन की भावनाओं को, उनकी चेतना को और उनके स्वाभिमान को बख़ूबी व्यक्त किया हैं। 'पहचान', 'तसल्ली', 'तुलसी में तेजपान', 'प्रोफेशनल', 'सन्निपात', 'रक्षक', 'चयन', 'आज माँ बन जाओ', 'पत्थर', 'कोडिंग डिकोडिंग' जैसी लघुकथाएँ लंबे अंतराल तक ज़ेहन में प्रभाव छोड़ती हैं। 'अधिकार', 'पोटली', 'हस्तांतरण', 'पासा पलट गया', 'ज़ाहिर सूचना', 'मेरी कहानी' जैसी लघुकथाएँ यथार्थवादी जीवन का सटीक चित्रण हैं। इस संग्रह की अन्य लघुकथाएँ मन को छूकर उसके मर्म से पहचान करा जाती हैं।

इस संग्रह की रचनाएँ वास्तविक यथार्थ को प्रस्तुत करती है। लघुकथाओं के कथ्यों में विविधता हैं। विषयवस्तु और विचारों में नयापन है। जीवन के अनेक तथ्य एवं सत्य इन लघुकथाओं में उद्भासित हुए हैं। लघुकथाकार की लघुकथाएँ समाज के ज्वलंत मुद्दों से मुठभेड़ करती हैं और उस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करती हैं। संग्रह की अधिकांश लघुकथाओं का कथानक सकारात्मक और प्रेरणादायी है। लेखिका जीवन की विसंगतियों और जीवन के कच्चे चिट्ठों को उद्घाटित करने में सफल हुई हैं। इस पुस्तक से लेखिका की समाज के प्रति सकारात्मक सक्रियता दृष्टिगोचर होती है।

000

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016 मप्र
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

(शोध आलेख)

राजनारायण बोहरे के उपन्यासों में ग्राम्य जीवन

शोध लेखक : डॉ. पद्मा शर्मा

बंग्ला भाषा में लम्बी कथा के रूप में प्रचलित विधा के 'उपन्यास' शब्द को विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी परिभाषाओं में आबद्ध करने का प्रयास किया है। लेकिन इन परिभाषाओं में शब्दगत अंतर होते हुए भी अर्थगत कोई मूलभूल अन्तर नही है। डॉ श्याम- सुन्दरदास उपन्यास को 'मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा' मानते हैं तो प्रेमचन्द 'मानव-चरित्र के चित्र' को उपन्यास मानते हैं। बाबू गुलाबराय ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है- "उपन्यास कार्य-कारण शृंखला में बंधा हुआ वह गद्य-कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव-जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है। 1

उपन्यास के साहित्य रूप को मानव-जीवन के अत्यधिक निकट लाने का श्रेय प्रेमचन्द को है। एक आलोचक ने ठीक ही लिखा है- "प्रेमचन्द के पदार्पण के पूर्व तक हिन्दी उपन्यास मानो किसी अविकसित कलिका की भाँति मौन, निस्पन्द एवं चेतनाहीन सा हो रहा था, दिवाकर की प्रथम रश्मियों की भाँति प्रेमचन्द की पावन कला का पुनीत स्पर्श पाकर मानो वह जाग उठा, खिल उठा और मुस्कराने लगा।" 2

वर्तमान में जय नन्दन, शिवमूर्ति, संजीव, महेश कटारे, अनिल यादव, राजनारायण बोहरे आदि उपन्यासकारों ने ग्राम्य जीवन की विभीषिका पर अपनी लेखिनी चलायी है।

राजनारायण बोहरे के 'मुखबिर' और 'अस्थान' उपन्यासों में ग्राम्य परिवेश की झलक मिलती है तो 'आड़ा वक्त' में ग्राम्य जीवन की सम्पूर्ण गाथा का चित्रण है। वे स्वयं कस्बाई परिवेश से हैं और गाँव, खेत-खलिहान, हल-बैल, कुआ-बावड़ी, चूल्हा चाकी सब उनकी आँखों में चलचित्र की भाँति मौजूद हैं। मिट्टी की सौंधी खुशबू की ठसक, गेहूँ की उमगती बालियों की लहक, कच्ची अमियाँ की महक सब उन्होंने देखा है।

गाँव के किसान अपने खेत को अपने शरीर का हिस्सा ही मानते हैं। उनके दिल में और रक्त नलियों में खेत खून बन के रहते हैं –

"दरअसल दादा के शरीर में धड़कते थे खेत !
नसों में खून बन बहते थे खेत !
साँस में हवा बनकर रहते थे खेत !

जिन दिनों खेत में फसल लहलहा रही होती, दादा की धमाचौकड़ी देख पसीना-पसीना हो जाते स्वरूप। सारे खेत एक दूसरे से दूर थे, दादा एक से दूसरे खेत तक कितनी ही बार आते जाते।

दादा जब तक खाना खाते, स्वरूप हाथ मे गोफनी लिए कंकड़ भर-भर कर दूर तक फेंकते रहते और मुँह से दादा की 'हर्रर्र ' की आवाज़ निकालते तो फसल का दाना खा रहे परिंदे डर की वजह से फुर्र से उड़ जाते।" 3

जीवन-यथार्थ का चित्रण करते समय प्राय: सभी उपन्यासकार तन और मन को, बुद्धि और हृदय को विभाजित कर देते हैं। यह विभाजन स्वाभाविक है कि द्वंद्व और टकराव, तदुपरान्त भटकाव को जन्म देता है। इतने बड़े संसार में जीवन में कौन से दो व्यक्ति समान रुचि और

डॉ. पद्मा शर्मा
प्राध्यापक, हिन्दी
महारानी लक्ष्मीबाई कला एवं वाणिज्य
महाविद्यालय ग्वालियर, म. प्र.
मोबाइल- 9406980207
इमेल- Dr.padma_sharma@rediffmail.com

स्वभाव के मिलते हैं ? जीना है तो जीवन से कुछ समझौता करना लाजमी है परन्तु हमारा उपन्यासकार बताता है कि समझौता व्यक्तित्व का हनन है-टूटो पर झुको नहीं।

गाँव में अब भी लड़कियों को उनका हिस्सा नहीं दिया जाता, ज़मीन के हिस्से के बदले में उनसे यह लिखा लिया जाता है कि उन्हें नकद और ज़ेवर के रूप में अपने हिस्से का धन मिल गया है अब उन्हें खेत में से अपना हिस्सा नहीं चाहिए-

"चौंतीस बीघा रकबा के चार खेत उत्तराधिकार में पिताजी को मिले थे। पिताजी के देहावसान के बाद पिताजी की फोती लिखकर दाखिल खारिज के वास्ते उस ज़मीन की मिसल चली तो जुगल किशोर और रामस्वरूप दोनों भाइयों के नाम पटवारी की खतौनी और खाते में चढ़ गए थे। इस प्रक्रिया में पहले सुभद्रा ने तहसीलदार के सामने लिखकर दे दिया था कि मुझे शादी-ब्याह के वास्ते नगदी और ज़ेवरात के रूप में एक हिस्सा अलग रख दिया गया है, वह कुल संपत्ति का तीसरा हिस्सा है, जिससे मैं पूरी तरह संतुष्ट हूँ, दादा और स्वरूप ने मुझे अपने हिस्से से ज़्यादा पैसा नगद दे दिया, तो आगे मुझे अपने घर की ज़मीन में से कुछ भी नहीं लेना है। वह न लिखती तो सुभद्रा के नाम भी इस ज़मीन का तीसरा हिस्सा चढ़ता।" 4- गाँव में अभी भी खेत मालिक किसान ख़ुद को खेत विहीन मज़दूरों से ऊँचा मानता है, कोई भी किसान विपरीत हालात में भी मज़दूरी करने नहीं जाता। अगर नयी पीढ़ी का किशोर या युवक मज़दूरी करने का प्रस्ताव रखे तो पुरानी पीढ़ी के लोग बेइज़्ज़ती समझ कर उसे मज़दूरी करने से रोकते हैं-

पिताजी खटिया पर ही निढाल पड़े थे। उनके पास बैठकर जुगल किशोर ने इधर-उधर की बातें कीं फिर धीरे से सड़क पर जाने की अपनी इच्छा बताई तो पिता बिफर उठे थे -"सारे नाक कटा दे हमारी। चौंतीस बीघा धरती को मालक, जात से ठाकुर और दूसरे घर की तगारी डारेगो। गाँववाले का कहेंगे। कल बात बिरादरी में जाएगी तो बनी - बनाई इज्जत घूरे में चली जाएगी।"

उसने डरते-डरते कहा 'काऊ सेठ की नहीं, सरकार की सेवा में जाएँगे, सरकार तो राजा कहलाती, भगवान् को रूप होती है वह। दूसरे गाँव वाले भी जा रहे हैं।" 5

गाँव में प्रथा है कि हरियाली अमावस्या को खेतिहर मज़दूर और सोंजिया (साझीदार मज़दूर) खेत मालिक के घर जाकर भोजन करते हैं, इसके लिए उन्हें न्यौते की दरकार नहीं होती। जब खेत मालिक की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न हो ऐसे में कोई आमंत्रण पर आ जाए तो व्यवस्था करना मुश्किल हो जाता है-

"उस दिन हरियाली अमावस थी और हर वर्ष की तरह सोंझिया भोजन करने आ गया था तब दादा और अम्माँ ने कैसी निगाहों से एक दूसरे को देखा था। क्या करें भाई, रिवाज है सो सोंझिया हर वर्ष हरियाली अमावस्या को तो भोजन करने आएगा ही उसे क्या मतलब उनकी स्थिति से! खैर किसी तरह पूरी-तरकारी का पक्का भोजन बना था।" 6

हमारा देश कृषि प्रधान देश रहा है। कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जिसमें परिवार के स्त्री, पुरुष दोनों को काम करना पड़ता है तात्पर्य यह कि पुरुषों के कार्य में स्त्रियों का बराबरी से सहयोग देना हमारे देश के लिए कोई नई बात नहीं है।7

किन्ही कारणों से जब भी गाँव के लोग विस्थापित होते हैं वो अपने छूट रहे पुराने मकान से खिड़की, दरवाज़े और कबेलू तक उठा कर नए मकान में लाने का प्रयास करते हैं। भले उनकी ज़रूरत न हो! क्योंकि उन वस्तुओं से भी उनका आत्मीय लगाव जुड़ा होता है-

"पिछली बस्ती से दस किलोमीटर दूर तय की गई इस नई बस्ती को नया धर्मपुर नाम दिया गया था। इस बस्ती को कुछ लोग नयागाँव भी कहते थे। यहाँ एक ही आकार प्रकार के सब मकान बनाए गए थे। गाँव में चार सौ घर थे, उसके लिए नई बस्ती में चार सौ मकान बनाकर उनकी दीवारों पर गेरू मिट्‌टी से नाम लिख दिए गए थे। एक दिन उनको सरकारी ट्रैक्टर-ट्रॉली से लाद-लाद कर नए गाँव में पहुँचाया जाना शुरू हुआ। गाँव के बहुत से लोग पुराने घर से सामान उठाते वक्त अपने घर के कबेलू, लकड़ी, दरवाज़े, चौखट, खिड़की भी उखाड़ के रखने लगे थे।" 8

शोषण की चक्की में पिसते हुए किसान-मजदूरों की मुक्ति ही बोहरे जी के समस्त लेखन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्‌देश्य रहा है। इसलिए उन्होंने इनके जीवन से सम्बन्धित समस्त समस्याओं का अत्यन्त यथार्थ चित्रण किया है। इस क्रम में उन्होंने दिखाया है कि दिन-रात मेहनत में अपना खून-पसीना एक करने वाले ये किसान भूखे रहते हैं और उनका खून चूसकर जीने वाले जमींदार, साहूकार-महाजन, सत्ताधारी और उनके सहयोगी कर्मचारी वर्ग ऐशो- आराम के साथ अपना जीवन व्यतीत करते हैं। बोहरे जी ने अपने उपन्यासों में शोषण कर्त्ताओं के काले कारनामों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए किसान- जीवन की यातना को मूर्त रूप दिया है।

गाँव का किसान अपने खेतों से बेतहाशा प्यार करता है, वह मानता है कि ज़मीन तो उसके पास अगली पीढ़ी को सौपने तक के लिए पुरखों की धरोहर है, वह खेतों से केवल फसल लेना अपना हक नहीं समझता वरन वे उसके जीवन का हिस्सा होते हैं-

"तुम्हारे पास ज़मीन तो अच्छी ख़ासी है। जुगल किशोर न हो तो एक आध खेत बेच दो यह कब काम आएँगे।' एकाएक विधायक बीच में बोले तो आग सी लग गई थी दादा को।

"खेत हमारे पुरखों की धरोहर हैं विधायक जी, उनमें कमी-बेशी करने का अधिकार नहीं है हमको, बस उनकी रखवाली करते हुए फसल खाते रहें और बच्चों को ज्यों का त्यों सौंप जाएँ इतनी ज़िम्मेदारी है हमारी।' कहते दादा ने ख़ुद पर मुश्किल से नियंत्रण किया था।" 9

गाँवों में सामान्य जन जीवन चलता रहता है। कोई भी घटना दुर्घटना होने के कुछ दिन बाद ही सब सामान्य हो जाता है किन्तु जब डाकुओं की आमद गाँव में होती है तब उनके जाने के बाद दैनिक चर्या फिर से प्रारम्भ हो जाती है-

"अधखुले दरवाज़े खुलने लगे और बूढ़े-

बच्चे-जवान बाहर निकलने लगे। गाँव का जीवन सामान्य होने लगा। घर-घर से बाल्टी-मटका लिये औरतें निकलीं और उनके ठट्ठ के ठट्ठ पानी के कुओं और हैंड पम्पों की तरफ बढ़ चले।" 10

गाँव के लोग जितना विश्वास डॉक्टर औऱ एलोपैथी की दवाओं पर करते हैं उतना ही एतबार उन्हें जादू-टोने औऱ गण्डा ताबीज पर रहता है।

'वे परहेज और दवाइयन को ध्यान रखियो जो डॉक्टर ने लिख भेजी हैं" प्यार भरी हिदायत के साथ दादा उठ गए थे और घर से बायीं तरफ जा रही गली में बढ़ लिए थे। मैंने अंदाज़ लगाया कि अब वे अपने जादू-टोने से जुड़े दोस्त जालम को सारी बातें बता कर बच्चे की सलामती के लिए गंडा-ताबीज बनवा कर लौटेंगे।" 11

पर्दा प्रथा अभी भी गाँव का अंग बनी हुई है। गाँव की स्त्रियाँ भले ही उम्र दराज क्यों न हों, लिहाज़ के लिए वे अपनी साड़ी का पल्लू चेहरे पर नाक तक खींच कर रखती हैं। रोज़ रोज़ के ज़ेवर पहनना और सखियों से मिलना उनके प्रतिदिन की क्रिया में सम्मिलित है-

"मामी ऐसी सजी-धजी रहती कि वे पैंतीस साल से कम की लगतीं। मामा ने लाड़ में आकर उन्हें दो सेर चाँदी की आयलें, लच्छे और करधनी बनवा दी जिसे पहनकर रुनक-झुनक करती मामी पूरे गाँव में फिरतीं। चौड़ी पट्टी की मोटी बनारसी साड़ी पहर के वे जब नाक तक पल्लू खींचकर किसी मर्द से बात करती तो दस बार अपने चूरियों भरे हाथ हिलाती, जिनके मदभरे संगीत में डूबा आदमी उनके आधे ढके चेहरे को देखने को लालायित हो उठता। नई बहू की तरह पूरे अदब और लिहाज से रहती थी वे। ....और इस अदब-लिहाज़ का ही कमाल था कि गाँव घर की बहू-बेटियाँ दिन भर उन्हें घेरे रहती और मामा के मकान से ही-ही ठी-ठी के स्वर गूँजते। नई उम्र की लड़कियों के लगाव का सबसे बड़ा कारण यह था कि उम्र में इतनी जेठी होने के बाद भी मामी बहू बेटियों से ऐसे खुलकर बतियाती वे जैसे वे उन सब की जनम-जनम की हम उम्र सहेलियाँ हैं।" 12

गाँव में हर वर्ग में बेरोज़गारी है। युवक तीस साल के हो चुके हैं, लेकिन उन्हें काम धंधा नही है। ऐसे कुछ बिगड़े युवक दूसरों से अकारण झगड़ा कर बैठते हैं, किसी की मुर्गी और बकरी चुरा के खा जाते हैं तो लड़कियों व महिलाओं के साथ छेड़छाड़ भी कर बैठते हैं।

गाँव में सांस्कृतिक धरोहर अभी भी विद्यमान है, चाहे तीज त्यौहार हों या व्रत उपवास, उन्हें पूरी विधि विधान और मनोयोग से मनाया जाता है। जिस बरस भी पुरुषोत्तम मास पड़ता है, गाँव की स्त्रियाँ समूह में नहाने नदी तालाब पर जाती हैं लौटकर भजन पूजन कीर्तन करती हैं औऱ कथा सुनती हैं-

ऐसे में एक दिन अम्मा से पता लगा कि गाँव की स्त्रियाँ हर तीन वर्ष में पढ़ने वाले इस अधिक मास यानी पुरुषोत्तम मास में नहान का व्रत ले रही हैं और इस बार अधिकांश महिलाओं की इच्छा है कि पंडित मुरलीधर शास्त्री की जगह उनके बेटे धरणीधर के मुँह से पुरुषोत्तम मास के महत्तम की कथा सुनें।

दो बजे धरणीधर ने पिता की असंख्य पोथियों में से पुरुषोत्तम मास की पोथी खोज निकाली और एक रेशमी पटुका में बाँधकर रख दी। ढाई बजे उन्होंने झकझकाते धोती कुर्ता पहने, माथे पर लंबा सा तिलक लगाया, इत्र की शीशी में रुई का फाहा भिगोकर कुर्ते पर रगड़ा और मंदिर की ओर चल दिए।

दूर से ही ढोलक-मंजीरों के साथ गाया जा रहा लोकगीत सुनाई पड़ रहा था -'कभी राम बनके कभी श्याम बनके चले आना ! प्रभुजी चले आना।' मंदिर के चौड़े दालान में उम्दा साड़ी और चोटी- बेंदुआ से सुघड़ता से तैयार होकर आई अधिक मास की सखियाँ उन्हीं के इंतज़ार में थी। बीच में एक ऊँची चौकी पर उनके लिए आसन बिछा था और उससे ऊँची पौधे पर चौकी पर पोथी रखने का इंतज़ाम किया गया था।" 13

गाँव का मंदिर सदा ही बाहर से आए अजनबी अतिथि के लिए विश्राम गृह होता है। फसल कटने के बाद ऐसे में प्राय: कभी कोई खेल तमाशे या कोई कथा भागवत करने वाले पण्डित गाँव पहुँचते हैं तो उनका सहर्ष स्वागत होता है-

"फसल कटने और खलिहान से निपटने के बाद के दिन थे यानी गर्मी का मौसम। उन दिनों बाहर से आए साधु और पंडितों के लिए गाँव का मंदिर एक स्थाई ठिकाना होता था। पंडित जी भी सीधे उसी मंदिर पर पहुँचे। भोजन पानी हुआ और दोपहर को जब उनकी मुलाकात गाँव वालों से हुई। उन्होंने अपना परिचय दिया कि उनका नाम रामजस त्रिवेदी है, चालीस किलोमीटर दूर के क़स्बे में रहते हैं और निस्वार्थ भाव से हर कहीं राम कथा सुनाते हैं, अगर गाँव वाले चाहेंगे तो यहाँ भी सुना देंगे। गाँव वालों की सहमति मिली तो पंडित जी कई दिन के लिए टिक गए थे।

घर-घर से गाँव की महिलाएँ और पुरुष मंदिर पर इकट्ठा होते होते और देर रात तक वहीं जमे रहते। सुबह पंडित जी से मिलने गाँव के लोग मंदिर पहुँचते तो दिन में भी के बहाने ख़ूब चर्चा होती।" 14

ग्राम्य जीवन पर लिखने वाले उपन्यासकारों ने ग्रामीण जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हुए संस्कृति के कई पक्षों को प्रभावी रूप से चित्रित किया है। राजनारायण बोहरे ने ग्राम्य जीवन को न केवल देखा है वरन उसे जिया भी है इसलिए उनके उपन्यासों में ग्राम्य जीवन और उससे संपृक्त समस्त पहलुओं को मोहक अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। ऐसा लगता है कि हम किसी गाँव की पगडंडी पर चलकर गाँव का अवलोकन कर रहे हों ... गाँव के दृश्य हमारी आँखों के आगे चलचित्र की भाँति गुजरने लगते हैं।

000

संदर्भ- 1 साहित्यिक निबंध डॉ रामसागर त्रिपाठी एवं डॉ शांतिस्वरूप गुप्त पृष्ठ 774, 2 वही पृष्ठ 780, 3 आड़ा वक्त- राजनारायण बोहरे, पृष्ठ 20, 4 वही पृष्ठ 25, 5 वही पृष्ठ 44, 6 वही पृष्ठ 42, 7 हिन्दी कथासाहित्य: समकालीन सन्दर्भ- डॉ ज्ञान अस्थाना पृष्ठ 10, 8 आड़ा वक्त- राजनारायण बोहरे, पृष्ठ 82, 9 वही पृष्ठ 32, 10 मुखबिर - राजनारायण बोहरे, पृष्ठ 11, 11 वही पृष्ठ 21, 12 वही पृष्ठ 59, 13 अस्थान- राजनारायण बोहरे, पृष्ठ 72, 14 वही पृष्ठ 57

(शोध आलेख)

मधु कांकरिया की कहानी कला और उनका वैचारिक संसार

शोध लेखक : डॉ. इंदू कुमारी

कहानी विधा के निर्माण और विकास की लंबी प्रक्रिया ने उसमें कई अपेक्षित बदलाव किये हैं, न केवल कथानक बल्कि भाषा, परिवेश, संवाद, पात्र आदि में भी। इस बदलाव का सबसे बड़ा कारण समाज एवं परिवेश में बदलाव है, जिसने लेखक के विचार को भी बदला है। शिवपूजन सहाय अपने निबंध 'कहानी कला' में लिखते हैं - "कथानक के लिए लेखक केवल ऐसी घटनाएँ लेता है, जो सम्मलित रूप से उसका कोई निश्चित मंतव्य करने की क्षमता रखती है।" 1 मधु कांकरिया की कहानियों में भी कथानक का चुनाव उनके वैचारिक संसार की व्यापकता को द्योतित करता है। उनकी कहानियों में शायद ही कोई समस्या, कोई विचार, कोई भाव, कोई सत्य उनकी नज़रों से बच पाता है। अब तक मधु जी के अनेक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें प्रमुख हैं- 'बीतते हुए', 'और अंत में ईशु', 'चिड़िया ऐसे मरती है', 'भरी दोपहरी के अंधेरे', 'काली चील', 'फ़ाइल', 'उसे बुद्ध ने काटा', 'अंतहीन मरुस्थल' और 'जलकुम्भी'।

मधु कांकरिया जी का समाज के प्रति आधुनिक, प्रगतिशील एवं यथार्थवादी नज़रिया है। उन्होंने अनेक ऐसे विषयों पर कहानियाँ लिखी हैं, जो समाज का ध्यान नहीं खींच पाते हैं। बदलते बाज़ार, समाज और पारिवार ने एकाकीपन के शिकार युवाओं को नशे की तरफ धकेला है। पति-पत्नी के संबंधों में बिखराव आया है। माता-पिता और बच्चों के बीच में दूरियाँ आई है। अनेक अपराधों ने अपने पैर पसार लिये हैं। मधु जी की 'और अंत में ईशु' कहानी में नशे की समस्या, 'फ़ाइल' में यौन शोषण, बलात्कर, अनाथ बच्चों की समस्या, 'जलकुम्भी' में अविवाहित माँ से जन्मी बेटी का जीवन, 'अन्वेषण' में प्रेम की ओर उन्मुख एक पादरी का द्वंद, 'युद्ध और बुद्ध' में आतंकवाद की समस्या, 'पॉलीथिन में पृथ्वी' में भ्रूण हत्या की समस्या का चित्रण हुआ है।

मधु कांकरिया की कहानियों में विभिन्न संस्कृतियों और उनके बीच का टकराव भी चित्रित हुआ है। भारत देश शांति का, बुद्ध के संदेश का देश है, लेकिन बदलती सामरिक कूटनीतिक माँग ने देश को रक्षा बजट पर खर्च करने वाले अग्रणी देशों में ला दिया है। शास्त्र और कलाओं की धरती, कश्मीर की हसीं वादियाँ आज आतंकवाद से ग्रस्त हो गई है। 'युद्ध और बुद्ध' कहानी युद्ध और आतंकवाद के सायें में डटे सैनिकों के जीवन को बहुत ही करीब से दिखाती है। बढ़ता डिजिटलीकरण कार्य की नई संस्कृति को जन्म दे रहा है, जिससे कार्य में कुशलता की माँग बढ़ी है। रोज़गार की तलाश और बेहतर शिक्षा ने युवाओं में पलायन को जन्म दिया है, परिणामस्वरूप परिवार का दायरा और सिमट गया। 'अट्ठारह साल का लड़का' कहानी में बच्चों का शिक्षा हेतु विदेश जाकर लंबे समय तक न लौटना, उनके माता-पिता को अकेला एवं बीमार बना देता है। "टॉबी, अजय, रवि, विवेक और विकास सब झलक दिखा-दिखाकर उड़ गए पेप्सी-कोला के देश में।" 2 मधु जी की कहानियों में वर्णव्यवस्था, साम्प्रदायिकता, नस्लवाद, औपनिवेशिकता, पूँजीवाद आदि के प्रति विरोध की संस्कृति देखने को मिलती है। यही नहीं मधु जी देश से बाहर विदेश में भी अपनी आलोच्य दृष्टि से घटनाओं का अवलोकन करती रहती हैं। पश्चिमीकरण और लोकप्रिय संस्कृति का भारत पर प्रभाव हो या भारत से अलग हुए पाकिस्तान, बांग्लादेश में हुए सांस्कृतिक बदलाव हो। मधु जी 'वह भी अपना देश है' कहानी में ढाका के मुस्लिम समाज में महिलाओं की स्थिति की हिन्दू समाज से तुलना करती हैं, वे पाती हैं कि मुस्लिम समाज में बिना तलाक़ के बहुविवाह स्त्रियों के जीवन को बहुत कठिन बना देता है। वे लिखती हैं- "मैं जब भी उसे बुर्के में देखती मुझे लालटेन के भीतर क़ैद जलती लौ की याद आती।"3 निश्चय ही महिलाओं के भीतर बहुत क़ाबिलियत है, बशर्ते उन्हें अवसर दिया जाए।

मधु जी ने अनेक आदिवासी क्षेत्रों में अपनी यात्रा के दौरान आदिवासियों के धर्मांतरण की प्रक्रिया पर भी गौर किया। 'अन्वेषण' कहानी में एक पात्र गुंजन, पादरी से कहती है- "भयंकर विपत्ति और दारुण अभावों के जंगल में जीवनयापन करते आदिवासियों को क्रोसिन की एक टेबलेट के प्रतिदान में ईसाइयत को अंगीकार करते मैं नहीं सोचती कि उनका यह धर्मपरिवर्तन

डॉ. इंदू कुमारी (एसोसिएट प्रोफेसर)
माता सुंदरी कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली 110002
मोबाइल- 9873405194
ईमेल- induvimal2013@gmail.com

किसी आत्मिक उत्कर्ष, तत्त्वज्ञान आपके टेन कमांडमेंट्स या बड़ी रोशनी में आने के फलस्वरूप हुआ होगा।"4 प्रलोभन देकर धर्म स्वीकार कराना ग़ैरकानूनी है, लेकिन ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, सामाजिक असुरक्षा प्रकृति पूजक आदिवासियों को ईसाई बनने पर विवश करती है।

मधु जी की समग्र वैचारिकी को देखें तो उनकी राजनीतिक विचारधारा मार्क्सवाद की तरफ झुकी है, परंतु वे अपने लेखन में वैचारिक संतुलन और सतर्कता निरंतर बनाये रखती हैं। 'चिड़िया ऐसे जीती है' कहानी की पात्र आकांक्षा नेपाल में हुई जनक्रांति को नेपाल का नया चेहरा कहती है। "नेपाल में हुई नई-नवेली जनक्रांति के बारे में उसने टीवी पर देखा और पत्रिकाओं में ख़ूब पढ़ा भी था और जाने क्यों उसे यह विश्वास होने लगा था कि एक बार यदि किसी विचार को रोप दिया जाए तो देर-सबेर उसे फलते-फूलते देर नहीं लगती।"5 निस्संदेह लेखिका लोकतंत्र की समर्थक हैं जनता के हितों की बात करती है।

मधु कांकरिया जी ने साहित्यिक विमर्शों जैसे- स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श एवं किन्नर विमर्श के अतिरिक्त किसान, युवा, सेक्स वर्कर, सैनिक, बच्चे एवं बुज़ुर्ग के साथ-साथ पशु-पक्षियों का दर्द भी चित्रित किया है। एक साक्षात्कार में मधु जी स्त्रीवाद के विषय में कहती हैं - "स्त्रीवाद से मेरा मतलब उस स्त्री से है जिसके पास वैज्ञानिक दृष्टि है, तार्किक दृष्टि है। जो सारे अंधविश्वासों और कर्मकांडों से मुक्त हो।"6 मधु जी अनुसार दहेज उत्पीड़न, बलात्कार, छेड़खानी, एसिड अटैक, कन्या भ्रूण हत्या, वेश्यावृत्ति, अशिक्षा जैसी समकालीन समस्याएँ स्त्रियों के विकास-मार्ग में जटिल बाधा हैं। 'पोलीथिन में पृथ्वी' कहानी में लेखिका ने स्त्री और पृथ्वी को जीवोत्पत्ति का पर्याय मानते हुए, उसके विनाश पर चिंता जाहिर की है। वर्तमान में प्लास्टिक प्रदूषण पृथ्वी की भूमि को बंजर बना रहा है, तो कन्या भ्रूण हत्या मानव जीवन को। इस कहानी में डॉक्टर कहता है- "मेरी बात नोट कर लीजिए मिस्टर कि औरत हो या धरती जब भी उसकी कोख से छेड़खानी की जाएगी नतीजे भयंकर निकलेंगे।"7 एक दूसरी कहानी 'फ़ाइल' में एनजीओ में रहने वाले उन अनगिनत बच्चों की फाइलों में दर्ज कहानी है जो किसी न किसी प्रकार के शोषण का शिकार हैं। मधु जी ने तटस्थ होकर अपनी कहानियों में स्त्रियों की शोषक और शोषित दोनों ही भूमिका चित्रित की है। मधु जी लिखती हैं- "ये परिवेश और संस्कार ही हैं जो स्त्री को सदैव यह याद दिलाते हैं कि वह स्त्री है।"8 अन्यथा स्त्रियाँ भी किसी पुरुष की भाँति ही उठना - बैठना, खाना-पीना, घूमना, पढ़ना, नौकरी करना, विचार व्यक्त करना चाहती हैं। वह प्राय: स्त्री को चिड़िया के समान देखती हैं जो विचारों की रूढ़ता को छोड़, उड़ सके। 'चिड़िया ऐसे मरती है' कहानी में रेशमा शादी के बाद अपने सभी स्वप्न छोड़कर पूरी तरह बदल चुकी होती है, जिसे देखकर उसका पूर्व प्रेमी कहता है- "कैसे लहरों के साथ दौड़ने वाली कविता, स्वप्न और सौंदर्य में ही विचरण करने वाली एक खरगोश लड़की सिर्फ दाल- रोटी की ही होकर रह गई है।"9 निस्संदेह दाल-रोटी जीवन का अपरिहार्य अंग है, लेकिन स्त्री ही नहीं बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अस्मिता बनाये रखना चाहिए। मधु जी के यहाँ स्त्री इसी अस्मिता के प्रश्न पर एक कदम और आगे बढ़ाती है, अपनी दैहिक और वैचारिक अस्मिता की ओर। मधु जी की कहानी 'चूहे को चूहा ही रहने दो' में स्त्री अपनी अस्मिता के लिए रुढ़िवादी पितृसत्तात्मक सोच को तोड़ती नज़र आती है।

आदिवासी विमर्श की दृष्टि से मधु जी की कहानियाँ अति महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि कोरी कल्पना से परे उनका स्वयं का शोध और अनुभव इस विमर्श से जुड़ा है। आदिवासियों के लिए सुरक्षित घर, पौष्टिक भोजन, आधुनिक शिक्षा, रोज़गार की गारंटी, स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध हों, साथ ही उनकी प्राचीन समृद्ध परंपरा, आस्था, संस्कृति, भाषा भी सुरक्षित रहे, क्योंकि कहीं न कहीं यह भारत की धरोहर का हिस्सा है। आदिवासी समाज और आदिवासी क्षेत्रों को विकसित करने के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे हैं, लेकिन जंगलों को काटकर, उनके आवास को नष्ट करके, उनके अधिकार छीनकर, उनकी परंपरा एवं संस्कृति में हस्तक्षेप करके किया गया विकास आदिवासियों को मंजूर नहीं। जिसमें एक बड़ा कारण यह भी है कि सरकार, विकास का सीधा समुचित लाभ उन तक पहुँचाने में असफल रही है।

निष्कर्ष:- समय के समानांतर कहानी की विषयवस्तु का चयन करती मधु जी प्राय: आधुनिक मुद्दों को केंद्र में रखती हैं। उनमें लेखिका होने के साथ-साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता के गुण भी है, यही कारण है कि अपनी छोटी से छोटी यात्रा में भी अपनी आलोच्य दृष्टि खोले रखती हैं। उनके विचार की भूमि में सबसे पहले वे लोग या वे मुद्दे आते हैं, जो ज़रूरी हैं प्रकाश में आने को। मधु जी कहानी कला के रूढ़ रूप से हटकर सहज और बोधगम्य प्रस्तुति पर ध्यान देती है, जिसके लिए कविता, सूक्तियाँ, मुहावरे, भाषायी वैविध्य, बिम्ब, संवाद आदि उनके ज़रूरी शास्त्रीय उपकरण हैं। इन प्रकार समग्रत: कह सकते हैं कि समय संदर्भों से सशक्त रूप से जुड़ी मधु कांकरिया जी की कहानी कला और वैचारिकी वर्तमान दौर में कहानी के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

000

संदर्भ सूची: 1. कहानी कला, शिवपूजन सहाय, गद्य कोश, 2. प्रतिनिधि कहानियाँ, मधु कांकरिया, पृष्ठ - 99, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013, 3. वह भी अपना देश है, मधु कांकरिया, पृष्ठ- 167, आलोचना पत्रिका, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, अंक 68, जनवरी-मार्च 2022, 4. प्रतिनिधि कहानियाँ, मधु कांकरिया, पृष्ठ- 155, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013, 5. वही पृष्ठ - 115, 6. मधु कांकरिया से जयश्री सिंह की बातचीत, समालोचन वेब पत्रिका, 23 अगस्त 2021, 7. प्रतिनिधि कहानियाँ, मधु कांकरिया, पृष्ठ- 142, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2013, 8. पृष्ठ-126, 9. पृष्ठ-90,

शोध आलेख

(शोध आलेख)

संजीव के 'फाँस' उपन्यास में किसान जीवन

शोध लेखक : श्वेता जायसवाल

श्वेता जायसवाल
शोधार्थी
हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

'फाँस'' किसान जीवन पर आधारित उपन्यास है। जिसमें संजीव ने विदर्भ के किसानों के बहाने सम्पूर्ण भारत के किसानों की दर्दकथा कही है। उपन्यास की पृष्ठभूमि है देशभर में लगभग पिछले दो दशकों से बढ़ रही किसानों की आत्महत्याएँ। बहुत ही ज्वलंत मुद्दा चुना है संजीव ने और शायद हिन्दी में पहली बार प्रेमचंद के 'गोदान' के बाद किसानों और गाँव की पूरी ज़िंदगी का दर्द और कसमसाहट सामने आई है। इस उपन्यास में किसान जीवन की सभी समस्याओं को केन्द्र में रखा गया है। जिसमें केवल महाराष्ट्र के यवतमाल जिले के बनगाँव का ही चित्रण नहीं है बल्कि आंध्रपदेश और कर्नाटक के किसानों सहित भारत के उन तमाम किसानों की कहानियाँ शामिल हैं जिन्हें पहले आधुनिक बीजों का इस्तेमाल करने के लिए फुसलाया जाता है फिर क़र्ज़ दिया जाता है। लेकिन कभी सूखे की मार कभी प्रकृति के मार के कारण सीधे-सादे किसानों की ज़िंदगी क़र्ज़ और सूखे के बोझ तले आत्महत्या करने को विवश है। ''वर्तमान किसान आन्दोलन की परिधि मात्र अपनी फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य तक ही सीमित नहीं है। बल्कि इसका संबंध देश के उस निम्न मध्य और निम्न वर्ग से भी है जो पूरी तरह सार्वजनिक वितरण प्रणाली से मिलने वाले अनाज पर निर्भर है। बाज़ार को खुला छोड़ देने के बाद अनाज के दामों का अंधाधुंध बढ़ने से इन वर्गों का जीना मुश्किल हो जाएगा तो दूसरी ओर दामों के घटने से किसानों के लिए आत्महत्या के अलावा कोई रास्ता नहीं रहेगा। उदाहरण के लिए पंजाब के एक गाँव में ही 52 विधवाएँ हैं जिनके पतियों ने उनकी पैदावार का उत्पादन मूल्य तक न मिलने के कारण आत्महत्याएँ की हैं।''1

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी अर्थव्यवस्था का आधार कृषि ही है। ग्रामीण समाज के अधिकांश लोग अपनी आजीविका के लिए कृषि पर ही निर्भर है। वर्तमान में किसान की फसलें अकाल के कारण सूख रही हैं, अतिवृष्टि के कारण बह रही हैं। जबकि सरकारी महकमे ने किसानों से मुँह मोड़ लिया है। जैसे उन्हें कुछ पता ही न हो। परिणामस्वरूप किसान विकल्पों के अभाव में फाँसी के फंदे पर झूल रहा है। अभी हाल ही में हुआ किसान आन्दोलन इसका प्रमाण है जहाँ वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए मौत के मुँह में समा गए। ''26 नवम्बर 2020 से शुरू हुआ किसान आन्दोलन 25 फरवरी 2021 तक पूरे दो महीने अहिंसक तरीके से चला। इस दौरान सरकार लगातार दबाव में रही। विशेषकर 26 जनवरी को किसान संगठनों द्वारा ट्रैक्टर परेड के आह्वान से।''2 इस उपन्यास में संजीव ने किसानों के पिछड़ेपन, दु:ख, दैन्य, अभाव, अज्ञान, अंधविश्वास के साथ विविध सामाजिक और किसान जीवन की गाथा को व्यक्त किया है। बीते वर्षों में हजारों किसानों ने अपनी आर्थिक विषमता के कारण आत्महत्या कर ली। अख़बार, रेडियो, टी.वी. सबने अफीम खा ली, ख़बर तक न हुई। ''पिछले 17 सालों में सामने आये आत्महत्या के मामलों में से 9300 किसान और 7300 खेत मजदूर थे। इनमें से 88 प्रतिशत ने क़र्ज़ के बोझ से दबकर आत्महत्या की। आत्महत्या करने वालों का 77 प्रतिशत छोटे किसान और एक तिहाई अकेले कमाने वाले थे। 11 प्रतिशत परिवारों के बच्चों की पढ़ाई छूट गई और साढ़े तीन प्रतिशत परिवारों में लड़कियों की शादियाँ नहीं हो सकीं। अधिकांश परिवारों में कोई-न-कोई सदस्य दुष्चिंता या अवसाद से ग्रस्त पाया गया।''3 राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार हर रोज़ दस किसान आत्महत्या करते हैं। इसका कारण एक ठोस व कारगर कृषि-नीति का अभाव है। आज खेती-किसानी एक मजबूरी और संभावित मौत का नाम है। बहुत से ऐसे किसान हैं जिनके पास खेती के अलावा दूसरा कोई विकल्प नहीं है। अगर उनके पास दूसरा विकल्प होता तो वे किसानी छोड़ देते। भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है और यहाँ के अधिकांश किसान विपन्न। कभी प्राकृतिक आपदा से तो कभी कीटों, टिड्डियों के आक्रमण से, तो कभी बंदर, भालू और सुअरों से फसलें बर्बाद होती हैं। इसके बाद जो फसल हाथ में आती है तो उसका कोई खरीददार नहीं मिलता जिससे वे मजबूर होकर मिट्टी के मोल पर फसलों को बेचने के लिए विवश हो जाते हैं। इस संदर्भ में प्रेमपाल शर्मा कहते हैं - ''फाँस खतरे की घंटी भी

है और आत्महत्या के विरूद्ध दृढ़ आत्मबल प्रदान करने वाली चेतना और ज़मीनी संजीवनी का संकल्प भी।"4 किसान खेती से भावात्मक रूप से जुड़े होते हैं और चाह कर भी वे खेती छोड़ नहीं पाते। इसलिए लाख मुसीबत पड़ने पर भी वे इसमें फंसे रहते हैं। और उनके बच्चे भी आगे चल कर खेती पर ही निर्भर रहते हैं।

संजीव के इस उपन्यास को पढ़कर लगता है कि प्रेमचंद के समय के किसान और आज के समय के किसान के जीवन और उनकी स्थितियों में कोई ख़ास अंतर नहीं आया है। दोनों की परिस्थितियाँ समान हैं। गोदान का अगला चरण है 'फाँस'। 'गोदान' में होरी अपनी परिस्थितियों को झेलकर भूखे पेट मरता है और फाँस में शिबू अपनी परिस्थितियों का सामना करते हुए भूखे पेट मरता है। उपन्यास में कहा गया है - "खेती कोई धंधा नहीं, बल्कि एक लाइफ स्टाइल है - जीने का तरीका। जिसे किसान अन्य किसी भी धंधे के चलते छोड़ नहीं सकता। सो तुम बाबा......तुम लाख कहो कि तुम खेती छोड़ दोगे, नहीं छोड़ सकते। किसानी तुम्हारे खून में है।"5 शिबू और उसके जैसे कई किसान हैं जो बैंक का क़र्ज़ न चुका पाने की स्थिति में अपनी जान गँवा देते हैं। क़र्ज़ न चुका पाने के कारण शिबू अपनी पत्नी शकुन के गले की हसुली बेचने को कहता है - "रानी ये क़र्ज़ गले की फाँस है निकाल फेंको और जिस दिन मैंने निकाल फेंका, वह जैसे निहाल हो गया।"6 किसान के जीवन को लेकर सरकार नये-नये प्रयोग करती है लेकिन उसकी ज़मीनी हकीकत कुछ और होती है। सभी योजनाओं का लाभ पूँजीपति उठाते हैं और किसानों के हिस्से आता है क़र्ज़ और आत्महत्या। इस उपन्यास में शिबू, सुनील या मोहन बाघमारे सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक यातनाएँ झेलते हुए, बैंक के क़र्ज़ से दबे रहते हैं। और मेहनत करके अनाज उगाते हैं, लेकिन बाज़ार में जब बेचने जाते हैं तो उस अनाज का मूल्य सेठ, साहूकार, नेता तय करते हैं। उचित मूल्य न मिल पाने की स्थिति में किसान आत्महत्या कर लेते हैं। "यह सच्चाई है कि बीज, खाद, मजदूरी और कृषि उपकरण की कीमतें लगातार बढ़ती रही हैं और अनाजों की कीमत उस अनुपात में नहीं बढ़ी हैं। यही कारण है कि किसानों की आर्थिक हालत ख़राब होती गई और क़र्ज़ के मकड़जाल में वे फँसते चले गए। इस फाँस से मुक्ति का रास्ता उन्हें आत्महत्या में दिखता है, इक्कीसवीं सदी का इससे बड़ा अभिशाप कुछ और नहीं हो सकता। किसानों की उपज और मेहनत का अवमूल्यन आज़ाद भारत में जितना हुआ उतना इतिहास में पहले कभी नहीं हुआ था। बल्कि यह कहना अनुचित नहीं होगा कि किसानों की जान का भी मोल नहीं समझा जा रहा है। यह विचारना आवश्यक है कि किसानों की यह दुर्दशा किसने की और क्यों?"7

भूमण्डलीकरण के कारण आज किसानों के ऊपर विदेशी, बीज, विदेशी खाद और विदेशी नस्ल की गाएँ थोपी जा रही है। देशी वस्तुएँ लुप्त होती जा रही है। किसानों के आत्महत्या का सिलसिला थमने का नाम नहीं ले रहा है। भारत में अनेक किसानों ने आत्महत्या कर ली। कभी बैंक के क़र्ज़ के कारण तो कभी प्राकृतिक आपदाओं के कारण, कभी भ्रष्ट नेताओं के भ्रष्ट नीतियों के कारण, कभी ग़रीबी के कारण, हर रोज़ भारत का किसान तिल-तिल कर मरने की विवश है। "सवाल यह है कि भारतीय किसान अकेला पड़ा कैसे। आम शेतकरी की बात करें तो क़र्ज़ में रहना उसकी नियति है, क़र्ज़ में पैदा होना, क़र्ज़ में ही मर जाना।"8 क़र्ज़ के इस भयानक आतंक ने किसानों का जीना मुश्किल कर दिया है। आज़ादी से पहले जमींदार और साहूकार दोनों किसानों को लूटते थे और आज़ादी के बाद गाँव का बड़ा भूपति साहूकार बनकर अपने ही किसानों को लूट रहा है। न केवल जीते जी बल्कि मरने के बाद भी। साहूकार ही तय करता है कि मृतक की आत्महत्या पात्र है या अपात्र ताकि मिलने वाले सरकारी अनुदान में वह अपना हिस्सा तय कर सके।

सरकार किसानों के लिए नीतियाँ तो बनाती है। लेकिन वो नीतियाँ केवल सरकारी फाइलों में ही बंद पड़ी रहती है। उसका यथोचित क्रियान्वयन नहीं हो पाता जिसके कारण किसानों को उसका लाभ नहीं मिल पाता है। यह उपन्यास भारत के कृषि नीति के साथ- साथ पूरे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न खड़ा करता है। साथ ही साथ भूमंडलीकरण के आक्रामक दौर में कृषि विरोधी नीति किसानों की आत्महत्या की दहलीज पर पहुँचाकर ही दम लेती है। अभी हाल ही में कृषि संबंधित जो कानून बनाए गए यह उसका उदाहरण है - "यह एक करुण सच्चाई है कि दिल्ली में किसानों के आन्दोलन के पचासवें दिन तक 121 लोग इस आन्दोलन में शहीद हो चुके हैं। स्वतंत्रता आन्दोलन के बाद स्वतन्त्र भारत में शायद यह पहला मौका है जब किसी शांतिपूर्ण आन्दोलन में इतने किसानों और सन्तों की शहादत हुई है। अपनी जान की बाजी लगाकर किसान पिछले पचास दिनों से ठिठुरती रात में भी इस बात के लिए सड़कों पर आन्दोलनरत है कि सरकार ने कृषि सम्बन्धी जो तीन कानून बनाये हैं, उन्हें वापस ले, लेकिन सरकार उनकी बात सुन नहीं रही है। दूसरी तरफ सरकार शोर यह मचा रही है कि उसने किसानों के हित में तीनों कानून बनाये हैं और किसान अपने ही हित के कानून को समझ नहीं रहे हैं। क्या भारतीय किसान इतने नासमझ हैं कि अपने हितों को भी वे नहीं पहचान सकते?"9

इस उपन्यास की मुख्य समस्या किसानों की आत्महत्या है। ग़रीबी और बेकारी से जूझते-जूझते कैसे वह ज़िंदगी से हार मान बैठता है, यही उपन्यास का मुख्य विषय है। 'फाँस' की टिप्पणी में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि - "यह उपन्यास प्रेमचंद के कथा-साहित्य की प्रगतिशील परम्परा का विकास है।"10 संजीव ने महाराष्ट्र के विदर्भ ही नहीं, विदर्भ को केन्द्र में रखकर उन्होंने तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, बुंदेलखण्ड सभी जगह के किसानों की दुर्दशाओं को बताने का प्रयास किया है। यही नहीं देश की सीमा लांघकर वह सात समन्दर पार अमेरिका के किसानों के पास भी पहुँचते हैं। संजीव किसान के ज़िंदगी

की बारीकियों तक पहुँचने के लिए उनके ज़िंदगी के बीच उतरते हैं। संजीव का यह उपन्यास वास्तव में एक विशद पड़ताल है तथा एक गहन खोज है जो किसान जीवन की हर तह को खोलने में सक्षम है। "वर्तमान विकास के इस दौर में पूँजी का खेल जारी है। इसने देशभक्त किसानों और मजदूरों को हाशिए पर धकेल दिया है। जैसे ब्रिटिश शासन काल में साहूकारों ने अकाल के दौर में किसानों को क़र्ज़ देकर पूरा कलकत्ता खरीद लिया था।"11 यह उपन्यासकार हमें आने वाले पल की भयावहता का एहसास भी करवाता है। उपन्यासकार की चिन्ता है कि राजा बने इन बन्दर नेताओं के आसरे बैठना उचित नहीं, किसान को ख़ुद सामूहिक रूप से कुछ करना चाहिए। उसे ख़ुद आत्मनिर्भर होना होगा। बैल और बाग का सहारा लेना होगा। पैदा कम होगा, कम सही। जब कोई उसकी चिन्ता नहीं करता, तो उसे भी इन नेताओं, व्यापारियों का पेट पालने की चिन्ता छोड़ देनी चाहिए।

000

संदर्भ- सं. बिष्ट पंकज, समयांतर, जनवरी 2021, पृष्ठ सं.-06, सं. पाण्डेय के. के., जनमत, फरवरी 2021, पृष्ठ सं.-03, सं. बिष्ट पंकज, समयांतर, फरवरी 2021, पृष्ठ सं.-13, सं. प्रो. नवले संजय, उपन्यासकार संजीव किसान- आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ सं.-105, संजीव, फाँस, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृष्ठ सं.-17, वही, पृष्ठ सं.-105, सं. कालजयी किशन, सबलोग, जनवरी 2021, पृष्ठ सं.-05, संजीव, फाँस, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2015, पृष्ठ सं.-105, सं. कालजयी किशन, सबलोग, जनवरी 2021, पृष्ठ सं.-04, सं. प्रो. नवले संजय, उपन्यासकार संजीव किसान-आत्महत्या यथार्थ और विकल्प, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृष्ठ सं.-99, सं. डॉ. चंदेल उपेन्द्र सिंह, डॉ. मेहरा दिलीप, आदिवासी संवेदना और हिन्दी उपन्यास, उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2017, पृष्ठ सं.-182

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

एक गधा चाहिए

समीक्षक : प्रो.नव संगीत सिंह

लेखक : डॉ. दलजीत कौर

प्रकाशक : डेटालाइन पब्लिशर चंडीगढ़

समीक्षा हेतु पुस्तक डॉ. दलजीत कौर का एक व्यंग्य संग्रह है, जिसमें कुल 35 व्यंग्य शामिल हैं। पुस्तक के सभी व्यंग्य आसपास के माहौल और समाज के बदसूरत चेहरे को उजागर करते हैं। लेखिका ने बहुत पैनी दृष्टि से हर स्थिति का अवलोकन किया और फिर उसे अपनी कलम के माध्यम से तीव्र कटाक्ष द्वारा प्रस्तुत किया। पुस्तक का शीर्षक व्यंग्य 'एक गधा चाहिए' साहित्यकारों द्वारा पुरस्कार/ सम्मान हासिल करने के लिए प्रयुक्त किये जाते घटिया क़िस्म के तौर-तरीकों से संबंधित है। 'सम्मान में मिला सामान' में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि वास्तव में सम्मान में दिए जाने वाले- शाल, स्मृति चिह्न, प्रशंसापत्र, धन-राशि की कीमत सम्मानित होने वाले लेखक से पहले ही वसूल कर ली जाती है। 'आर्ट आफ टॉक' में डबल मानक खेलने वाले साहित्यकारों पर कटाक्ष है, जो एक ओर तो किसी से सम्मानित होने वाले लेखक की ज़ोर-शोर से निन्दा करते हैं, वहीं दूसरी ओर उसी सम्माननीय लेखक को बधाई देते हैं। 'प्रसिद्धी का बुखार' में लेखकों द्वारा समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, फेसबुक के माध्यम से ख़ुद का गुणगान किया जाता है, यहाँ तक कि किसी से लिखवाई समीक्षा अपने नाम पर छपवाई जाती है। 'प्रेमचन्द की वापसी' में बताया गया है कि लेखक की प्रतिभा कोई मायने नहीं रखती, बल्कि उसका 'जुगाड़ी' होना आवश्यक है। यानी वह या तो विदेशी हो, या ऊँचे ओहदे पर हो, या फिर किसी नेता/मंत्री/अध्यक्ष का निकटवर्ती हो। 'हो गई आँखें चार' में चश्मा (ऐनक) पहनने/ न पहनने के तर्क को बहुत ही व्यंग्यात्मक शैली में दर्शाया गया है। 'कुछ तो करो ना' में कोरोना की भयानक महामारी के दौरान देश के लोगों की अंध-भक्ति/अंध-श्रद्धा/अंध-विश्वास को निशाना बनाया गया है। 'साथ चलेंगे शमशान तक' में लोक-दिखावे के लिए अंतिम संस्कार के लिए श्मशान घाट तक जाना आवश्यक दर्शाया हैं। 'बत्ती गुल' अपने वाहनों से लाल/नीली बत्ती को हटाने के बाद उच्च अधिकारियों की दशा के बारे में है। 'मत आना अतिथि' भी कोरोना संकट के दौरान घर आने वाले मेहमानों को रोकने के बारे में है। कोरोना के समय लोगों ने अपने घरों के दरवाज़ों पर लिखवा लिया था- 'कृपया हमारे घर न आएँ...।'

इस प्रकार इस संग्रह की बाकी व्यंग्य-रचनाओं में सामाजिक घटनाओं को तंज़ की दृष्टि से देखा गया है। डॉ. दलजीत कौर द्वारा लिखित साहित्य (काव्य-संग्रह, बाल-कविताएँ, कहानी, लघुकथा, अनुसंधान आदि) में नई विधा व्यंग्य का शामिल होना शुभ संकेत है।

000

प्रो. नव संगीत सिंह, स्नातकोत्तर पंजाबी विभाग, अकाल यूनिवर्सिटी, तलवंडी साबो-151302 (बठिंडा) पंजाब मोबाइल- 9417692015

(शोध आलेख)

शिवानी की कहानियों में नारी-चरित्र

शोध लेखक : महेन्द्री कुमारी

शोध सारांश -

हिन्दी की लोकप्रिय साठोत्तरी कथा लेखिका गौरापंत 'शिवानी' स्वातंत्र्योत्तर युग की जानी मानी हिन्दी लेखिका रही है। इनके लेखन तथा व्यक्तित्व में उदारवादिता और परम्परानिष्ठता के अद्‌भुत मेल की जड़े बहुत गहरी थी। इसी विविधतापूर्ण जीवन शैली और परिस्थितियों को ध्यान में रखकर इन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी। इनके द्वारा रचित कथा साहित्य में नारी जीवन की अभिव्यक्ति प्रमुख रूप से हुई है। शिवानी ने भारतीय नारी के व्यक्तित्व और संस्कारों को बहुत ही सुन्दर ढंग से उकेरा है। इनकी समूची कहानियों में कालानुगत वास्तविकता के साथ नारी के अलग स्वरूपों का चित्रण मिलता है। जिसके माध्यम से शिवानी के कथ्य का स्वरूप उजागर होता है। कथात्मक विविधता रचनाकार के अनुभवों के आधार पर जन्म लेती है। रचनाकार का अनुभव जितना व्यापक और गहरा होता है उतना ही उसका कथ्य आकर्षक बनता जाता है। शिवानी ने अपने अनुभव आधारित नारी के चरित्र से जुड़ी संभावनाओं की अभिव्यक्ति अलग-अलग रूपों में की है।

तकनीकी शब्दावली - नारी-चरित्र, गृहस्थ स्त्री, प्रशासनिक अधिकारी, ममतामयी, अपराधिनी आदि।

परिचय - समकालीन हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास का एक अनूठा लोकरंजित अध्याय गौरांपत शिवानी है जो नारी संवेदना की चितेरी लेखिका मानी जाती है। नारी-जीवन की अभिव्यक्ति का अद्‌भुत रूप अपनी लेखनी की जादूगरी से बिखेरने वाली शिवानी ने अपनी कहानियों में नारी की पुत्री रूप में, पत्नी रूप में, बहन रूप में और माँ के रूप में चारित्रिक विशेषताओं को उजागर किया है। इन्होंने नारी संबंधी अनेक विशेष पहलुओं को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है तो दूसरी ओर सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी की भूमिका के अनेक आयाम चित्रित करने का प्रयास किया। नारी सम्पूर्ण समाज की वह संचालिनी शक्ति हैं जिसके माध्यम से समाज का कल्याण होता है। नारी समाज में अलग-अलग स्वरूपों में अपनी भूमिका अदा करती है जिससे उनका चरित्र सामने आता है। शिवानी ने स्त्री की चारित्रिक सम्भावनाओं की अभिव्यक्ति कर समाकालीन हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध बनाया है।

शिवानी ने नारी और उसके चरित्र के विभिन्न पहलुओं को गहराई के साथ देखा और उसे यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत किया है। आज के व्यस्तम जीवन में नारी के वास्तविक यथार्थ को अभिव्यक्ति अनेक रूपों में होती है। शिवानी की 'प्रतिशोध' कहानी में नारी का पत्नी रूप में चरित्र सामने आता है। एक आई.ए.एस. पति की किस प्रकार पति के अधिनस्थ अधिकारियों से समान बटोरती है और पति पर शासन करती है। सौदामिनी शिक्षित एवं समृद्ध परिवार की कन्या होने के अहम से पति के प्रति रूखा व्यवहार अपनाती है। साथ ही अपने सास-ससुर के प्रति इतना ह्नदयहीन व्यवहार करती है जिससे वे अपने पुत्र के घर आने का साहस ही नहीं करते है। सौदामिनी में स्त्रैण भावनाओं की कमी होने से अपने पति को खुश नहीं रख पाती है। इस प्रकार समसामयिक जीवन में दिखाई पड़ने वाली पत्नी की चारित्रिक विशेषताओं को उजागर किया है। वहीं दूसरी कहानी 'करिए छिमा' में श्रीधर की पत्नी अपने ख़राब स्वभाव के कारण अपने पति के साथ दुर्व्यवहार करती है जिससे श्रीधर ऊब जाता है और वन-विलाव सा अनावश्यक भटकता फिरता है।

शिवानी ने अलग-अलग रूपों में नारी-चरित्र को अभिव्यक्त किया है। नारी गृहस्थ जीवन में रहकर किस प्रकार अपनी भूमिका अदा करती है। इनकी 'बंद घड़ी' कहानी में स्त्री का गृहस्थ

महेन्द्री कुमारी
शोधार्थी - हिन्दी विभाग
महाराजा सूरजमल विश्वविद्यालय,
भरतपुर
राजस्थान

रूप में चरित्र-चित्रण हुआ है। कहानी की मुख्य पात्र माया भावुक स्वभाव की नारी है जो परिवार में समायोजन नहीं कर पाती है। वहीं गृहस्थ रूप में नारी चित्रण करने वाली कहानी 'ज्यूडिथ से जयन्ती' में रमा दी माँ के मरने के बाद किस प्रकार गृहस्थी सँभालती है जिसे देखकर सब दंग हो जाते है। अपनी माँ के मरने पर पाँच वर्ष छोटे भाई को अपनी छोटी उम्र में जिस गंभीरता से सँभालती है, इसके साथ-साथ भण्डार, चौका, तिजोरी व लेन-देन में कभी भूलकर भी ढोकर नहीं खाती है। वर्षों बाद पिता की मृत्यु होने पर रमा अकेली पड़ जाती है। न सास, न ससुर, न कोई आत्मीयजन। इसी से वह कर्मठ नारी इधर-उधर भागदौड़ कर एक स्कूल में नौकरी प्राप्त करती है। नौकरी के साथ अपना अध्यापन कार्य जारी रखती है और बी.ए, एम.ए. कर ट्रेनिंग कर लेती है। इस प्रकार एक नारी का चरित्र-चित्रण रूपों में लेखिका ने अभिव्यक्ति किया है।

इसी प्रकार शिवानी ने प्रशासनिक अधिकारी के रूप में नारी-चित्रण को साहित्य के कागज पर उकेरा है। शिवानी अपने शब्दों के चलचित्र रूप में हमारे मन के परदे पर नारी चित्रण कर सकी। 'अपराजिता' कहानी के माध्यम से करती है। कहानी की पात्र आरती एक उच्चपदस्थ अधिकारी है जिसकी शादी एक साधारण ग्रामीण व्यक्ति से होती है। आरती उच्च पद प्राप्त होने से अहंकारग्रस्त होकर पति से दुर्व्यवहार करती है। अपनी अफसर मित्र मण्डली के बीच अपने पति को शोधकार्यरत विद्वान के रूप में प्रस्तुत करती हैं इस अभिनय से ऊबकर भजन एक औघड़ स्वामी के आश्रम में चला जाता है। इस प्रकार एक नारी का निरंकुश व्यवहार, झूठा दिखावा और अहंकारी प्रवृत्ति का चरित्र अजागर किया है जो समसामयिक स्थिति को परिलक्षित करता है। वहीं इनकी 'जिलाधीश' कहानी में भी एक मध्यमवर्गीय परिवार की असाधारण लड़की सुमन का चरित्र सामने आता है। सुमन को कड़े संघर्ष के बाद जिलाधीश का पद प्राप्त होता है। सचिवालय का वेदाध्ययन कर सुमन एक ऐसे जिले की बागडोर सँभालने पहुँचती है जहाँ एक नहीं अनेक जिलाधीशों को सरदर्दी हुई। क्योंकि यह जिला प्रदेश का 'प्राबल्म चाइल्ड' था। लेकिन सुमन का साहस तमाम मुश्किलों को अपने पर हावी नहीं होने देता है। सुमन का गांभीर्य, तटस्थता ओर असाधारण प्रतिभा को देखकर वहाँ के विरोधी दल के नेता रणधीर सिंह दंग रह जाते है। सुमन अपने कार्यस्थल के अलावा कहीं नहीं जाती थी, न किसी से उतनी मैत्री करती। मींटिग के समय सुमन अपने मातहतों के बीच ऐसे तनकर कुर्सी पर बैठी रहती जैसे कैबिनेट के मंत्रीगणों से घिरी गरिमामयी प्रधानमंत्री हो। कभी भी रणधीर सिंह ने सुमन को जलाते संकुचाते, झेंपते नहीं देखा था। क्योंकि उसमें गहरा आत्मविश्वास था जो कि एक प्रशासनिक अधिकारी में होना चाहिए। इस तरह नारी का चरित्र-चित्रण शिवानी द्वारा रचित अनय कहानियों 'उपहार', 'केया', गूंगा', 'गहरी नींद', 'निर्वाण' आदि में भी नारी चरित्र आर्थिक रूप से सुदृढ़, आत्मनिर्भर, सुघड़ और शिक्षित रूप में मिलता है।

इसी तरह शिवानी ने सामाजिक नारी के रूप में नारी चरित्र का चित्रण अपनी कहानी 'अपराधी कौन' में बख़ूबी से किया है। यह कहानी दो स्त्रियों के चरित्र का चित्रण करती है जो आभूषणों को लेकर झगड़ती है। पहले दोनों सहेलियाँ प्रगाढ़ मैत्रीपूर्ण व्यवहार के कारण नन्द-भोजाई के रिश्ते में बंध जाती है। आभूषण लालसा के कारण दोनों की प्रगाढ़ मैत्री का अंत हो जाता है। इस प्रकार नारी के चरित्र में लालची प्रवृत्ति प्रवेश करती है। इसी प्रकार इनकी 'जोकर' कहानी में नारी चरित्र का चित्रण अलग-अलग सामाजिक परिवेश में होता है। कहानी का पात्र श्रीमती तिलोन्मता देवी राजा सतीशदेव वर्मन की इकलौती बेटी है। बचपन से ही वह गायन में अपूर्व क्षमता रखती है। शादी के बाद उसके पति द्वारा इकलौते बेटे को सर्कस कम्पनी को बेचने पर तिलोत्तमा झुंझलाहट और विवशता से पागल हो जाती है। इस प्रकार एक राजकन्या के चरित्र में परिवर्तन आता है। इसी प्रकार 'जा रे एकाकी' में लेखिका ने नारी सुलभ स्वभाव ईर्ष्या, विद्वेष के चरित्र का चित्रण किया है। आर्थिक असमानता के कारण कहानी की पात्र देवरानी और जेठानी में ईर्ष्या और क्रोध की भावना घर कर जाती है। जिससे वे अपना सब कुछ खो बैठती हैं। इस भावना से जेठानी हत्या तक का कदम उठाती है तो देवरानी जेठानी के बच्चे की हत्या भी करती है। जो आज के समय में मुख्य रूप से घटित हो रहा है। इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से नारी मन की ईर्ष्या और प्रतिशोध की भावना का घृणात्मक चरित्र का चित्रण हुआ है।

'गहरी नींद' कहानी की उमा अपराधिनियों की देखरेख करने वाली वार्डन है। पिता की मृत्यु हो जाने पर उसकी शादी पुलिस अफसर से कर दी जाती है। उसके पति से पहले दो पत्नियों की दो पुत्रियाँ भी थी। उमा अपने स्नेह, करुणा से परिपूर्ण स्वभाव के कारण सबका मन जीत लेती है, लेकिन पति को नहीं जीत पाती और अपने पति का अनुचित व्यवहार सहन न कर पाने पर आत्महत्या कर लेती है। उमा में प्रतिशोध की भावना नहीं थी जिससे वह स्वयं को अपराजित स्वीकार करती हुई आत्महत्या का कदम उठाती है क्योंकि वह एक स्वाभिमानी महिला थी।

वस्तुत: शिवानी की कहानियों में कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विविधता मिलती है। साथ ही इनके कहानी साहित्य में लेखिका के अनुभव आधारित अलग-अलग स्वरूपों का चित्रण भी हुआ है। शिवानी ने नारी के चरित्र की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार की है कि नारी कहीं दुर्गा, कहीं सती, कहीं ममतामयी, कहीं स्वाभिमानी, कहीं स्वार्थपरायणा, कहीं भावुक तो कहीं ज़िम्मेदार व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने वाली सुशिक्षित नारी का चित्रण करती है।

000

संदर्भ-

1. शिवानी की श्रेष्ठ कहानियाँ, शिवानी पृ. 4-5, 2. वही पृ. 66,90, 3. मेरी प्रिय कहानियाँ - शिवानी, पृ. 127, 4. वही पृ. 39,79,96,97,100, 5. एक थी रामरथी, शिवानी, पृ. 125, 6. करिए छिमा, शिवानी, पृ. 53, 7. अपराधिनी, शिवानी, पृ. 91, 8. पुष्पहार, शिवानी, पृ. 69, 9. माणिक, शिवानी, पृ. 95

(शोध आलेख)

किन्नर समाज : तीसरी दुनिया की तीसरी ताली

शोध लेखक : डॉ. अर्जुन के. तडवी

किन्नर समुदाय के लोगों ने अपने अनुभव और विचारों को व्यक्त करने के लिए 'आधा सच' नाम से अपना ब्लॉग आरंभ किया है। हिजड़ों की विश्व सौंदर्य प्रतियोगिता के आयोजन के संबंध में ब्लॉग में लिखा गया है - "विकलांगों को जोड़ने का एक यही रास्ता है? सौंदर्य स्पर्धाओं के बाद ये कहाँ खो जाते हैं? सेलिना जेटली की तरह मॉडलिंग या फिल्मों में आकर सम्मानपूर्वक जीवन क्यों नहीं जी पाती हैं? क्यों नहीं लैंगिक विकलांग बच्चों के लिए आज तक लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी या शबनम मौसी ने स्कूल की माँग की या ख़ुद ही खोल दिया। क्यों नहीं ये आगे आकर ट्राई जैसी संस्थाओं का सहयोग लेकर बच्चों को पढ़ाती-लिखाती हैं? क्यों नहीं इन आयोजकों ने मुंबई में ट्रेन में भीख माँगने या कमाठीपुरा में सेक्स के भूखे दरिंदों की भूख मिटा कर अपने पेट की भूख मिटा कर दर्दनाक जीवन जीने वाले मासूम लैंगिक विकलांगों को इस आयोजन की सूचना तक ना दी? ये कहेंगे कि हमने तो अख़बारों में सूचना दी थी तो ज़रा ये कुटिल बताएँ कि कितने हिजड़े अख़बार पढ़ने लायक बनाए आज तक इन लोगों ने? आख़िर सवाल कि इन आयोजकों ने कैसे निर्धारित करा कि सारे प्रतिभागी लैंगिक विकलांग (हिजड़ा) ही हैं, क्या कोई डॉक्टरी सर्टिफिकेट था? यदि नहीं तो लाली पाउडर लगाकर तो शाहरुख खान से लेकर आमिर खान तक सभी भाग ले सकते थे। इस दिशा में कोई प्रयास न करा जाएगा कि लैंगिक विकलांगता के चिकित्सीय पैमाने निर्धारित हों और इस आधार पर उन्हें शिक्षा से लेकर नौकरियों में वरीयता दी जाए, आरक्षण दिया जाए।"

किन्नर को अपने साथ समाज की मुख्यधारा से जोड़ने की ज़रूरत है, उनको सम्मान के साथ रोज़गार मुहैया कराएँ जाएँ। हिजड़ा नहीं, हमें "इंसान' समझा जाए इतनी सी उनकी माँग है। किन्नर समाज केवल जैविक असमानता को ही नहीं झेलता, वरन उसे समाजिक, शारीरिक, मानसिक असमानता व शोषण के दौर से भी गुजरना पड़ता है।

हिजड़ों को लेकर समाज का जो हिकारत भरा नज़रिया है, उनके प्रति जो भाषा है और उनको मनोरंजन का साधन मात्र समझने की जो मानसिकता है, उसी का परिणाम है कि हिजड़ों की भाषा कभी-कभी गाली गलौच की सीमा को पार कर जाती है। दरअसल जो घटिया मानसिकता और हिकारत समाज से उन्हें मिलती है वही हिकारत समाज को अपने व्यवहार द्वारा लौटा देते हैं। प्रकृति द्वारा प्रदत्त शारीरिक कमी के कारण समाज की मुख्यधारा उन्हें सम्मान नहीं

डॉ. अर्जुन के. तड़वी,
एसोशियेट प्रोफेसर,
आटर्स कॉलेज, पाटन, 384265
(उ. गुजरात)

दे पाती। रोज़गार के अवसर ना देना, स्कूलों में पढ़ने का अवसर ना देना मुख्यधारा के समाज का एक षड्यंत्र है, ताकि यह समाज पारंपरिक पेशे में उलझा रहे। भीख माँगता रहे और वेश्यावृत्ति के जाल से बाहर न निकल सके। किसी स्कूल की कुर्सी पर या कलेक्ट्री में और प्रशासन में कभी किसी हिजड़े को बैठे देखा है?

कितनी जगह 'एम' या 'एफ' कॉलम के अतिरिक्त तीसरा ऑप्शन होता है? कभी कहीं मॉल या पब्लिक पैलेस में थर्ड जेंडर के लिए अलग वॉशरूम की सुविधा देखी है? इन सब जटिलताओं व समस्याओं से किन्नर समाज जब जूझता है तो गहिर है उसके स्वभाव में कठोरता और कड़ुआपन व्यक्त होगा। मेकअप की मोटी परत के नीचे अपनी आंतरिक ज़िंदगी की बदसूरती को छुपाते हुए किन्नर का जीवन सामान्य कैसे हो सकता है? उनके जीवन में व्याप्त वेदना, छटपटाहट, मजबूरी और जीवन में भीतर तक पैठ जमाए दर्द की दास्तां को समझने की ज़िम्मेदारी आमजन की है।

"शिक्षा की कमी, अन्य व्यवसाय में जुड़ने के सीमित अवसर, आर्थिक तंगी व परिवार का भावनात्मक लगाव न होना ही अधिकांश हिजड़ों को यौन कर्म की ओर ले जाता है। लोगों की सोच में यह रचा बसा है कि सारे हिजड़े यौन कर्मी हैं, जो ग़लत है। इसी कारण इन्हें सामाजिक सम्मान नहीं मिल पा रहा है, इसी कारण इन्हें समाज में अवांछित माना जाता है। लोगों को इन्हें देखने, समझने, परखने के लिए अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा, जो अश्लीलता का चश्मा लगाकर इन के बारे में देखते एवं सुनते हैं, वह उतारना होगा।" धरती पर तीसरी योनि का वजूद है तो हमें इनके हक दिलाने में किन्नर समुदाय की मदद करनी चाहिए। इनको पढ़ने और समझने के बाद ही हिजड़ा समुदाय को लेकर जो पूर्वाग्रह और भ्रांतियाँ हैं उनसे समाज मुक्त हो सकता है। किन्नरों की मानसिक पीड़ा को साहित्य के जरिए समझा जा सकता है। साहित्य ही वह प्लेटफार्म है जो किन्नरों को सामाजिक समानता के अधिकार दिलाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।साहित्य के माध्यम से हिजड़ों की जीवन शैली की पड़ताल कर इस समुदाय के बारे

महेंद्र भीष्म जी का उपन्यास 'किन्नर कथा' किन्नरों के जीवन का ज्वलंत दस्तावेज है। राजा जगत् राज सिंह बुंदेला के घर रानी आभा सिंह की कोख से दो जुड़वा बच्चियों का जन्म होता है। जिनमें से एक शिशु(सोना) के जननांग अविकसित रहते हैं। यहीं से शुरू हो जाती है सोना के हाशियेकरण की कथा। राजा जगत् राज सिंह अपनी बेटियों रूपा व सोना को जान से भी ज़्यादा प्यार करते थे। लेकिन सोना के हिजड़ा होने की बात खुलने पर वह दीवान पंचम सिंह को सोना को मारने का हुक्म देते हैं। यही सच्चाई है हिजड़ों के जीवन की जिसे महेंद्र भीष्म ने 'किन्नर कथा' उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। उस नन्ही बच्ची का क्या दोष जिसे ईश्वर ने अपूर्ण बनाकर भेजा है? लेकिन विस्थापन का दंश, घर परिवार से बेघर होने का दर्द, समाज से बहिष्कृत होने की सजा किन्नर को झेलनी पड़ती है।

'हिजड़ों की ज़िंदगी भी अजीब सी है। जहाँ का सारा दर्द अपने मेंसमेटे हुए हैं। आज विमर्श का घमासान मचा हुआ है। हाशिये की बात हर तरह की जा रही है। परंतु सच तो यह है कि दलित का अपना परिवार है, स्त्री के पास उनका अधिकार है, लेकिन किन्नरों के पास अपना कुछ भी नहीं? वे परिवार, सम्मान, अधिकार, सामाजिक सरोकार आदि सब से वंचित हैं।" लेस्बियनों, किन्नरों की जीवन शैली और संघर्ष पर आधारित उपन्यास है तीसरी ताली जिसे प्रदीप सौरभ ने 2014 में लिखा है। यह उपन्यास ऐसे समाज की व्यथा कथा को बयान करता है जो समाज में उपस्थित रहकर भी अनुपस्थिति का दंश झेल रहा है। तीसरी ताली ऐसे लोगों की ताली है जिन्हें निजी जीवन में कभी ताली नहीं मिली। 'लेखक ने छानबीन के बाद हिजड़ों की जीवन शैली, उनके बीच गद्दीयों, इलाकों और गद्दी के वारिस को लेकर होने वाले ख़ूनखराबे, किसी को जबरदस्ती हिजड़ा बनाने, चुनरी की रस्म, गुरु परंपरा का निर्वाह, मूछों वाले गिरिया रखने, हिजड़ो के अंदर छिपी स्त्रीत्व की भावना, उनकी मानवीय संवेदना और ममत्व, हिजड़े होने के दर्द, उनके आक्रोश और संघर्ष आदि को विस्तार से परत दर परत खोला है। हिजड़ों के जीवन के साथ-साथ इस उपन्यास में एक समानांतर दुनिया है समलैंगिकों की, विकृत प्रकृति वालों की। इतना ही नहीं लेखक ने राजनैतिक पैंतरे बाज़ी को भी उजागर किया है।

सफेदपोशों के शिकार किशोरों के दर्द को ज्योति के इन शब्दों के माध्यम से समझा जा सकता है- 'माना मैं मर्द हूँ, लेकिन यह समाज मुझसे मर्द का काम लेने के लिए राजी नहीं है। मुझे इस समाज में मादा की तरह भोग की चीज़ में तब्दील कर दिया है। मैं मर्द रहूँ, औरत रहूँ या फिर हिजड़ा बन जाऊँ, इससे किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। पेट की आग तो बड़े-बड़ों को ना जाने क्या-क्या बना देती है।"

देश में 99 प्रतिशत हिजड़े अशिक्षित हैं। कारण जाहिर है कि हिजड़ों की शिक्षा के लिए कोई स्कूल नहीं है। अगर किन्नर होने की बात को छुपाकर कोई स्कूल में प्रवेश पा भी लेता है तो शारीरिक भाव भंगिमाएँ स्पष्ट होते ही स्कूल प्रशासन उन्हें बाहर निकाल देता है।

निर्मला भुराड़िया का उपन्यास 'गुलाम मंडी' अंतरराष्ट्रीय देह व्यापार पर आधारित है। जिसका प्रकाशन 2013 में हुआ। निर्मला भुराड़िया ने किन्नर समाज की तुलना श्राद्ध के दिनों के कौओं से की है जैसे श्राद्ध के दिनों में कौओं को खीर पूरी खिलाई जाती है लेकिन सामान्य दिनों में कौओं का घर आना अपशगुन माना जाता है वैसे ही शादी, ब्याह, शिशु- जन्म के अवसर पर किन्नरों को थोड़ा बहुत सम्मान मिल जाता है और सामान्य दिनों में उनके मुँह पर दरवाज़ा बंद कर दिया जाता है।

2018 में साहित्य अकादमी सम्मान से पुरस्कृत 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा' उपन्यास चित्रा मुद्गल द्वारा पत्र शैली में लिखा गया है। मुंबई की रक्त वाहिनी लोकल ट्रेन के वेस्टर्न उपनगर का लगभग आख़िरी स्टेशन है- नालासोपारा। किन्नर जीवन पर केंद्रित इस उपन्यास का पात्र विनोद उर्फ

बिन्नी माँ को एकतरफा चिट्ठियाँ लिखता है। जिसने किन्नर होने के कारण माँ, परिवार, घर से बिछड़ने का दंश झेला है वही विनोद एक अधूरेपन और कशमकश में होने के बावजूद अपनी बिरादरी के लोगों को समाज में इज्जत दिलाने का संकल्प लेता है। उसका परिवार बदनामी के डर से यह घोषित कर देता है कि विनोद की एक यात्रा के दौरान दुर्घटना में मृत्यु हो गई है। उसके अवशेष तक नहीं मिले। राजनीतिक ताकतों के भ्रष्ट रूप को भी उपन्यास में चित्रित किया गया है। विधायक व अन्य राजनीतिक ताकतों की दिलचस्पी इसमें नहीं है कि किनर समुदाय का विकास किया जाए, वे तो उन्हेंमहज वोट बैंक मानकर तुष्टीकरण का खेल रच रहे थे। ये उपन्यास किन्नर जीवन के संघर्ष को चित्रित करता है, उन्हें मनुष्य माने जाने के संघर्ष की गाथा है- पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा।

जैसे अछूत को हरिजन व दलित तथा विकलांग को दिव्यांग सम्मान देने के लिए मिला है। उसी प्रकार हिजड़ों के लिए किन्नर शब्द रखा गया है। साहित्य और सभ्य समाज द्वारा हिजड़ों के लिए किन्नर शब्द ही प्रयुक्त किया जाता है। लेकिन क्या नाम बदलने से उसका निहितार्थ बदल जाएगा। इसकी अभिव्यक्ति नालासोपारा में विनोद के इस कथन में देखी जा सकती है- 'सुनने में किन्नर शब्द भले ही गाली ना लगे मगर अपने निहितार्थ में वह उतना ही क्रूर और मर्मातक है जितना हिजड़ा। किन्नर की सफेद पेशी में लिपटा चला आता है, उसकी ध्वन्यात्मकता में रचा बसा। कोई भूले तो कैसे भूले।" महेंद्र भीष्म का एक अन्य उपन्यास 'मैं पायल' जीवनी परक उपन्यास है। पुत्र की ख्वाहिश जुगनी के पिता को जुगनी को जुगनू बनाने के लिए विवश कर देती है। हिजड़ा होने की सजा जुगनी को इस रूप में मिलती है कि उसके पिता अपनी झूठी मान मर्यादा के लिए जुगनी की हत्या करने तक से परहेज नहीं करते चप्पल पानी में भिगो कर मारना, गले में रस्सी डालकर खींचना उनकी नफरत का सबूत है। लेकिन इसमें जुगनी का क्या दोष है? पिता की नफरत इतनी बढ़ जाती है कि वह घर छोड़ कर भाग जाती है।

इस प्रकार साहित्य के द्वारा हिजड़ा विमर्श अलग स्तर की ऊँचाई छू सकता है। साहित्य ही वह माध्यम है जिससे नई पीढ़ी किन्नरों को सम्मान देने के लिए प्रेरित हो सकती है। कानून, सरकार, न्यायालय इन्हें कितने भी अधिकार दे दे इनकी ज़िंदगी में बदलाव तब तक संभव नहीं जब तक समाज की मुख्यधारा इनके प्रति अपना नज़रिया नहीं बदलेगा। समाज की मानसिक सोच ही इनकी गतिविधियों में रुकावट बनती है। समाज को इस समुदाय के प्रति अपना दृष्टिकोण न्याय पूर्ण करना होगा। इनके प्रति अपमानजनक व्यवहार ख़त्म करना होगा, तभी यह लोग समाज में सामान्य लोगों की भाँति अपने मानव अधिकारों के साथ जीवन यापन कर सकेंगे। मुख्यधारा के समाज को किन्नर समुदाय को उनके हक व मानवीय अधिकार देने में कटौती नहीं करनी चाहिए। सामाजिक भेदभाव ही उनके उग्र व्यवहार का कारण बनता है। साहित्य ही वह औजार है जो किन्नरों की मानसिक पीड़ा को कलम द्वारा पाठक के सामने रख सकता है। यह सभी उपन्यास किन्नरों की ज़िंदगी का यथार्थ दस्तावेज है, जिसको समाज अछूत समझकर जानवर से भी बदतर व्यवहार करता है। इनको समझे बिना इनसे नफरत करता है। उसके जीवन के दर्द, पीड़ा, समाज में स्थान पाने की ललक, जिजीविषा को हमें समझना होगा। हिजड़ों के बारे में जो नकारात्मक सोच है उसमें बदलाव साहित्य द्वारा ही संभव है। साहित्य के द्वारा हिजड़ों से जुड़े मुद्दों को सही ढंग से उठाया जा सकता है। उनके प्रति संवेदनशीलता की भावना जगाई जा सकती है। अधिक से अधिक साहित्य लेखन द्वारा, नाटकों को मंचित करके, डॉक्यूमेंट्री तथा फिल्मों के जरिए किन्नर विमर्श को पूरी जटिलता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। इन उपन्यासों की कथावस्तु किन्नर समुदाय को इंसान समझे जाने का अनुरोध करती है। ये उपन्यास किन्नरों के प्रति नज़रिया बदलने की चेतावनी देते हैं और समाज में उनकी निर्धारित भूमिकाओं की आलोचना करते हैं। किन्नर जितनी ज़्यादा दया माँगता है, समाज उसे उतनी ही हिकारत और नफरत देता है। वह जीवित हैं, और अलग हैं इसके लिए उन्हें सॉरी बोलने की ज़रूरत नहीं है। समाज को अपनी मानसिकता बदलने की ज़रूरत है। आत्मा का जेंडर शरीर के जेंडर से मैच नहीं खाता है तो इसमें किन्नर काक्या दोष? शिक्षा केंद्रों में इनका तिरस्कार ना करके आमजन की तरह इन्हें भी पढ़ाई का अवसर दिया जाए। इनमें संवेदना है, शारीरिक दृष्टि, सोचने समझने की क्षमता है, ज़रूरत है उसे राष्ट्रहित में नियोजित करने की। शिक्षा, दीक्षा, रोज़गार व सम्मान और इनके साथ इंसानों जैसा व्यवहार करने की ज़िम्मेदारी सभ्य समाज की है। हमें किन्नर समुदाय के प्रति सहिष्णु और उदार होना होगा।

000

संदर्भ-

1. मदन नाइक,पारू, मैं क्यों नहीं, राजकमल प्रकाशन, प्र.स. 2012, पृष्ठ स. 165, 2. डॉ. विजेंद्रप्रताप सिंह, रवि कुमार गौड़ (संपादक) भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श, अधूरी देह-महेंद्र भीष्म, अमन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2016, पृष्ठ स.9, 3. Aadhasach.blogspot. In, vwOctober, 2010, 4. डॉ. विजेंद्रप्रतापसिंह, रवि कुमार गौड़ (संपादक) भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श,हम भी इंसान हैं- महेंद्र भीष्म, पृष्ठ स. 15, 5. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह,रविकुमार गौड़ (संपादक),भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीयलिंगी विमर्श, महेंद्र भीष्म का उपन्यास 'किन्नरकथा' एक वैचारिक पड़ताल, रविकुमार गौड़, पृष्ठ स. 107, 6. डॉ. विजेंद्रप्रतापसिंह, रविकुमारगौड़ (संपादक) भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीयलिंगी विमर्श, एक समांतर दुनिया की अपरिहार्य त्रासदी- 'तीसरी ताली', डॉ. गुर्रामकोंडा नीरजा, पृष्ठ स. 35, 7. सौरभ,प्रदीप,तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, पृष्ठस. 57, 8. मुद्गल, चित्रा, पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नालासोपारा, सामयिक प्रकाशन, पृष्ठ स. 12-13

(शोध आलेख)

प्रवासी और भारतीय साहित्य सृजन में गांधीवाद की प्रासंगिकता

शोध लेखक : अविनाश कुमार वर्मा

अविनाश कुमार वर्मा (शोधार्थी)
हिन्दी विभाग, नानक चन्द ऐंग्लों संस्कृत महाविद्यालय, मेरठ
मोबाइल- 7983363275
ईमेल- akvermanet20@gmail.com

शोध सार :-

भारतीय उपन्यासों में शुरू से सामाजिक सुधार को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है। भारतीय उपन्यासकारों के साथ-साथ प्रवासी उपन्यासकारों की रचनाओं में गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भारतीय ग्रामोद्योग, ग्रामीण सभ्यता, तप और त्याग, भारतीय ग्राम और संपूर्ण भारतीयता की मुकम्म्ल तस्वीर प्रवासी साहित्यकारों के उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। गांधीवादी विचार के मूल स्तंभ है, सत्य और अहिंसा। सर्वोदय, सत्याग्रह एवं रामराज्य गांधीजी के तीन आदर्श थे। इन आदर्शों की स्थापना अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से करने का प्रयास प्रवासी साहित्यकारों ने किया है। भारतीयता की अवधारणा को मजबूत करना, एकता, सत्य, अहिंसा, साहस, दृढता, निष्ठा आदि की स्थापना करने में प्रवासी साहित्यकार सफल दृष्टिगोचर होते है. प्रवासी भारतीय साहित्यकारों में उषा प्रियंवदा का नाम गांधी विचारधारा की लेखिका के रूप में आता है। इनके प्रमुख उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'अंतर्वंशी' और 'भया कबीर उदास' आदि में गांधीतत्त्व प्रमुखता से दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय साहित्यकार गांधीवादी विचारधारा की प्रतिष्ठा कर विदेशों में आर्थिक स्वावलंबन का विचार प्रवासी भारतीयों को दे रहें हैं। प्रवासी और भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन रचनाओं में विशेषत: उपन्यासों में गांधीवाद की अभिव्यक्ति हुई है। इस बात को हमें मानना होगा। सभी प्रवासी और भारतीय साहित्यकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी है, प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने सत् चित और आनंद के साथ अभिवंचित जनता के साथ अपने साहित्य को जोडने का प्रयास किया हुआ परिलक्षित होता है। वर्तमान में प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के साथ-साथ पाठक भी गांधीवाद से प्रभावित हुए हैं। गांधीयुग और गांधीवाद की प्रासंगिकता आज भी और भविष्य में भी बनी रहेंगी।

बीज शब्द :- एकता, सत्य, अहिंसा, साहस, दृढता, निष्ठा, गांधीतत्त्व, गांधीवाद, प्रवासी, समकालीन, प्रचार- प्रसार, स्वावलंबन, योजना, परिलक्षित, मानवीय मूल्यों, साहित्यकार, दृष्टिगोचर, व्यापकता,

समाजवादी उपन्यासकारों में ताराशंकर वंद्योपाध्याय, यशपाल, नागार्जुन ऐतिहसिक उपन्यासकारों मे मुहम्मद अली तबीब, आर. बी. गुंजीकर, कन्हैयालाल मानकलाल मुंशी, रामन पिल्लई, वृंदावनलाल वर्मा आदि महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। इन उपन्यासकरों में प्रेमचंद "प्रेमाश्रम उपन्यास में गांधीवाद के रास्ते जा रहे थे... प्रेमचंद ने महात्मा गांधी के स्वाधीनता आंदोलन का अपने साहित्य में व्यापक चित्रण किया है। महात्मा गांधी ने स्वदेशी पर बल दिया तो प्रेमचंद ने चरखा, खादी, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार आदि का यथार्थपूर्ण चित्रण किया। 'रंगभूमि' का नायक अंधा सूरदास तो महात्मा गांधी का प्रतिरूप है जो सत्य, धर्म तथा अहिंसा से अंग्रेज़ तथा अंग्रेज़ भक्त भारतीयों से असहयोग करता हुआ औद्योगीकरण के विरूद्ध ग्रामीण संस्कृति को बचाने के लिए संघर्ष करता है।"1 कहना आवश्यक नहीं कि भारतीय उपन्यास सत्य का पुरस्कार करते नज़र आते है।

'एक बीघा गोईंड', माटी की महक, मैला आँचल, ग्राम सेविका, पानी के प्राचीर, जल टूटता हुआ आदि उपन्यासों में गांधीवाद को प्रमुखता से चित्रित किया है। भारतीय उपन्यासकारों के साथ-साथ प्रवासी भारतीय उपन्यासकारों की रचनाओं में गांधीवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाने वाले और गांधी विचारधारा से प्रभावित प्रवासी साहित्यकारों की लंबी सूची उपलब्ध है। "उनमें उषा प्रियंवदा, अचला शर्मा (ब्रिटेन), कृष्ण बलदेव वैद (अमेरिका), टी.एन. सिंह, तेजेन्द्र शर्मा (ब्रिटेन), अभिमन्यु अनत (मारीशस), कृष्ण बिहारी (अबूधाबी), पूर्णिमा बर्मन (अबूधाबी), कविता वाचक्नवी (ब्रिटेन), सुषम बेदी (अमेरिका), अंजना संधीर (अमेरिका), डॉ. सुरेन्द्र गम्भीर, (अमेरिका), उषा राजे सक्सेना (ब्रिटेन), उषा वर्मा (ब्रिटेन) , ओंकारनाथ श्रीवास्तव (ब्रिटेन), कीर्ति चौधरी (ब्रिटेन), डॉ. कृष्ण कुमार (ब्रिटेन), दिव्या माथुर (ब्रिटेन), पद्मेश गुप्त (ब्रिटेन), पुष्पा भार्गव (ब्रिटेन), मोहन राणा (ब्रिटेन), शैल अग्रवाल (ब्रिटेन), सत्येंद्र श्रीवास्तव (ब्रिटेन) , लक्ष्मीधर मालवीय (ब्रिटेन), स्नेह ठाकुर (कनाडा), जकिया जुबेरी, प्रेमलता वर्मा (अर्जेण्टीना), प्रो. सुब्रह्माणियम (फिजी), अर्चना पेन्यूली (डेनमार्क), अमित जोशी (नार्वे), सुरेशचन्द्र शुक्ल (नार्वे), रामेश्वर अशांत (अमेरिका), डॉ. विजय कुमार मेहता (अमेरिका), डॉ. वेदप्रकाश बटुक (अमेरिका), विनोद तिवारी, (अमेरिका), सचदेव गुप्ता (अमेरिका), गौतम सचदेव (ब्रिटेन), डॉ. कमलकिशोर गोयनका (ब्रिटेन), धनराज शम्भू (मारीशस), रामदेव धुरंधर (मारीशस), डॉ. ब्रिजेन्द्रकुमार भगत 'मधुकर' (मारीशस), मुकेश जी बोध (मारीशस) , मुनाश्वरलाल चिन्तामणि (मारीशस), राज हीरामन (मॉरीशस), सूर्यदेव खिरत (मारीशस), अजामिल माताबदल (मारीशस), अजय मंग्रा (मारीशस), डॉ. उदयनारायण गंगू (मारीशस), नारायणपत देसाई (मारीशस) , प्रहलाद रामशरण (मॉरीशस), हेमराज सुन्दर (मारीशस), पूजाचंद नेमा(मारीशस), मार्टिन हरिदत्त लक्ष्मन (सूरीनाम) , महादेव खुनखुन (सूरीनाम), सुरजन परोही (सूरीनाम), डॉ. पुष्पिता (सूरीनाम) , बासुदेव पाण्डे (ट्रिनिडाड), डॉ. रामभजन सीताराम (दक्षिण अफ्रीका), उषा ठाकुर (नेपाल), डॉ. विवेकानन्द शर्मा (फिजी), डॉ. राजेन्द्र सिंह (कनाडा) आदि आते है।"2 इन प्रवासी साहित्यकारों ने गांधीवाद का प्रचार-प्रसार विदेशों में किया हुआ परिलक्षित होता है।

भारतीय ग्रामोद्योग, ग्रामीण सभ्यता, तप और त्याग, भारतीय ग्राम और संपूर्ण भारतीयता की मुकम्म्ल तस्वीर प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में प्रचुर मात्रा में दृष्टिगोचर होती है। साहित्यकार अभिमन्यु अनत (मारीशस) का उपन्यास 'गांधीजी बोले थे' इसका परिचय देता है। इस उपन्यास का नायक परकाश संघर्ष का प्रतीक बनकर गांधी विचारधारा को आत्मसात करता है। इन्होंने पच्चीस से ज़्यादा उपन्यास लिखे हैं। उनके साहित्य में गिरिमिटिया मजदूर के अस्तित्व और अधिकार एवं त्रासदी और प्रताड़ना का यथार्थ-चित्रण मिलता है। "आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व के मॉरिशसीय समाज में भारतीयों की जो स्थिति थी, मर्मान्तक ग़रीबी के बीच अपनी ही बहुविध जड़ताओं और गौरांग सत्ताधीशों से उनका जो दोहरा संघर्ष था, उसे उसकी समग्रता में हम यहाँ बख़ूबी महसूस करते हैं। मदन, पाराशर, सीता, मीरा, सीमा आदि इस उपन्यास के पात्र हैं, जिनके विचार, संकल्प, श्रम, त्याग और प्रेम संबंध उच्च मानवीय आदर्शों की स्थापना करते हैं और जो किसी भी संक्रमणशील जाति के प्रेरणा स्रोत हो सकते है।"3 कहना आवश्यक नहीं कि अभिमन्यु अनत जैसे अनेक प्रवासी साहित्यकारों ने गांधी विचार को अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से पाठकों के सामने रखा है। गांधी विचार के मूल स्तंभ हैं सत्य और अहिंसा। सर्वोदय सत्याग्रह एवं रामराज्य गांधीजी के तीन आदर्श थे। इन आदर्शों की स्थापना अपनी साहित्य कृतियों के माध्यम से करने का प्रयास प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने किया है। "गांधीवाद है निरंतर आत्मपरीक्षण और प्रयोग गांधीजी की विशिष्टता रही है इसलिए गांधीवाद में कुछ तत्व प्राण रूप और स्थायी हैं तो कुछ देह रूप हैं और परिवर्तनशील एवं विकासशील हैं।"4 इन तत्वों को पाठकों तक पहुँचाने में प्रवासी भारतीय साहित्यकार सफल हुए नज़र आते हैं। भारतीयता की अवधारणा को मजबूत करना, एकता, सत्य, अहिंसा, साहस, दृढ़ता, निष्ठा आदि की स्थापना करने में प्रवासी भारतीय साहित्यकार सफल हुए दृष्टिगोचर होते है। प्रवासी भारतीय साहित्यकारो में उषा प्रियंवदा का नाम गांधी विचारधारा की लेखिका के रूप में आता है। इनके प्रमुख उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका', 'शेष यात्रा', 'पचपन खंभे लाल दीवारें', 'अंतर्वंशी' और 'भया कबीर उदास' आदि में गांधीतत्त्व

प्रमुखता से दृष्टिगोचर होते हैं।

प्रवासी भारतीय साहित्यकार कृष्ण बिहारी ने कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक आदि विधाओं के माध्यम से गांधी विचारों को प्रस्तुति दी है। इन्होंने रेखा उर्फ़ नौलखिया, पथराई आँखों वाला यात्री और पारदर्शियों आदि उपन्यास लिखे। इनकी 'गाँधी के देश में' शीर्षक से एकांकियों का संकलन मानवीय मूल्यों के प्रति की आस्था का उत्तम उदाहरण है। "गांधीजी ने उन सभी लोगों को सहारा दिया जो हिंसा के शिकार थे।"5 कहना आवश्यक नहीं कि प्रवासी भारतीय साहित्यकार गांधीवादी विचारधारा की प्रतिष्ठा कर विदेशों में आर्थिक स्वावलंबन का विचार प्रवासी भारतीयों को दे रहें हैं। प्रवासी भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन रचनाओं में विशेषत: उपन्यासों में गांधीवाद की अभिव्यक्ति हुई है। इस बात को हमें मानना होगा। सभी प्रवासी भारतीय साहित्यकार बहुमुखी प्रतिभा के धनी है, अत: सभी आयामों का विवेचन करना असंभव है। 'सिमट गई धरती' उपन्यास के लेखक नरेश भारतीय ने समकालीन जीवन की विषमताओं पर कटाक्ष किया है। लक्ष्मीधर मालवीय ने 'दायरा', 'किसी और सुबह', 'रेतघड़ी' और 'यह चेहरा क्या तुम्हारा है?' इन उपन्यासों द्वारा मेहनतकश समाज को केंद्र में रखकर मार्मिकता से गांधीविचारों का आदान-प्रदान करने का प्रयास किया है। हम जानते हैं, महात्मा गांधीजी ने जाति, वर्ग, भेदभाव का विरोध किया। विश्वशांति का मंत्र दिया। इस मंत्र को प्रवासी भारतीय साहित्यकारों की रचनाओं में पाया जाने के कारण ही समकालीन प्रवासी भारतीय साहित्य गांधीवाद से ओतप्रोत दृष्टिगोचर होता है। "जातियों में बटे समाज का एक धीमी प्रक्रिया में क्रमिक विकास हुआ था "6 इस बात की ओर प्रवासी भारतीय साहित्यकार सचेत है। फिर भी वे गांधीजी की तरह जात पात नहीं मानते और अहिंसा और शांति में विश्वास रखते हैं। सुदर्शन प्रियदर्शिनी के उपन्यास 'सूरज नहीं उगेगा', 'रेत की दीवार' एवं 'काँच के टुकड़े' गांधी तत्त्वों को पाठकों के सामने रखते हैं। सुदर्शन गांधी विचारधारा की उपासक हैं उनके जीवन और साहित्य, दोनों पर गांधीवाद का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। 'सूरज नहीं उगेगा' उपन्यास इस विचारधारा को प्रस्तुति देता है। "उपन्यासकारों ने समाज सुधार की भावना से ही अछूत समस्या को उठाया है और उसका समाधान किया है।" 7 प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने प्रवासी जीवन की पीड़ा, अकेलापन की समस्या पर समाधान खोजने का प्रयास किया है। प्रवासी भारतीय साहित्यकारों में सुषम बेदी नाम अग्रणी है। इनके 'गाथा अमरबेल की', 'कतरा दर कतरा', 'इतर', 'मैंने नाता तोड़ा' 'हवन', 'लौटना', 'नव भूम की रसकथा', एवं 'मोर्चे' आदि उपन्यासों में गांधीवादी आदर्शों को प्रस्तुति दी है। शारीरिक श्रम को सर्वश्रेष्ठ माना है। अमेरिकी पृष्ठभूमि पर लिखा गया हवन उपन्यास वैश्विक साहित्य और गांधीवाद का उत्तम उदाहरण मानना होगा। "गांधीवाद के मूल तत्वों के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा और सेवाभाव प्रमुख हैं। इनमें से सत्य और अहिंसा तो गांधीवाद के प्राण हैं। गांधीजी का समस्त जीवन दर्शन इन्हीं दोनों तत्वों से अनुप्राणित है। सत्य और ईश्वर को गांधीजी एक दूसरे से भिन्न नहीं मानते हैं। उनके अनुसार सत्य, ईश्वर का ही दूसरा रूप है। इसी कारण ईश्वर को सच्चिदानन्द अर्थात् सत् चित व आनन्द कहा जाता है।"8 कहना आवश्यक नहीं कि प्रवासी भारतीय साहित्यकारों ने सत् चित और आनंद के साथ अभिवंचित जनता के साथ अपने साहित्य को जोडने का प्रयास किया हुआ परिलक्षित होता है। "महात्मा गांधी अपनी प्रकृति में आदर्श वादी पर अपने चिन्तन में व्यावहारिक थे। इस लिए उन्हें एक व्यावहारिक चिंतक और विचारक माना जा सकता है। उन के आदर्श थे स्वराज्य, समता मूलक समाज, सादा जीवन, घरेलू उद्योगों का विस्तार, जिसे स्वदेशी आन्दोलन के दौरान बल मिला। सत्य निष्ठा, अहिंसा और स्वराज्य उन के चिन्तन के मूलाधार थे, जिन के आधार पर गांधीवाद की मूर्त्ति गढ़ी गई।"9 हम जानते हैं, गांधीजी द्वारा निर्भयता से दिए एक भाषण से प्रभावित होकर विनोबा भावे ने गांधीजी से पत्राचार शुरू किया था।

अत: कहना आवश्यक नहीं कि वर्तमान में प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के साथ ।साथ पाठक भी गांधीवाद से प्रभावित हुए हैं। गांधीयुग और गांधीवाद की प्रासंगिकता आज भी और भविष्य में भी बनी रहेंगी, इस में दो राय नहीं। "काल की गति पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि गति ही उसका जीवन है। न उसका आदि है न अंत, मानव समाज अपनी सुविधा के लिये काल गति पर कुछ चिन्ह बना लेता है और उसी के आधार पर काल गनना करने लगता है। ये संवत्, ये सन उसी के उदाहरण है जिसे वर्ष, मास, दिन में विभाजित कर अपना काम चलाता है। पिछले दिनों एक कालावधि को 'गांधीयुग ' कहा गया था।"8 कहना उचित होगा कि इस युग में गांधीजी का प्रभाव सबसे अधिक था। प्रवासी भारतीय साहित्यकारों के रचना संसार का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि गांधीयुग का प्रभाव आज भी विश्व पर बना रहा है, इस बात को हमें मानना होगा। गांधीवाद संपूर्ण वैश्विक साहित्य के केंद्र में रहा है। आज भी विश्व साहित्य और संपूर्ण मानव समाज को गांधीवाद की आवश्यकता है, इस बात को सारा विश्व अपना रहा है।

000

सन्दर्भ- 1.डॉ. एम. सलीम बेग आधुनिक हिन्दी साहित्य में गाँधीवाद, पृष्ठ 30, 2. अभिमन्यु अनत गांधीजी बोले थे, राजकमल प्रकाशन 2008 , 3.रामनाथ सुमन लेखक की बात गांधीवाद की रूपरेखा, साधना सदन, दिल्ली पृष्ठ 06, 4.नारायण भाई देसाई – सब के गांधी, राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा समिति, जयपुर 1 जनवरी, 2020 पृष्ठ 213, 5.राम पुनियानी – सामाजिक न्याय एक सचित्र परिचय, वाणी प्रकाशन 1 जनवरी, 2010 पृष्ठ 57, 6.डॉ. तेज सिंह –राष्ट्रीय आंदोलन और हिन्दी उपन्यास, पृष्ठ 145., 7.विश्वप्रकाश गुप्त, मोहिनी गुप्त महात्मा गाँधी : व्यक्ति और विचार, राधा प्रकाशन 1 जनवरी, 1996 पृष्ठ 45, 8.डॉ. आनंद स्वरूप पाठक – नागरी संगम (त्रैमासिक पत्रिका) जुलाई –सितंबर, 2011

(शोध आलेख)

आंजणा चौधरी जाति का समाज जीवन

शोध लेखक : पटेल आकाश कुमार संजय भाई
मार्गदर्शक : डॉ. सी.जी ब्रह्मभट्ट

पटेल आकाश कुमार संजय भाई
हेमचंद्राचार्य
उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय
पाटन, गुजरात 384265

आंजणा एक भारतीय प्राचीन खेतिहर जाति है और एक जाट समाज का गोत्र भी है। अभी के समय में अगर हम देखें तो पता चलता है कि आंजना, कलबी, पटेल, आंजणा जाट/आंजणा चौधरी, चौधरी तथा पाटदार सहित कई उपजातियों का यह एक समूह है। आंजणा जाटों के नाम के बाद आपको चौधरी, पटेल, कणबी, देसाई, आंजणा जाट, आंजणा चौधरी आदि लिखा मिलता है जबकि इस गोत्र के कुलनाम के रूप में पटेल, चौधरी, देसाई, जाट, मौर्य, हुण, गुर्जर, काग, जुवा, सोलंकी, भाटिया, लोह, हाडीया आदि हैं। भारत में राजस्थान, गुजरात और मध्य प्रदेश में यह एक हिंदू जाति है। उन्होंने यह भी विशेष रूप से गुजरात और राजस्थान, और राजस्थान में जागीरदार, जमींदार या चौधरी ओर पटेल के रूप में जाना जाता है।

आस्था - 'भट' और 'चरण' इतिहास की पुस्तकों के अनुसार, अंजना चौधरी की उत्पत्ति सहस्त्रार्जुन के आठ बेटों से है। परशुराम क्षत्रियों को मारने के लिए आए हैं, वह एक शक्तिशाली क्षत्रिय राजा थे जो सहस्त्रार्जुन के लिए आये था। इस लड़ाई में, सहस्त्रार्जुन और उसके 92 पुत्र मारे गए थे। शेष आठ बेटे माउंट आबू पर देवी अर्बुदा की शरण में आ गये। देवी अर्बुदा ने उन्हें संरक्षित किया और परशुराम अपने शस्त्र इस शर्त पर दने के लिए तैयार हुए कि उन्हें दर्द नहीं होगा। देवी अर्बुदा ने उनको आश्वासन दिया। वे देवी के अनुयायी थे, जाति के नाम की उत्पत्ति

देवी अंजनी माता, भगवान् हनुमान की माता से आती है। माउंट आबू में देवी अर्बुदा अंजना चौधरी की कुलदेवी हैं।

मूल - जाति के सदस्य देवी के अनुयायी थे। वे दक्षिणी राजस्थान में फैल गये और उसके बाद गुजरात गए। यहाँ से अपनी परंपराओं के अनुसार समुदाय, मध्य प्रदेश के मंदसौर तक पहुँचे। अंजना अभी भी हिन्दी की मालवी बोली बोलते हैं। मालवी और गुजराती। राजस्थान में, वे दो व्यापक क्षेत्रीय डिवीजनों में बँट जाते हैं। मालवी अंजना आगे इस तरह फाक, शिह, खारों, हुन, गर्डिया, ईआईटी, जुडार, कुवा, कोंडली, दिल्ली, वाग्दा, काग, भूरिया, मेवाड़, लोगार, ओध, मुंज, कावा और संयुक्त रूप एक्सोगेमस कुलों की संख्या में विभाजित हैं।

आंजणा चौधरी जाति की परंपरा - हिंदुओं के रूप में, चौधरी सीमान्ता (गर्भावस्था), उपनयन (धागा समारोह), 'विवाह' (शादी) और मौत से संबंधित महत्त्वपूर्ण संस्कार करते हैं। सीमान्तोनयन के वैदिक 'संस्कार' से मेल खाती है, जो जन्म-सीमान्ता, लोकप्रिय खोलोभरवो के रूप में जाना जाता है, और महिला की पहली गर्भावस्था के जश्न मनाने के लिए पति के घर में किया जाता है। घर के सामने परिसर के कोने में यह नामकरण संस्कार के बारहवें दिन पर होता है। चाची (फोई) ने आज नामकरण संस्कार करती है और नाम के लिएएक ब्राह्मण से सलाह ली है, जिसके लिए राशि चक्र के संकेत के अनुसार नाम दिया जाता है।

चौधरी शादी समारोह परंपरागत रूप से मध्य एशियाई संस्कारों के अनुसार आयोजित करते रहे हैं। ये संस्कार परंपरागत रूप से विकसित किये हैं और कई मायनों में अलग हैं। वे शादी को बहुत महत्त्व देते हैं और समारोह बहुत रंगीन और कई दिनों तक आयोजित होते हैं। निम्नलिखित चरणों सगाई, गणेश पूजन, वरघोड़ा, शादी, रिसेप्शन, आदि एक शादी में होते हैं।

शादी के बाद एक व्यक्ति गृहस्थाश्रम (गृहस्थ के चरण) में प्रवेश करता है, जिसे हिन्दू शास्त्र में 'संस्कार' के रूप में माना जाता है। शादी का प्रस्ताव आम तौर पर सामाजिक आर्थिक स्थिति और शिक्षा को मुख्यत: ध्यान में रख कर दिया जाता है, जो लड़की की ओर से आता है। चौधरी समुदाय में, लड़की के पिता सगाई समारोह के दौरान एक रुपए का सिक्का प्रस्तुत करता है।

जाति गुरू-संत श्री राजाराम जी महाराज

शिकारपुरा आश्रम दूर लूनी से लगभग 6 किमी की दूरी पर स्थित है। लूनी राजस्थान के जोधपुर जिले में एक तहसील है। इस आश्रम को उन्नीसवीं सदी में संत राजा राम जी महाराज द्वारा स्थापित किया गया था। शिकारपुरा आश्रम के महंत हैं संत देवा राम जी महाराज, संत किशना राम जी महाराज व गुरू सूरजमल जी महाराज, संत दयाराम। आश्रम अपनी स्थापना से समाज की सेवा करने के लिए कार्य कर रहा है।

त्योहार- चौधरी लोगों को बड़ी धूमधाम के साथ निम्न त्यौहार मनाते हैं– रक्षाबंधन (संरक्षण के बंधन) भाइयों और बहनों के बीच के रिश्ते को मनाता है। यह श्रावण नक्षत्र के महीने पर पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है।

दिवाली सबसे प्रसिद्ध त्योहारों में से एक है और बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता है। पटाखे और मिठाई दीवाली समारोह के साथ। राज्य में हर घर में बिजली के बल्ब या मोमबत्ती से प्रकाशित किया जाता है। त्योहार चार दिनों के लिए जा सकते हैं।

होली के रंग या प्यार का त्योहार है। यह वसंत के आगमन को निरूपित करने के लिए मनाया जाता है। इसके अलावा, यह दोनों उसे मारने की कोशिश की, जो हिरण्यकशिपु और होलिका की बुराई हरकत से अधिक प्रहलाद के विश्वास की जीत चिह्नित करने के लिए मनाया जाता है।

नवरात्रि देवी 'अंबाजी' के सम्मान में नौ रातों का त्योहार है। लोग, चाहे जिस लिंग, जाति और धर्म के हों, गरबा और डांडिया रास द्वारा अपने पारंपरिक नृत्य प्रदर्शन करने के लिए एकत्र होते हैं।

सारांश- गुजरात में आंजणा जाट चौधरी के गाँव मुख्य रूप से उत्तर गुजरात में मिलते हैं जबकि मुख्य बस्ती के रूप में बनासकांठा और साबरकांठा के आस पास के ग्रामीण क्षेत्रों में ये लोग मुख्य रूप से निवास करते हैं। ये लोग अपने नाम के आगे अटक, पटेल और देसाई लगाते है जिसके कारण इन्हें आंजणा अटक, आंजणा पटेल और आंजणा देसाई के नाम से जाना जाता है। आंजणा जाटों का गोत्र है। जानकारी के अनुसार यह गोत्र 265 ईस्वी के आस पास अस्तित्व में आया था।

राजस्थान में भी आंजणा चौधरी की बड़ी आबादी है। आंजणा गोत्र के उपगोत्र के 260 गोत्र राजस्थान में रहते हैं। जबकि कुछ गुजरात, हरियाणा और राजस्थान के गोत्र आपस में मिलते जुलते हैं जिसके कारण ये लोग एक ही गोत्र में शादी नहीं करते हैं। ये लोग एक ही गोत्र के लोगों को भाई बहन मानते हैं। राजस्थान में ऑजना चौधरी की बस्ती मुख्य रूप से माउंट आबु, आबु रोड, लासोर, सिरोही, जोधपुर, सांचोर, भीडवाल, बाडमेर, चितौड, प्रतापगढ, ओरया में मिलती है।

आंजणा जाट मुख्य रूप से खेती बाड़ी का कार्य करते थे लेकिन राजस्थान में रेतीली ज़मीन और सूखे के कारण इन लोगों को कृषि की जगह नौकरी और व्यावसाय को अपना पेशा बनाया। जिसके कारण आंजणा गोत्र के जाटों में राजस्थान के लोग बहुत समृद्ध हैं। राजस्थान में इस गोत्र के बड़े बड़े व्यापारी, अफसर, शिक्षा विद पाए जाते हैं जो इस गोत्र के जाटों का नाम रोशन करते हैं। अहमदाबाद, बड़ौदा, सूरत, मद्रास, पुणे, नासिक, बाड़मेर, उड़िसा, गोवा, मुंबई में कई बड़े व्यापारिक कार्यों के मालिक आंजणा जाट गोत्रों के लोग बने बैठे हुए हैं।

000

संदर्भ- 1. अकरावल सीके, 'मॉडर्न इश्यूज एँड ट्रेंड्स इन इंडियन एजुकेशन', भारत प्रकाशन, अहमदाबाद, दूसरा संस्करण, 1971, 2. काले जयंत दत्तात्रेय, सेठ कनुभाई, 'गुजरात', गुजरात विश्वकोश ट्रस्ट, अहमदाबाद, प्रथम संस्करण, 1995, 3. गांधी भोगीलाल, "गुजरात दर्शन" (गुजरात का व्यापक आधिकारिक परिचय), चेतन प्रकाशगृह, वडोदरा, प्रथम संस्करण,1960

(शोध आलेख)

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में कृषि संस्कृति

(इक्कीसवीं सदी के संदर्भ में)

शोध लेखक : गौरव सिंह

गौरव सिंह
पीएचडी शोधार्थी
हिन्दी विभाग,
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारूर, 610005

भूमिका

जब हम 'भारतीयता' की अवधारणा को समझने की कोशिश करते हैं तब सबसे पहले एक बात सामने आती है वह यह कि भारत एक कृषि प्रधान देश है, अर्थात कृषि और कृषक वाले देश का एक चित्र उभर कर हमारे समक्ष आता है। वास्तव में भारत की पहचान का आधार भी कृषि और कृषक ही हैं। किसी भी देश की पहचान उसक देश की प्रमुख विशेषता के आधार पर की जाती है। कहना अनुचित न होगा कि भारतीय संस्कृति की पहचान 'कृषि संस्कृति' है। भारत की लगभग सत्तर प्रतिशत आबादी गाँवों में बसती है। और गाँव तो कृषि प्रधान व ग्रामीण जीवन का निर्वहन कृषि पर ही आधारित होता है। जैसा कि कहा जाता है भारत की आत्मा गाँवों में बसती है इस आधार पर कह सकते हैं कि कृषि और किसान भारत की आत्मा है। कृषि संस्कृति को इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है- 'कृषि केवल एक व्यवसाय नहीं अपितु मानव जाति का पालन - पोषण करने वाली संस्कृति है'। भारत के मूल में कृषि संस्कृति है। कृषि संस्कृति में समाज का वह पक्ष आता है जो कृषि पर आधारित हो।

कृषि संस्कृति में गाय, बैल, हल, और खेत का महत्त्व विशेष होता है। कृषक अपने पशुओं, खेती करने के साधनों और कृषक जीवन में आने वाले परंपरागत त्योहारों का रक्षण करता है। यही कृषि के मूलभूत साधन भी हैं। हर भारतीय किसान की आकांक्षा होती है कि उसके द्वार पर एक गाय बंधी हो। भारतीय सनातनी परंपरा में गाय को माँ का स्थान दिया गया है। सनातनी धार्मिक कार्यों तथा त्योहारों में घर के आँगन को गाय के गोबर से लीपना शुभ माना जाता है। भारत के लगभग हर घर से पहली रोटी गाय के लिए निकाल ली जाती है। यही कारण है कि भारत की संस्कृति को गौ संस्कृति भी कहा जाता है। भारतीय कृषि संस्कृति में ईश्वर की उपासना, धन की पूजा, दान, आस्तिकता, संयम, बुज़ुर्गों के प्रति सहानुभूति, अतिथि सत्कार, विभिन्न त्योहार, सहयोग की भावना, का विशेष है। यही कृषि संस्कृति के सूचक हैं और कृषि संस्कृति के मूल तत्व भी। भारतीय कृषक जीवन इन सारे तत्वों से अछूता नहीं है। भारत के किसान का सम्पूर्ण जीवन कृषि संस्कृति पर आधारित है। आज लोप होते कृषि संस्कृति तत्वों को ध्यान में रखकर, आधुनिक हिन्दी साहित्य में ख़ासकर उपन्यास विधा में कृषि संस्कृति का कैसा स्वरूप दिखाई देता है इस बिंदु को देखने समझने का प्रयास करेंगे।

कुंजी शब्द : कृषि, किसान, भारतीय कृषि परंपरा, कृषि संस्कृति, त्योहार, परंपराएँ, गायब होते हल – बैल, लोकगीत, संयुक्त परिवार, सहयोग भावना

शोध आलेख : जिस प्रकार से हिन्दी उपन्यासों की परंपरा का सूत्रपात हुआ है उसमें शुरुआत के चरण में कृषि और किसान नगण्य ही रहे। ऐयारी, तिलिस्म, जासूसी, प्रेम प्रधान आदि उपन्यासों की होड़ में मनुष्य जीवन की समस्याओं को गौण स्थान प्राप्त हुआ। वहीं प्रेमचंद युग में उपन्यास आम आदमी से जुड़ा और साथ ही उसकी समस्याओं से समाज को रूबरू करवाया। यह उपन्यास की पहली सफलता थी जब वह मानव केंद्रित हुआ। इस काल में कृषि, किसान, आम आदमी, स्त्री, दलित आदि अछूते विषयों पर साहित्य की रचना हुई। प्रेमचंद के गोदान, गबन, प्रेमाश्रम आदि उपन्यास तथा निराला के 'अलका' उपन्यास, रामचंद्र तिवारी के 'कमला' उपन्यास को कृषि, किसान, महिला, दलित आदि को हासिए पहलुओं के संदर्भ में देखा जा सकता है। प्रेमचंदोत्तर काल में भी किसान अथवा कृषि केंद्रित साहित्य की रचना होती रही। आज़ादी के बाद किसानों की बदहाली और ग्रामीण परिवेश को आधार बनाकर अनेकों उपन्यासों की रचना हुई। नागार्जुन का बलचनमा, रतिनाथ की चाची, भैरवप्रसाद गुप्त का सत्ती मैया का चौरा, रेणु का मैला आँचल, शिवप्रसाद सिंह का अलग अलग वैतरणी, रामदरस मिश्र के पानी के प्राचीर और टूटता हुआ जल, जगदीश चंद्र के कभी न छोड़े खेत, धरती धन न अपना, और किसानी परंपरा के महत्त्वपूर्ण लेखक विवेकी राय के लोक ऋण, सोना माटी, समर शेष है आदि उपन्यासों को कृषि और किसान की परंपरा में देखा जा सकता है।

भारत भूमि पर वैदिक काल से ही कृषि का महत्त्व रहा है। ऋषियों ने कृषि की सफलता की

कामना की और कृषि के प्रति जागरूक करने के लिए उन्होंने सूक्तों की रचना भी की, अथर्ववेद में कृषि योग्य भूमि के महत्त्व को इस प्रकार वर्णित किया गया है –

" यस्याश्चतस: प्रदिश: पृथिव्या यस्यमानंन्न कृष्टय: सर्वभुवु /

या विभर्ति बहुधा प्राणदेत सा नो भूर्मिगोष्व्यन्नेव दधातु।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्य वर्त्त्यन /

गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भंगवर्च पृथ्वी नो दधातु।"1

कृषि आज मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु न होकर पूर्णतया व्यावसायिक हो गई है। कहने का तात्पर्य है कि मनुष्य ने अपनी सहूलियत के लिए तरह – तरह के कृषि यंत्रों का विकास कर लिया जिसके कारण वह सुगमता से कृषि कार्य कर पा रहा है लेकिन मनुष्य ने 'मूल्य' के फेर में पड़कर अपनी 'मूल' संस्कृति को पीछे छोड़ दिया है। डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू' द्वारा संपादित 'काश्यपीयकृषिपद्धति' पुस्तक की प्रस्तावना में कृषि की गरिमा और महत्त्व को इस प्रकार दिखाया गया है –"मानव के जीवन में कृषि सबसे बड़ी क्रांति कही जा सकती है। इसने पृथ्वी के महत्त्व को जन्म दिया और भूमि की उपजाऊ – अनउपजाऊ, जलीय – जंगली, पहाड़ी – पथरीली और रेतीली – बंजर गुणों की पहचान के साथ – साथ बसाव और व्यवसाय जैसी प्रवृत्तियों का विकास हुआ।"2 कृषि आत्मनिर्भर मानवीय समाज की द्योतक है। इसने मनुष्य जाति को सभ्यता का प्रथम और महत्त्वपूर्ण पाठ पढ़ाया। खेद की बात है कि आज मनुष्य ने उसी कृषि को उपेक्षित छोड़ दिया है।

कृषि संस्कृति में संयुक्त परिवारों का विशेष स्थान है तथा संयुक्त परिवार कृषि संस्कृति की पहचान भी हैं। आज का युग आत्मकेंद्रि व अर्थकेंद्री है। इन दोनों कारणों से संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है। इसके बावजूद भी कृषि संस्कृति में इनका महत्त्व और सौंदर्य बना हुआ है। भारत में कृषि केवल एक व्यावसायिक आयाम ही नहीं वरन वह एक जीवन शैली और उससे ज़्यादा एक संस्कृति है। इसी कारण भारत में बड़ी संख्या में लोग अन्न को पूजते व ब्रह्म का रूप मानते हैं। भारतीय कृषि संस्कृति में कृषि को उत्तम, व्यापार को मध्यम, और नौकरी को अधम बताया गया है। अर्थात भारतीय संस्कृति में कृषि को प्रमुखता दी गई है। इसका कारण है कि कृषि से अनाज पैदा होता है और पेट की भूख शांत करता है और जो भूख शांत करे वह श्रेष्ठ और पूज्यनीय होता है।

भारतीय संस्कृति की पहचान कृषि संस्कृति से है और संयुक्त परिवार कृषि संस्कृति के मुख्य अंग हैं। आज जब संयुक्त परिवार गायब हो रहे हैं और लोग एकाकी जीवन जी रहे हैं ऐसे मोहभंग के समय में मिथिलेश्वर कृत 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में संयुक्त परिवार एक दृश्य दिखाई देता है। लेखक उपन्यास के पात्र रविनाथ के बारे में लिखता है –"वे चार भाई थे, उनके बाद दूसरे चंद्रनाथ, तीसरे देवनाथ और चौथे छविनाथ। पिता की मृत्यु के बाद जिस मुस्तैदी से रविनाथ ने कृषि कार्य और अपने परिवार को संभाला उसकी चर्चा पूरे गाँव में थी। जहाँ एक ओर लोग कहते - भाई हो तो रविनाथ की तरह।"3 संयुक्त परिवार कृषि संस्कृति के आधार स्तंभों में से एक हैं। एकता, अनुशासन, प्रेम, सौहार्द, विनम्रता, आदि तत्वों का समावेश ज़्यादातर संयुक्त परिवार में दिखाई देता है।

ग्रामीण परिवेश में हमेशा से एकता और संयुक्तता का भाव रहा है। यह भाव कृषि संस्कृति का ही तत्व है। बिना एकता और सहयोग की भवन के कृषि कार्य को साधना दुर्लभ है। जयनंदन कृत 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास में कृषक समाज में निहित एकता का दृश्य दिखाई देता है। खेतों में धनरोपा हो रहा है। सभी लोग एक साथ बैठकर खेत में भोजन करते दिखाई देते हैं –"सबने ट्यूबवेल पर जाकर अच्छी तरह हाथ-मुँह धोए। सबको पत्तल देकर खाना परोसा जाने लगा। विभिन्न बर्तनों में सजी चटपटी और लजीज खाद्य सामग्रियों से भूख बढ़ा देने वाली खुशबू निकलकर पूरे विश्राम स्थल पर पसर गई।"4 यह कृषि संस्कृति ही है जो आपसी सौहार्द और एकता को परिश्रय देती है। अन्यथा आज तो ऐसा देखने में आता है कि कोई किसी के साथ रहना नहीं चाहता है। खेद की बात है आज आधुनिकता के युग में यह दृश्य छिटपुट ही दिखाई देते हैं। कृषि अब परंपरागत नहीं रही है तब कैसे उससे जुड़ी परम्पराएँ बची रह सकेंगी?

भारतीय ग्रामीण परिवारों में रस्म – रिवाजों का अत्यधिक प्रचलन रहता है। यहाँ आशीर्वाद स्वरूप नई आई बहू को कुछ न कुछ उपहार दिया ही जाता है। ख़ासकर यह रस्म ग्रामीण किसान जीवन में देखने आती है। अपनी बहू हो या किसी अन्य की लेकिन यदि वह प्रथम बार अपने किसी संबंधी के यहाँ जाती है तो उसको खाली हाथ नहीं लौटाया जाता है। इसी संदर्भ में तेजपाल चौधरी कृत 'भूमिपुत्र'उपन्यास में दिखाया गया है कि रवि जब अपनी पत्नी शुभ्रा के साथ अपने दोस्त विजयेन्द्र के यहाँ जाता है। वहाँ से वापस लौटने समय विजयेन्द्र की माँ शुभ्रा को उपहार स्वरूप एक चाँदी का सिक्का देती हैं –"चलने के समय उनहोंने शुभ्रा को गले लगाकर प्यार किया और एक चाँदी का सिक्का उसके हाथ में रख दिया।"5 यह भारत की परंपरा है जो आज भी ग्रामीण समाज में सहर्ष निभाई जाती है। यह ऐसी परम्पराएँ होती हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को स्वत: हस्तान्तरित होती रहती हैं। यह भारत में अब तक ग्रामीण क्षेत्र में बची हुई परंपरा है जिसमें घर आए मेहमान को खाली हाथ नहीं लौटाया जाता है बल्कि शगुन स्वरूप उसको कुछ न कुछ दिया जाता है।

वहीं कृषक परिवारों में वस्तु विनिमय की परंपरा का निर्वाह हमेशा से होता आया है। सामान्य रूप से हम लेन – देन कहते हैं। इस परंपरा में एक दूसरे के सहयोग से ग्रामीण लोग अपने कार्य को कर लेते हैं। इस परंपरा से आपसी सौहार्द और सहयोग की भावना बनी रहती है। संजीव कृत 'फाँस' उपन्यास में इस परंपरा को दिखाया गया है। सिंधु ताई का एक बैल मर जाने से वह आसानी से एक बैल जाधव से लेकर अपने खेत को जुतवा लेती हैं। इस लेन – देन की प्रक्रिया को लेखक सिंधु

ताई के द्वारा इस प्रकार से व्यक्त करवाता है –"पहला बैल सर्प दंश से मरा तो कंधे से कंधा लगाकर हमने शेती (खेती) की, वो बगल से जाधव अभी-अभी गए न, एक बैल उनका, एक बैल हमारा।"6 आज गाँवों से इस परंपरा का लोप होता जा रहा है। कोई किसी के काम में सहयोग नहीं करता है। इसके पीछे मुख्य कारण है मशीनों की उत्पत्ति। मशीनों के आ जाने से मानवीय मूल्यों और सहयोग की भावना का पतन हुआ है इसमें कोई दो राय नहीं हैं।

ग्रामीण क्षेत्र में किसान अक्सर अपने – अपने खेतों में काम करते वक्त कोई लोकगीत गुनगुनाते अथवा किसी पेड़ की छांव में बैठ कर सामूहिक रूप से गाते हुए दिखाई दे जाते हैं। लोकगीत की यह परंपरा कृषि संस्कृति की एक सबसे अनूठी परंपरा है। लोकगीत किसानों को शीतलता और कार्य करने की आत्मिक क्षमता प्रदान करते हैं। फसल गहाई, कटाई, निराई, सिंचाई आदि के समय किसान लोग लोकगीतों को गाते अथवा गुनगुनाते रहते हैं। डॉ. शांति जैन लोकगीतों के संदर्भ में कहती हैं –"शाश्वत सत्य है कि लोकगीतों में हमारे संस्कारों की आत्मा है। श्रुतिपरंपरा की इस विधा में कृत्रिमता का कहीं स्थान नहीं। हर अवसर, हर ऋतु, हर रंग में गाये जाने वाले ये गीत सहज ही लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। भले ही उनकी भाषा समझ से परे हो किंतु स्वर और लय को भाषा के आधार की अनिवार्यता नहीं होती है।"7 लोकगीतों के संदर्भ में डॉ शांति जैन का यह कथन यथार्थ जान पड़ता है। लोकगीत अनायास ही व्यक्ति को अपनी ओर खींच लेते हैं। आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में भी मिथिलेश्वर का 'तेरा संगी कोई नहीं' उपनायास में लोकगीत का स्वर सुनाई देता है – "खेतवा घूमे रे किसनवा / झूमे खेतवा में धनवा / बहे पुरवावयरिया / बोले बाग में कोयलिया / गमके आम के मोजरिया / खेतवा झूमे रे किसनवा / झूमे खेतवा में धनवा......"8

सुनील चतुर्वेदी कृत 'कालीचाट' उपन्यास में भी लोकगीत का स्वर सुनाई देता है। गाँव में विवाहोत्सव का माहौल होता है। अचानक गाँव वाले लोकगीत गाना शुरू कर देते हैं। जैसा कि जानते हैं लोकगीत के लिए कोई स्थान अथवा समय विशेष के प्रबंध की व्यवस्था की ज़रूरत नहीं होती है। यह कहीं भी, कभी भी गाये जा सकते हैं ठीक वैसे ही यहाँ पर दिखाई देता है, अचानक ग्रामीण लोग मिल-जुल कर इस गीत को गाते दिखाई देते हैं। "बनडी हे नादान, के बाजो अँग्रेजी चय्ये / पंखी खस की चय्ये, झालर मखमल की चय्ये / बनडी हे नादान, गोटा बम्बई को चय्ये / डांडी सोना की चय्ये, के बाजो अँग्रेजी चय्ये / बनडी हे नादान"9

कृषि संस्कृति के तत्वों में भूमि, मिट्टी, हल – बैल, हसिया – खुरपी, फावड़ा – कुदाल, जल, खाद – बीज, बैलगाड़ी आदि का प्रमुख रूप से उपयोग किया जाता है। सारी पारंपरिक कृषि व्यवस्था इन्हीं तत्वों पर निर्भर है। गाँवों में किसान जन खेती – किसानी को ही अपना सबसे बड़ा हितैषी मानते हैं। कृषि प्रक्रिया में जुताई, बुवाई, निराई, सिंचाई, निराई – गुड़ाई, कटाई – गहाई, के बाद अंतत: अनाज भंडारण किया जाता है। यह कृषि की प्रक्रिया है जिसको एक किसान शुरू से अंत तक निभाता है तभी वह अनाज को घर में लाने में सफल हो पता है। कृषि के इन तत्वों के आधार पर या कह सकते हैं कि इन्हीं तत्वों के माध्यम से कृषि की प्रक्रिया को शुरू तक अंत तक अंजाम दिया जाता है। इस प्रक्रिया के चलते कई बार उसको प्राकृतिक आपदाओं का कोप भी झेलना पड़ता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि आज हर क्षेत्र में मशीनीकरण हो जाने के कारण हर क्षेत्र की कार्य प्रणालियों में बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका है। ठीक इसी प्रकार किसान जीवन के कृषि क्षेत्र में अनन्य साधनों के उपलब्ध हो जाने के कारण बहुत सारी कृषि प्रक्रियाएँ (निराई, गुड़ाई, गहाई, आदि) जो मनुष्य अपने आप करता था वह समाप्त हो चुकी हैं। आज यांत्रिकता के दौर में भी कृषि और किसानी से किसान का मोहभंग होता जा रहा है। विवेकीराय किसान की इस मोहभंग की अवस्था को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं –"किसान था भी कभी निपट शुद्ध हृदय का निर्मल चरित्र वाला संसार भर की अखिल सिधाई और सरलता का आदर्श। आज यांत्रिक सभ्यता ने किसान के व्यक्तित्व को मोम नहीं रहने दिया। उसे लौह फलक बना दिया।" 10 कृषि संस्कृति के धीरे – धीरे लोप होते जाने में मशीनों का बड़ा हाथ है। यही कारण है आज का हिन्दी उपन्यास साहित्य प्रेमचंद के कथा साहित्य से बहुत भिन्न दिखाई देता है। तत्कालीन समय में प्रेमचंद ने कृषक समाज का यथार्थ चित्र दिखाया था क्योंकि तब आज के जैसे अत्याधुनिक कृषि यंत्र नहीं थे किसान एक दूसरे के निकट रहता था। आज भी किसानों के समस्याओं को साहित्य के माध्यम से समाज तक पहुँचाया जा रहा है लेकिन समय के साथ – साथ कृषि संस्कृति में भी बदलाव आया है।

000

संदर्भ-

पंडित क्षेमकरणदास, अथर्ववेदभाष्यम, द्वादशम खंडम, सूक्त, 4, 5, पृष्ठ, सं. 2882-83, ओंकारयंत्रालए मुद्रित, संवत 1975, सन, 1918, डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', (संपादक) 'काश्यपीयकृषिपद्धति' पृष्ठ सं. 18, चौखंभा संस्कृत सीरीज ऑफिस, बनारस, प्रथम संस्करण – 2013, मिथिलेश्वर, तेरा संगी कोई नहीं, पृष्ठ सं. 101, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2018, जयनंदन, सल्तनत को सुनो गाँव वालों, पृष्ठ सं. 124, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2005, तेजपाल चौधरी, भूमिपुत्र, पृष्ठ सं. 174, विकास प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण 2012, संजीव, फाँस, पृष्ठ सं. 42, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, डॉ. शांति जैन, लोकगीत के संदर्भ और आयाम, पृष्ठ सं. 01 से संदर्भित, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्कारण, प्रकाशन वर्ष - 1964, मिथिलेश्वर, तेरा संगी कोई नहीं, पृष्ठ सं 19 – 20, सुनील चतुर्वेदी, कालीचाट, पृष्ठ सं. 31, अंतिका प्रकाशन गाजियाबाद, प्रथम संस्करण, 2015, विवेकीराय, किसानों का देश, पृष्ठ सं. 74, प्रथम संस्करण 1956, कर्मयोगी प्रेस, आजमगढ़,

(शोध आलेख)

कक्षा 12 में अर्थशास्त्र विषय के पाठ्यक्रम का विश्लेषणात्मक अध्ययन

शोध लेखक : श्रीमती शक्ति साहू
डॉ. मुरलीधर मिश्रा

श्रीमती शक्ति साहू

सारांश

कक्षा 12 में अर्थशास्त्र विषय के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में प्रस्तुत सम्प्रत्ययों के क्षेत्र (उपयुक्तता, पर्याप्तता, अधिकता अथवा कमी) तथा सम्प्रत्ययों में एकीकरण (सम्प्रत्ययों में परस्पर, सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष में तथा अन्य विषयों के साथ एकीकरण) के आधार पर किया गया है। पाठ्यक्रम में सम्प्रत्ययों के प्रस्तुतीकरण का विश्लेषण करने से यह ज्ञात हुआ है कि पाठ्यक्रम में व्यष्टि व समष्टि अर्थशास्त्र, उपभोक्ता संतुलन, माँग, उत्पादक का व्यवहार, उत्पादक का संतुलन, पूर्ति, पूर्ण प्रतियोगिता, बाज़ार स्त्रूप सम्प्रत्यय, राष्ट्रीय आय अवधारणाएँ, राष्ट्रीय आय समुच्चय, मुद्रा, बैंकिंग, विनिमय सम्प्रत्ययों का क्षेत्र उपयुक्त् एवं पर्याप्त है और सम्प्रत्ययों में अधिकता अथवा कमी नहीं है। एकीकरण के आधार पर विश्लेषण करने से ज्ञात हुआ है कि सभी सम्प्रेत्ययों में परस्पर एकीकरण है। व्यष्टि व समष्टि अर्थशास्त्र के सभी सम्प्रत्ययों में सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्ष के मध्य एकीकरण है। इस पाठ्यक्रम में शामिल सभी सम्प्रत्ययों का आवश्यकतानुसार अन्य विषयों के साथ एकीकरण किया गया है।

किसी राष्ट्र की वर्तमान आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विद्यालय में अर्थशास्त्र का शिक्षण बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अर्थशास्त्र का ज्ञान जहाँ छात्रों के लिए महत्त्वपूर्ण है, वहाँ यह समाज के अन्य वर्गों तथा राष्ट्रीय दृष्टि से भी उपयोगी है। उच्च माध्यमिक स्तर पर अर्थशास्त्र का ज्ञान छात्राओं का करवाना बहुत आवश्यक है। इस स्तर पर विद्यार्थी मानसिक दृष्टि से परिपक्व हो जाता है। अत: विषयवस्तु को हर दृष्टिकोण से समझने की क्षमता उसमें विकसित हो जाती है। अत: इस स्तर पर अर्थशास्त्र के प्रत्येक क्षेत्र का अध्ययन उसके लिए उपयोगी होगा, लेकिन पाठ्यवस्तु एवं पाठ्यक्रिया उसकी क्षमता के अनुकूल होनी चाहिए। आर्थिक सिद्धान्त एवं नियमों का ज्ञान, भारतीय अर्थव्यवस्था का स्वरूप, विभिन्न अर्थशास्त्रियों के उपयोगी मत, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भारत का स्थान, भारत के आर्थिक स्त्रोत एवं उनकी उपयोगिता आदि पाठ्यक्रम में निहित होने चाहिए और पुस्तकीय ज्ञान के साथ व्यावहारिक ज्ञान हेतु पाठ्यक्रियाएँ भी शामिल होनी चाहिए।

अत: किसी राष्ट्र की वर्तमान आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए विद्यालय में उच्च माध्यमिक स्तर पर अर्थशास्त्र का शिक्षण आवश्यक है क्योंकि इस स्तर पर विद्यार्थियों में समस्त शक्तियों का सम्यक रूप से विकास हो चुका है। विद्यार्थियों में भाषाज्ञान, तर्कशक्ति निर्णय लेने की शक्ति, चिन्तन, मनन एवं अंकदर्शिता आदि शक्तियों का विकास हो जाता है।

विद्यालयीन शिक्षा में पाठ्यक्रमों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। पाठ्यक्रम विभिन्न शैक्षिक गतिविधियों का स्वरूप निर्धारित करता है। इसलिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए अनुमोदित पाठ्यक्रमों की गुणवत्ता का आकलन करना शोधकर्ताओं की रुचि का विषय रहा है। पाठ्यक्रमों की विश्लेषणपरक समालोचना के क्रम में ओ. पी. परमेश्वरम (2001) ने माध्यमिक विद्यालय स्तर पर कला शिक्षा का, अपर्णा लालिनकर (2012) ने भारत व इंग्लैण्ड के माध्यमिक स्तर पर ज्यामिति पाठ्यक्रम का, पालीवाल (1998) ने प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रम का, सैनी (2005) ने हाईस्कूल पाठ्यक्रम का, सिंह एवं वाजपेयी (2000) ने जीवन विज्ञानों के पाठ्यक्रम का अध्ययन किया है।

अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम मुख्य उद्देश्य उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में अर्थशास्त्र की समझ विकसित करना है। ऐसे में शोधार्थी द्वय कक्षा 12 में अर्थशास्त्र विषय के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में प्रस्तुत सम्प्रत्ययों के क्षेत्र और सम्प्रत्ययों में परस्पर, सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष में तथा अन्य विषयों के साथ एकीकरण का अध्ययन करने का निश्चय किया।

अध्ययन के उद्देश्य

(1) कक्षा 12 में अर्थशास्त्र विषय के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में प्रस्तुत सम्प्रत्ययों के क्षेत्र का अध्ययन करना।

(2) कक्षा 12 में अर्थशास्त्र विषय के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में प्रस्तुत सम्प्रत्ययों के एकीकरण का अध्ययन करना।

अध्ययन विधि - इस अध्ययन में कक्षा 12 में अर्थशास्त्र विषय के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में प्रस्तुत सम्प्रत्ययों के क्षेत्र और एकीकरण की स्थिति जानने के लिए 'विषयवस्तु विश्लेषण प्रविधि' का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या, न्यादर्शन एवं न्यादर्शन

प्रस्तुत अध्ययन में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा अर्थशास्त्र विषय के लिए उच्च माध्यमिक स्तर पर निर्धारित पाठ्यक्रम में से 12वीं कक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम को सौद्देश्यपूर्ण ढंग से न्यादर्श के रूप में चुना गया है।

प्रदत्तों के स्रोत- प्रस्तुत अध्ययन में उच्च माध्यमिक स्तर की 12वीं कक्षा के लिए केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा कक्षा के लिए निर्धारित अर्थशास्त्र विषय का पाठ्यक्रम प्रदत्तों का प्राथमिक स्रोत है।

प्रदत्तों की प्रकृति- प्रस्तुत अध्ययन में शोध उद्देश्य की पूर्ति के लिए 12वीं कक्षा के लिए केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा कक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम मंए सम्प्रत्ययों के क्षेत्र एवं सम्प्रत्ययों के मध्य एकीकरण अध्ययन करने के लिए विषयवस्तु विश्लेषण से प्राप्त प्रदत्तों की प्रकृति वर्णनात्मक प्रकार की रही है।

अध्ययन प्रक्रिया एवं क्रियाविधि- प्रस्तुत अध्ययन में अग्रांकित प्रक्रिया एवं क्रियाविधि अपनायी गयी:

(अ) सर्वप्रथम केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा उच्च माध्यमिक स्तर पर 12वीं कक्षा के लिए कक्षा के लिए निर्धारित अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम का गहन अध्ययन किया गया।

(आ) अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम का गहन अध्ययन के उपरान्त 'पाठ्यक्रम विषयवस्तु-विश्लेषण प्रपत्र' का सतत् रूप से विकास किया गया।

(इ) 'पाठ्यक्रम विषयवस्तु-विश्लेषण प्रपत्र' की सहायता से 12वीं कक्षा के पाठ्यक्रम में सम्प्रत्ययों की पहचान की गई।

(ई) सम्प्रत्ययों की पहचान के बाद उनका क्षेत्र एवं एकीकरण के विशेष संदर्भ में शोधार्थी द्वारा विकसित आधारों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का विश्लेषण किया गया।

(उ) क्षेत्र एवं एकीकरण के विशेष संदर्भ में शोधार्थी द्वारा विकसित आधारों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का विश्लेषण किया गया।

निष्कर्ष

कक्षा 12 के अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम का विश्लेषण करने पर अग्रांकित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं:

सम्प्रत्ययों के क्षेत्र के आधार पर निष्कर्ष

(क) प्रस्तुत पाठ्यक्रम में व्यष्टि व समष्टि को स्पष्ट करने में उसको अर्थ को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत सम्प्रत्यय उपयुक्त है। अर्थव्यवस्था सम्प्रत्यय में अर्थ, केन्द्रिय समस्याएँ, उत्पादन संभावना सीमा, अवसर लागत को शामिल किया गया है। अर्थव्यवस्था सम्प्रत्यय उपयुक्त है। उपभोक्ता संतुलन सम्प्रत्यय में अर्थ, सीमांत उपयोगिता, ह्रासमान सीमांत, उपयोगिता का नियम, सीमांत उपयोगिता, उपभोक्ता की प्राथमिकताओं को शामिल किया गया है। माँग सम्प्रत्यय को बाज़ार माँग, माँग के निर्धारक, माँग अनुसूची, माँग वक्र, माँग की कीमत लोच को शामिल किया गया है। उत्पादक का व्यवहार सम्प्रत्यय में उत्पादन फलन, लागत, सम्प्राप्ति को शामिल किया गया है। उत्पादक का संतुलन में अर्थ, शर्तें, सीमांत सम्प्राप्ति, सीमांत लागत को शामिल किया गया है। पूर्ति सम्प्रत्यय में बाज़ार पूर्ति, पूर्ति के निर्धारक, पूर्ति, अनुसूची, पूर्ति वक्र, पूर्ति की कीमत लोच को शामिल किया गया है। पूर्ण प्रतियोगिता में अर्थ, विशेषताओं, बाज़ार संतुलन निर्धारण को शामिल किया गया है। बाज़ार स्वरूप में एकाधिकार, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता, अल्पाधिकार को शामिल किया गया है। प्रस्तुत सम्प्रत्यय क्षेत्र की दृष्टि से उपयुक्त है।

(ख) समष्टि अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय आय अवधारणाओं में उपभोग वस्तुएँ, पूँजीगत वस्तुएँ, अन्तिम वस्तुएँ, मध्यवर्ती वस्तुएँ स्टॉक, प्रवाह, सकल निवेश, मूल्यह्रास राष्ट्रीय आय का चक्रिय प्रवाह, राष्ट्रीय आय

परिकलन की विधियों को शामिल किया गया है। राष्ट्रीय आय सम्प्रत्यय को सकल उत्पाद, निवल राष्ट्रीय उत्पाद, सकल व निवल घरेलू उत्पाद, राष्ट्रीय आय, निजी आय, व्यैक्तिक आय, वैयक्तिक प्रयोज्य आय, वास्तविक और भौतिक सकल घरेलू उत्पाद, सकल घरेलू उत्पाद और कल्याण को शामिल किया गया है। मुद्रा सम्प्रत्यय में अर्थ, कार्य, मुद्रा की माँग मुद्रा की पूर्ति, जनता के मुद्रा व व्यापारिक बैंकों की निवल जमाओं को शामिल किया गया है। बैंकिंग सम्प्रत्यय में केन्द्रिय बैंक, व्यापारिक बैंक की साख निर्माण क्रिया को शामिल किया गया है। आय सम्प्रत्यय में उपभोग प्रवृत्ति, बचत प्रवृत्ति, घटक, समग्र माँग को शामिल किया गया है। पूर्ण रोज़गार को अस्वैच्छिक बेरोज़गारी, माँग आधिक्य, माँग कमी, साख की उपलब्धता को शामिल किया गया है। सरकारी बजट में अर्थ, उद्देश्य, घटक, प्राप्तियाँ, व्यय को शामिल किया गया है। भुगतान संतुलन में अर्थ, घटक, आय को शामिल किया गया है। विदेशी विनिमय में स्थिर व नम्य विदेशी दर नियंत्रित संतरण मुक्त बाज़ार में विदेशी विनिमय दर को शामिल किया गया है। प्रस्तुत सम्प्रत्यय क्षेत्र की दृष्टि से उपयुक्त है।

(ग) प्रस्तुत पाठ्यक्रम में व्यष्टि व समष्टि अर्थशास्त्र में पर्याप्तता है। अर्थव्यवस्था सम्प्रत्यय में अर्थ, केन्द्रिय समस्याएँ, उत्पादन संभावना और अवसर लागत सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। उपभोक्ता का संतुलन सम्प्रत्यय में उपयोगिता, सीमांत उपयोगिता, ह्रासमान सीमांत उपयोगिता का नियम, अनधिमान वक्र विश्लेषण, उपभोक्ता का बजट, उपभोक्ता की प्राथमिकताएँ सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। माँग सम्प्रत्यय में बाज़ार माँग, माँग के निर्धारक, माँग अनुसूची, माँग वक्र, माँग की कीमत वक्र सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। माँग की लोच का मापन सम्प्रत्ययों में अपर्याप्तता है। उत्पादक का व्यवहार में उत्पाद फलन, कुल उत्पाद, औसत उत्पाद, सीमांत उत्पाद, लागत, संप्राप्ति सम्प्रत्ययों में पार्यप्तता है। उत्पादक का संतुलन सम्प्रत्यय में अर्थ, शर्तें, सीमांत संप्राप्ति, सीमांत लागत सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। पूर्ति सम्प्रत्यय में बाज़ार पूर्ति, पूर्ति के निर्धारक, पूर्ति अनुसूची, पूर्ति वक्र सम्प्रत्ययों में पर्यप्तता है। पूर्ण प्रतियोगिता में विशेषताएँ, बाज़ार संतुलन का निर्धारण, भोग व पूर्ति के खिसकाव सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। बाज़ार स्वरूप में एकाधिकार, एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता एवं अल्पाधिकार सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। समष्टि अर्थशास्त्र में अवधारणाओं, उपभोग वस्तुएँ, स्टॉक, प्रवाह, सकल निवेश, मूल्यह्रास, आय का चक्रीय प्रवाह, राष्ट्रीय आय परिकलन विधियों में पर्याप्तता है। राष्ट्रीय आय समुच्चय में सकल राष्ट्रीय उत्पाद, निवल राष्ट्रीय उत्पाद, सकल और निवल घरेलू उत्पाद बाज़ार मूल्य और कारक लागत पर, राष्ट्रीय प्रयोज्य आय, निजी आय, वैयक्तिक आय, वैयक्तिक प्रयोज्य आय वास्तविक और भौतिक सकल घरेलू उत्पाद, सकल घरेलू उत्पाद और कल्याण सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। मुद्रा सम्प्रत्यय में मुद्रा की पूर्ति, मुद्रा की माँग को शामिल नहीं करने से अपर्याप्तता है। बैंकिंग सम्प्रत्यय में अन्य बैंकों को शामिल नहीं करने से अपर्याप्तता है। आय में समग्र माँग, उपभोग प्रवृत्ति, बचत प्रवृत्ति सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। पूर्ण रोज़गारी सम्प्रत्यय में अर्थ, अस्वैच्छिक बेरोज़गारी, माँग आधिक्य व माँग कमी सम्प्रत्ययों में अपर्याप्तता है। सरकारी बजट और अर्थव्यवस्था सम्प्रत्यय में अर्थ, घटक, भुगतान संतुलन में घाटा, प्राप्तियाँ, व्यय, सरकारी घाटे के माप सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। विदेशी विनिमय सम्प्रत्यय में स्थिर व नम्य विदेशी विनिमय दर, नियंत्रित संतरण, विदेशी विनिमय दर का निर्धारण सम्प्रत्ययों में पर्याप्तता है। प्रस्तुत सम्प्रत्ययों में चित्र के आधार पर पर्याप्तता है।

(घ) अधिकता व कमी के आधार पर अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि अर्थशास्त्र में अर्थ को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत सम्प्रत्यय में अधिकता व कमी नहीं है। अर्थव्यवस्था, उपभोक्ता संतुलन, माँग, माँग की कीमत लोच, उत्पादन का व्यवहार, उत्पादन का संतुलन, पूर्ति, पूर्ति की कीमत लोच, पूर्ण प्रतियोगिता, बाज़ार स्वरूप सम्प्रत्ययों में अधिकता व कमी नहीं है। समष्टि अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय आय अवधारणाओं, राष्ट्रीय आय समुच्चय, मुद्रा, बैंकिंग, आय, अल्पकाल में उत्पादन संतुलन, पूर्ण रोज़गार, सरकारी बजट और अर्थव्यवस्था, भुगतान संतुलन, विदेशी विनिमय सम्प्रत्ययों में क्षेत्र के आधार पर आधिक्य व कमी स्पष्ट नहीं हो रही है।

सम्प्रत्ययों के एकीकरण के आधार पर निष्कर्ष

(क) पाठ्यक्रम में सम्प्रत्ययों के एकीकरण का अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि व्यष्टि व समष्टि अर्थशास्त्र में एकीकरण है। व्यष्टि अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाई का अध्ययन किया जाता है। समष्टि अर्थशास्त्र के अंतर्गत सम्पूर्ण इकाई का अध्ययन किया जाता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र, समष्टि अर्थशास्त्र तथा अर्थव्यवस्था सम्प्रत्ययों में एकीकरण है। उपभोक्ता संतुलन, माँग, उपयोगिता सम्प्रत्यय में एकीकरण है। उत्पादक का व्यवहार और पूर्ति सम्प्रत्यय में एकीकरण है। बाज़ार के स्वरूप और कीमत निर्धारण के अंतर्गत पूर्ण प्रतियोगिता, बाज़ार संतुलन, एकाधिकार, एकाधिकारात्मक और अल्पाधिकार में एकीकरण प्रदर्शित हो रहा है। समष्टि अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय आय की मूल अवधारणाओं, उपभोग वस्तुएँ, पूँजीगत वस्तुएँ, अन्तिम वस्तुएँ में एकीकरण स्पष्ट हो रहा है। राष्ट्रीय आय समुच्चय में सकल राष्ट्रीय आय, निवल राष्ट्रीय आय, सकल घरेलू उत्पाद, निवल घरेलू उत्पादों इत्यादि सम्प्रत्ययों में एकीकरण स्पष्ट हो रहा है। इन सब में राष्ट्रीय आय का वर्णन करना ज़रूरी है। मुद्रा और बैंकिंग सम्प्रत्यय में एकीकरण स्पष्ट हो रहा है। समग्र माँग, उत्पादन का संतुलन व पूर्ण रोज़गार के प्रस्तुतीकरण से आय व रोज़गार सम्प्रत्ययों में एकीकरण स्पष्ट हो रहा है। सरकारी बजट, सरकारी बजट में घाटा, भुगतान संतुलन, विदेशी विनिमय पर के प्रस्तुतीकरण है। बजट अर्थव्यवस्था तथा भुगतान संतुलन सम्प्रत्ययों

में एकीकरण स्पष्ट हो रहा है। पाठ्यक्रम में सम्प्रत्ययों में आपस में एकीकरण है। व्यष्टिक तथा समष्टि अर्थशास्त्र में एकीकरण विद्यमान है।

(ख) एकीकरण के आधार पर सैद्धांतिक व व्यावहारिक में एकीकरण से स्पष्ट होता है कि सैद्धांतिक रूप में व्यष्टि अर्थशास्त्र में उत्पादन संभावना सीमा, अवसर लागत, सीमांत उपयोगिता ह्रासमान सीमांत को स्पष्ट किया जाता है। व्यावहारिक रूप में इनसे सम्बन्धित सारणी, वक्र, रेखचित्र व जीवन में इनके द्वारा उपभोग्य वस्तुओं का उदाहरण स्पष्ट करना इत्यादि कार्य दिया जाता है। माँग, पूर्ति, लागत, संप्राप्ति से संबंधित आँकड़ें, सारणी, रेखाचित्र वक्र, सांख्यिकी का प्रयोग सम्बन्धी व्यावहारिक कार्य किया जाता है। कहाँ कहाँ बजार के कौनसे स्वरूप (पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार, एकाधिकारात्मक, अल्पाधिकार) है उनके सूची बनाना संबंधी व्यावहारिक कार्य किया जाता है।

समष्टि अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय आय परिकलन की विधियों को निकालना। सांख्यिकी का प्रयोग, तुलना संबंधी व्यावहारिक कार्य किया जाता है। मुद्रा, बैंकिंग, व्यय, आय संबंधी आँकड़े इकट्ठा करना, मुद्रा की नीतियाँ कैसी है, प्राचीन मुद्रा संबंधी कार्य किया जाता है। आय व व्यय के आँकड़ें इकट्ठे करना, बैंकों से राशि निकालना, जमा करवाना कार्य करना आदि कार्य किया जाता है। बजट से संबंधित पारिवारिक बजट बनाना, दो देशों के बीच विदेशी विनिमय संबंधी आँकड़ें इकट्ठे करना, अंतर के कारणों की सूची बनाना इत्यादि व्यावहारिक कार्य किया जाता है। अत: सैद्धान्तिक व व्यावहारिक में एकीकरण विद्यमान है।

(ग) व्यष्टि अर्थशास्त्र में अर्थव्यवस्था का संबंध भूगोल, समाजशास्त्र से है। अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याओं, आर्थिक क्रियाकलापों का आयोजन सम्प्रत्यय का संबंध, समाजशास्त्र, इतिहास, विज्ञान से है। बजट, लागत सम्प्रत्यय का संबंध इतिहास, गृहविज्ञान, राजनीतिशास्त्र, गणित से है। उपभोक्ता का अनधिमान व उपयोगिता सम्प्रत्यय का संबंध गृहविज्ञान, मनोविज्ञान से है। माँग व पूर्ति का संबंध वाणिज्यशास्त्र, भूगोल, मनोविज्ञान, अंकशास्त्र से है। बाज़ार का संबंध वाणिज्यशास्त्र, भूगोल से है। अत: कक्षा 12 के सम्प्रत्ययों में आवश्यकतानुसार लगभग सभी विषयों के साथ एकीकरण विद्यमान है एकीकरण होने से सम्प्रत्यय व्यवस्थित ढ़ंग से प्रस्तुत है।

समष्टि अर्थशास्त्र के सम्प्रत्यय राष्ट्रीय आय अवधारणाओं और समुच्चय का संबंध गणित, भूगोल, सांख्यिकी, वाणिज्यशास्त्र, गृहविज्ञान, समाजशास्त्र से है। मुद्रा और बैंकिंग सम्प्रत्यय का संबंध गणित, वाणिज्य से है। आय व रोज़गार सम्प्रत्यय का संबंध भूगोल, गृहविज्ञान से है। सरकारी बजट सम्प्रत्यय का संबंध राजनीतिशास्त्र, गृहविज्ञान, सांख्यिकी, गणित से है।

शैक्षिक निहितार्थ-

अर्थशास्त्र विषय के पाठ्यक्रम के विश्लेषण से कुछ गुण व दोष प्रकाश में आये हैं। उच्च माध्यमिक स्तर पर अर्थशास्त्र विषय के पाठ्यक्रम के विश्लेषण से उभरे यह पक्ष प्रभावी क्रियान्वयन पक्ष हेतु शिक्षकों व शिक्षार्थियों, विशेषज्ञों, पाठ्यक्रम निर्मात्री समितियों के सदस्यों, पाठ्यक्रम आकल्पनकर्ताओं तथा अन्य विषयों से जुड़े शिक्षकों के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। उच्च माध्यमिक स्तर पर अर्थशास्त्र पाठ्यक्रम के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन के निम्नलिखित निहितार्थ हो सकते हैं-

(1) अर्थशास्त्र विषय के पाठ्यक्रम से प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग यह बोर्ड वर्तमान पाठ्यक्रम के प्रति प्रतिपुष्टि प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। पाठ्यक्रम के प्रति प्राप्त हुए सकारात्मक पहलुओं का प्रयोग विशिष्टताओं को जारी रखने के लिए करते हैं। वहीं न्यूनताएँ एवं सुझाव का प्रयोग क्यों करना चाहिए। यह संकेत देते हैं। बोर्ड इन संकेतों को प्रयोग पाठ्यक्रम में संशोधन करने, नवीनीकरण करने, विशेषज्ञों को दिशा-निर्देश प्रदान करने और विशेषज्ञों का चयन करने हेतु कर सकता है।

(2) पाठ्यक्रम निर्माण समिति के सदस्यों के उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों की आयु वर्ग को ध्यान मंर रखकर उनकी परिपक्व वृद्धि के अनुसार व अर्थशास्त्र विषय का नवोदित विषय होने के कारण वैज्ञानिक व व्यवस्थित पाठ्यक्रम की रचना को ध्यान में रखकर कला संकाय के विषयों व मानविकी संकाय के विषयों में सम्प्रत्ययों को एकीकृत करते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए। अर्थशास्त्र विषय के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष को अलग-अलग प्रस्तुत करने के स्थान पर पाठ्यक्रम के अन्तर्गत एकीकृत रूप में प्रस्तुत करना चाहिए।

(3) पाठ्यक्रम शिक्षकों को अध्ययन हेतु दिशा निर्देश प्रदान करता है। सम्प्रत्ययों का पूर्ण प्रस्तुतीकरण उचित क्षेत्र, एकीकरण को शिक्षक को विषय को प्रभावी करने हेतु आधार प्रदान करता है। अत: पाठ्यक्रम का निर्माण पूर्ण उल्लेखित व स्पष्ट रूप से करना चाहिए।

000

सन्दर्भ- कौल, लोकेश (1998), शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली का विकास, पब्लिशिंग हाऊस, प्राथमिक लिखित, जंगपुरा, नई दिल्ली, कपिल, एच. के. (2007), अनुसंधान विधियाँ, एच. पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा, कुमार, राजीव. (2002), अर्थशास्त्र शिक्षण, साहित्य प्रकाशन, आगरा, पालीवाल, मनीषा (2015), उच्च माध्यमिक स्तर पर भूगोल अनुदेशन : समालोचनात्मक अध्ययन, शोध प्रबन्ध, शिक्षा संकाय, वनस्थली, राज, सोहन व महेश तिवारी (2015), शिक्षा के उद्देश्य ज्ञान एवं पाठ्यचर्या, अनु प्रकाशन जयपुर, सिंह, योगेश कुमार (2015), अर्थशास्त्र शिक्षण, ए. पी. एच. पब्लिशिंग कॉरपरेशन, नई दिल्ली, सक्सेना, निर्मला. (2014), अर्थशास्त्र शिक्षण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, शर्मा, वन्दना व बी. एस. रायजादा (2011), शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

(शोध आलेख)

ओरछा के भित्ति चित्रों का चित्रात्मक अध्ययन

शोध लेखक : भक्ति अग्रवाल
शोध निर्देशक
डॉ.रेखा भटनागर

भक्ति अग्रवाल
शोधार्थी
श्री कृष्णाक विश्वविद्यालय, छतरपुर

परिचय –

शोध विषय "ओरछा के भित्ति चित्रों का चित्रात्मक अध्ययन" पर केंद्रित है, जिस पर चर्चा करने के लिए मुझे इससे जुड़े कई पहलुओं को समेटना है। विशेष रूप से ओरछा की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि, कला का विकास, भारतीय कला में इसका स्वतंत्र अस्तित्व आदि। उपरोक्त विवेचना करने के लिए इस तथ्य को समझना आवश्यक होगा कि ओरछा बुन्देलखण्ड का अभिन्न अंग रहा है। इस दृष्टि से विवेचना करने के लिए सर्वप्रथम बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक स्वरूप को समझना होगा, फिर ओरछा की सांस्कृतिक समृद्धि तथा कला के विकास और उसके स्वरूप का व्यवस्थित ढंग से उल्लेख करना होगा।

भित्ति कला सबसे प्राचीन चित्रकला है। प्रागैतिहासिक काल के ऐतिहासिक अभिलेखों में सर्वप्रथम मिट्टी के बर्तनों का निर्माण हुआ, लेकिन कुछ समय बाद लोग मिट्टी का उपयोग दीवारों पर चित्र बनाने के लिए करने लगे। भित्तिचित्र कला में, दीवारों पर ज्यामितीय आकृतियों, कलात्मक रूपांकनों, पारंपरिक डिजाइनों, सहज बनावट और अनुकरणीय सरल आकृतियों में मुक्त कल्पना, मुक्त आवेग और रैखिक ऊर्जा निहित होती है, जो अद्वितीय ताजगी और दृश्य सौंदर्य पैदा करती है।

शब्द "भित्तिचित्र" का उपयोग कला के इतिहास में किसी सतह पर खरोंच या पेंटिंग करके लिखने या डिजाइन करने के द्वारा निर्मित कला के कार्यों को संदर्भित करने के लिए किया जाता है। जिसमें वर्णक की एक परत को खरोंच कर उसके नीचे दूसरी परत प्रकट करना शामिल है। इस तकनीक का उपयोग मुख्य रूप से कुम्हारों द्वारा किया जाता था, जो अपने माल को चमकाते थे और फिर उसमें एक डिज़ाइन को खंगालते थे। प्राचीन समय में, दीवारों पर एक नुकीली वस्तु से भित्ति चित्र बनाए जाते थे, हालाँकि कभी-कभी चाक या कोयले का उपयोग किया जाता था। भित्तिचित्र सरल लिखित शब्दों से लेकर विस्तृत दीवार चित्रों तक हैं, और वे प्राचीन काल से अस्तित्व में हैं, उदाहरण के लिए प्राचीन मिस्र, प्राचीन ग्रीस और रोमन साम्राज्य के समय के उदाहरण हैं। यह शब्द ग्रीक - ग्राफीन से लिया गया है - जिसका अर्थ है "लिखना"।

ओरछा के मंदिरों की निर्माण कला को केवल अतीत की पुनरावृत्ति नहीं माना जा सकता, यह प्रगतिशील और जीवंत कला का आदर्श प्रस्तुत करती है। ओरछा को मंदिरों का शहर ही कहा जा सकता है। बुंदेलखंड-संस्कृति मंदिर-संस्कृति का बोलबाला है। यहाँ के अनेक मंदिरों की दीवारों और छतों पर रासलीलाओं के विभिन्न दृश्य न केवल आकर्षक हैं, बल्कि दिव्य वातावरण बनाने में समर्थ, सफल और सहायक भी हैं। ओरछा के मंदिरों के भित्ति चित्र सुन्दर और भोली हैं, इसलिए वे प्रशंसनीय हैं।

शोध समस्या -

प्रस्तुत विषय पर आधारित शोध ओरछा के भित्ति चित्रों के चित्रात्मक अध्ययन पर कुछ शोध अवश्य हुए होंगे। परन्तु ओरछा के भित्ति चित्रों के अध्ययन को एक साथ प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। ओरछा की कला में रेखाएँ, समायोजन, वर्ण और तकनीक का महत्त्व। अधिकांश शोधकर्ता इन विभिन्न घटकों से अनभिज्ञ हैं। ओरछा के चित्र विभिन्न रूपों के आधार पर उत्कीर्ण हैं। ये तस्वीरें सामान्य जनजीवन से जुड़ी हुई लगती हैं। इसमें मनुष्य की घटनाओं और स्थितियों को अलग-अलग रूपों में अंकित किया गया है। ओरछा के चित्रकारों ने भी समय और परिस्थिति के अनुसार वातावरण को कम से कम पंक्तियों में अधिक से अधिक भावों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। यहाँ के चित्रकारों ने प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित कला के छह अंगों को बड़ी ख़ूबसूरती से समेटा है।

साधारण चित्रों को भी कलाकार ने बहुत ही सुन्दर तरीके से आध्यात्मिक रूप में प्रस्तुत

किया है। मेरा यह प्रयास रहेगा कि ओरछा और मथुरा के चित्रों में, जो जातक-कथाओं के रूप में भगवान् के विभिन्न जीवन के साथ-साथ आम लोगों के जीवन पर आधारित प्रस्तुत किए गए हैं, उन्हें विस्तार से बताया जाएगा।

ओरछा के चित्रों में ईश्वर को अनेक जन्मों और अनेक रूपों में चित्रित किया गया है। ईश्वर के ये रूप न केवल मानव रूप में हैं बल्कि विभिन्न रूपों में परिवर्तित हुए हैं। इन रूपों के पीछे क्या आध्यात्मिकता थी और कलाकार की सोच और कल्पना क्या थी। यह बिंदु भी विचारणीय है। मैं अपने शोध के माध्यम से इन तथ्यों पर चर्चा करने की कोशिश करूँगी।

शोध उद्देश्य -

प्रस्तुत अध्ययन के लिये निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है, जो इस प्रकार से है।

1-ओरछा के सांस्कृतिक, धार्मिक स्वरूप की विवेचना करना।

2-भित्ति चित्र परंपरा के साथ ही ओरछा के भित्ति चित्रों के भाव पक्षों और कला पक्षों की समग्र रूप से विवेचना करना।

3-ओरछा के भित्ति चित्रों की चित्रांकन विशेषता के आधार पर विस्तृत अध्ययन करना।

4-ओरछा के मंदिरों के भित्ति चित्रों की आध्यात्मिक, कलात्मक और सौन्दर्यात्मक विशिष्ठता का अध्ययन करना।

परिकल्पना -

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक और दार्शनिक प्रवृत्ति का होने के कारण परिकल्पना की आवश्यकता नहीं है, पंरतु शोध की मौलिकता और प्रांसगिकता को ध्यान में रखते हुये निम्न परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है।

1-ओरछा के मंदिरों के भित्तिचित्रों की आध्यात्मिक, कलात्मक और सौन्दर्य अनुपम बेजोड़ है।

2-ओरछा के भित्ति चित्रों में भावों और कला पक्ष को अभिव्यक्त करने की क्षमता है।

3-चित्रांकन विशेषता के आधार पर ओरछा के मंदिरों के भित्ति चित्र, बाकी क्षेत्रों के भित्ति चित्रों से पृथक है।

शोध का कार्य क्षेत्र -

शोध का कार्य क्षेत्र ओरछा के विभिन्न स्थानों के भित्तिचित्रों पर आधारित है। ओरछा के भित्तिचित्र भारतीय कला का विश्व में प्रतिनिधित्व करते हैं। ओरछा के कला मंडपों में वास्तु, मूर्ति एवं चित्र तीनों का बहुत ही सुन्दर चित्रण है। चित्रांकन के लिए कलाकार ने जिस प्रकार की व्यवस्था भित्तिचित्रों को बनाते समय की है वह निश्चित आज भी कल्पनीय है। ओरछा के मंदिरों में छत पर बारीक अंकन आज भी वास्तु शास्त्र के प्राचीन विज्ञान का प्रमाण है।

ओरछा के मंडपों में जो मूर्तियाँ उकेरी गई हैं वह वास्तव में अद्‌भुत कला का नमूना हैं। ओरछा के प्रत्येक मंडप में मूर्ति एवं चित्रों का बहुत ही सुन्दर समायोजन है। मंडपों में चाहे वह विहार या चैत्य हों उसी के अनुसार मूर्ति का निर्माण किया गया है। ओरछा के स्थानों पर चित्रों की अत्यधिक श्रृंखला है। वर्तमान में अध्ययन की दृष्टि से चित्रकारों ने स्तम्भों, छतों व दीवार पर चित्रांकन किया है। भविष्य में भी शोध के लिए ओरछा में अनेक संभावनाएँ हैं।

शोध प्रविधि -

उद्‌देश्यों तथा परिकल्पना की पूर्ति शोध प्रविधि के बिना असंभव है। प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक और दार्शनिक प्रवृत्ति का होने के कारण परिकल्पना की आवश्यकता नहीं है, पंरतु शोध की मौलिकता और प्रांसगिकता को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत अध्ययन को ऐतिहासिक और दार्शनिक शोध प्रविधि से पूरा किया गया।

ऐतिहासिक और दार्शनिक प्रवृत्ति का होने के कारण अध्ययन के लिये प्राथमिक ऑकड़ों या प्राथमिक तथ्यों की आवश्यकता नहीं है। अध्ययन में ओरछा के मंदिरों की ऐतिहासिक जानकारी, स्थापत्य कला, भित्ति चित्रों के निर्माण की पंरपरा, रंगों के उपयोग की परंपरा, विषयवस्तु से संबंधित प्रकाशित और अप्रकाशित शोध प्रबंध, शोध पत्रों के साथ ही ऐतिहासिक तथ्यों को द्रितीयक ऑकड़ों के रूप में संकलित कर उनकी विवेचना की गई।

इस प्रकार अध्ययन के दौरान प्राप्त होने वाले नये तथ्यों के आधार पर शोध के उद्‌देश्यों को पूरा किया जाएगा।

शोध का महत्त्व -

प्राचीन काल में भित्ति चित्रों का विशेष महत्त्व होता था। मंदिर व महलों को आकर्षक बनाने के लिए भित्ति चित्रों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती थी। जब हम किसी मंदिर या पौराणिक स्थल के दर्शन को जाते हैं तो मंदिर की दीवारों, गुंबद व अंदरूनी हिस्सों में बने देवी देवताओं के भित्ति चित्र देखने के बाद उनसे संबंधित पूरी घटना मन में अंकित हो जाती है।

विडंबना है कि पौराणिक मंदिरों के नवीनीकरण के नाम पर इन भित्ति चित्रों को नष्ट किया जा रहा है। जो बचे हैं वह भी नष्ट होने के कगार पर है। इन भित्ति चित्रों को बचाकर मंदिरों और पुरातन स्थलों के आकर्षण को बचाया जा सकता है, जोकि निसंदेह पर्यटकों के भी आकर्षण का केंद्र होंगे। ओरछा, ऐतिहासिक, सास्कृतिक और धार्मिक रूप से समृद्ध है। यहाँ के भित्ति चित्रों को भी संरक्षित कर उनको पर्यटन के रूप में विकसित किया जा रहा है। इसी वजह से प्रस्तुत अध्ययन का महत्त्व है।

शोध की प्रांसगिकता -

ओरछा राम राजा मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। यह शहर बेतवा नदी के तट पर स्थित है। बेतवा नदी के दोनों किनारों के पुरातात्विक सर्वेक्षण से पता चलता है कि यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक काल से लगातार फलता-फूलता और फलता-फूलता रहा है। 9वीं शताब्दी के बाद बुंदेलखंड पर चंदेल शासकों का शासन था, जिनके अवशेष मंदिरों, प्राचीन महत्त्व और के रूप में देखे जा सकते हैं। ओरछा के पास मोहनगढ़ और गढ़कुंडार किलों के आसपास बावड़ी आदि।

रुद्रप्रताप ने 1531 ई. में बुंदेलों की राजधानी गढ़कुंडार से ओरछा स्थानांतरित कर दी। ओरछा के बुंदेला शासकों से पहले भी यहाँ बसावट के अवशेष थे। बुंदेला

शासकों ने ही इनका पुनर्निर्माण कराया था। चारदीवारी और प्रवेश द्वार मुख्य थे। रुद्रप्रताप और भारती चंद्र ने बेतवा नदी के तट पर चार दीवारों के भीतर ओरछा किले का निर्माण किया। ओरछा के बुंदेला शासकों में महत्त्वपूर्ण हैं भारतीय चंद्र, मधुकर शाह, राम शाह, वीर सिंह बुंदेला आदि। इनमें से बहुत से निर्माण कार्य वीर सिंह बुंदेला ने ओरछा में कराए थे। बुंदेली कलम के किले, गढ़िया, महल, मंदिर, बावड़ी आदि और भित्ति चित्र यहाँ के चित्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। बाद में बुंदेला शासकों ने टिहरी अर्थात् टीकमगढ़ को अपनी राजधानी बनाया। टीकमगढ़, मोहनगढ़, लिधौरा, दिगौड़ा, एस्टन, खरगापुर, बल्देवगढ़ आदि सहित आसपास के क्षेत्रों में हैरिटेज भवन बने हैं। ओरछा धार्मिक रूप से प्रसिद्ध है, लेकिन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत के आधार पर ओरछा को प्रसिद्धि नहीं मिल पाई है। इन्हीं कारणों से वर्तमान शोध प्रासंगिक है।

शोध की पृष्ठभूमि -

भारत की कला भारतीय संस्कृति का वाहन है। कला संस्कृति में निहित आध्यात्मिक भावना के साथ चलती है। कला न केवल व्यक्तिगत भावनाओं को व्यक्त करती है बल्कि समाज की दैनिक गतिविधियों से प्रभावित व्यक्ति के पूरे वातावरण को एक नए रूप के साथ हमारे सामने लाती है। बुंदेलखंड सांस्कृतिक, प्राकृतिक रूप से समृद्ध क्षेत्र है। यहाँ के पवित्र तीर्थ और रमणीय स्थल आज भी इसके वैभव की तस्वीर पेश करते हैं। विंध्य पर्वत श्रंखला प्रागैतिहासिक काल से ही मानव के लिए उपयुक्त आवास रही है। इस क्षेत्र में बसे ओरछा को धार्मिक रूप से राम राजा सरकार और ऐतिहासिक रूप से महलों के क्षेत्र के रूप में जाना जाता है। ओरछा के राम राजा सरकार के मंदिर के साथ-साथ महलों में प्राचीन एवं उत्कृष्ट भित्ति चित्र प्राप्त हुए हैं, जो कलात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। इसके भित्ति चित्रों का सर्वेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि इनमें प्राचीन भारतीय कला के तत्वों को समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से उपर्युक्त मंदिरों के भित्ति चित्रों में निहित लोक संस्कृति के प्रभाव, परंपरा, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

शोध की सैंद्धातिक रूपरेखा -

प्रस्तुत शोध अध्ययन चित्रकला हो सकता है जिसे ललित कला कहा जाता है, परन्तु अध्ययन की शोध समस्या का विस्तार से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वर्तमान अध्ययन चित्रकला के साथ-साथ इतिहास, धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र और चित्रकारी विषयों से भी संबंधित है।

अध्ययन की दृष्टि से ओरछा के भित्ति चित्रों का अध्ययन न केवल चित्रकला की दृष्टि से किया गया है, बल्कि इसके ऐतिहासिक महत्त्व, काल गणना, धार्मिक महत्त्व के साथ-साथ सामाजिक परम्पराओं की दृष्टि से भी किया गया है। इसी कारण शोध की मौलिकता, तार्किकता एवं ऐतिहासिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए अध्ययन की वैज्ञानिक रूपरेखा तैयार की गई है। प्रस्तुत अध्ययन में पूर्व अध्ययनों, शोध पत्रों के प्रकाशन तथा समय-समय पर प्रकाशित पुस्तकों के आधार पर शोध की सैद्धान्तिक रूपरेखा तैयार की गई है।

उपसंहार -

चित्रित ग्रन्थों में कलाकारों ने लोक तत्वों को महत्त्व देकर उन्हें जनता के निकट पहुँचाया है। अहिरावण चित्रावली, अष्टयम चित्र, गीतगोविंद, भागवतपुराण, रागमाला आदि के चित्र इस शैली के अद्भुत उदाहरण हैं। कई चित्रकार टीकमगढ़ और बाणगढ़ में रहते हुए लंबे समय तक छतरपुरी, टीकमगढ़ी और कालपी के बादामी कागज पर चित्र बनाते रहे हैं। देवगढ़, मदनपुर, छतरपुर और इसके आसपास के स्थानों में वास्तुकला और मूर्तिकला के लगभग 192 अद्भुत उदाहरण मिलते हैं। वे परंपरा को विकसित करने और आगे बढ़ाने में बहुत मददगार रहे हैं।

जिस प्रकार अजन्ता से राजपूत शैली का विकास हुआ, उसी प्रकार बुन्देली शैली का विकास राजपूत शैली से हुआ, परन्तु मुगल कलम का प्रभाव दोनों पर पड़ा है, तथापि बुन्देली कलम की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं, जिसके कारण इसे राजपूत कलम से भिन्न मानी जाती है। बुंदेली कलम भारतीय चित्रकला शैली को एक विशेष स्पर्श देते हैं।

भारतीय कला के इतिहास में सभी कलाकारों के लिए इसका विशेष स्थान माना जाता है। एक प्रमुख विधा के रूप में इसके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। इसलिए इस शैली का बहुत महत्त्व है। लेकिन अभी भी इस शैली की कुछ सामग्री प्रसिद्ध और प्रमुख लोगों के निजी संग्रह में है, जिसे वे अपनी संपत्ति समझकर शोधकर्ताओं और पारखी लोगों को पूरे उत्साह के साथ नहीं दिखाते, लेकिन यह उम्मीद की जाती है कि जिस दिन यह सामग्री निकलेगी, उस दिन बुंदेलखंड शैली के और तत्व सामने आएँगे और इसलिए यहाँ के लोग इस उम्मीद पर कायम हैं कि भविष्य में भी बुंदेलखंड का गौरव इसी तरह रौशनी की ओर बढ़ता रहेगा, जिससे यह भारत की प्रमुख शैलियों में गिने जाते हैं और जिनका निर्णय भविष्य में ही तय होगा।

आज भी कलाकार दिन-प्रतिदिन की खोजों और प्रकाशित सामग्री के माध्यम से इसके अस्तित्व को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। क्योंकि इसने अपने क्षेत्र में बुंदेलखंड की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परंपराओं को प्रमुख स्थान दिया है। इसलिए भारतीय चित्रकला के इतिहास में बुंदेलखंड चित्रकला शैली को प्रमुख स्थान देकर इसके योगदान और महत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता।

000

संदर्भ-

1. राधा कमल मुखर्जी - भारतीय चित्रकला का विकास, 2. विन्ध्य प्रदेश ओरछा का अतीत - सूचना व प्रसार विभाग-उ.प्र., 3. नाथ डॉ. राम - मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, 4. मिश्र राम चरण हयारण्य - बुन्देलखण्ड की संस्कृति और साहित्य, 5. दिव्य अम्बिका प्रसाद - ओरछा की चित्रकारी, 6. गैर ठाकुर लक्ष्मण सिंह - ओरछा दर्शन का इतिहास, 7. चतुर्वेदी राममित्र - ओरछा का अतीत

(शोध आलेख)

संत दरियाव की वाणी : वर्तमान प्रासंगिकता

शोध लेखक : मनीष सोलंकी

मनीष सोलंकी
शोधार्थी, हिन्दी साहित्य विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र), 442001

वर्तमान उत्तर आधुनिक दौर में मानव जीवन यंत्रवत बनकर रह गया है न उसमें संवेदना है न ही नैतिकता। एक निश्चित ढर्रे में ढला जीवन और उससे उत्पन्न निराशा मानव जीवन की प्रमुख समस्याओं में से एक है। साथ ही समाज की कुरूपता, सामाजिक भेदभाव, सांप्रदायिक समन्वयक का अभाव, मानवीय मूल्यों का ह्रास, आचरण की अशुद्धता, पूँजीवादी व्यवस्था का शिकार होना, पर्यावरण संकट, अहिंसा आदि अनेक ऐसे तत्व जिनका सामना वर्तमान मानव कर रहा है। साहित्य और मानव के संबंध पर विचार करें तो हम देखते है कि साहित्य मानव का पथ प्रदर्शक बनकर उभरता है। संतकाव्य भी मानवता का पथ प्रदर्शक हैं। इसी क्रम में रामस्नेही संप्रदाय तथा संत दरियाव की वाणी की वर्तमान प्रासंगिकता भी निर्विवाद बनी हुई है। संत दरियाव की वाणी का प्रभाव पश्चिम राजस्थान के नागौर, पाली, बीकानेर, जोधपुर आदि जिलों में निम्न तथा मध्यमवर्गीय किसान परिवारों पर व्यापक रूप से देखा जा सकता है। संत दरियाव द्वारा सत्संगति, शुद्ध आचरण, सांप्रदायिक समन्वय, मोह माया, दुर्व्यसन त्याग, संघर्ष प्रेरणा, सत्य-प्रेम, नारी, स्वतंत्रता, आत्मानुसंधान आदि पर दिए के उपदेश वर्तमान प्रासंगिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है जो लोगों को सन्मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं।

सत्संगति- संत दरियाव की वाणी में सत्संगति पर व्यापक विचार मिलते हैं। सत्संगति का यह उपदेश आज के युवाओं के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज का युवा कुसंगत में पड़कर अपना जीवन अविवेकपूर्ण ही नष्ट कर दे रहा है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में बहुत सी ग़लत आदतों को सीख जाता है। उन युवाओं के लिए संत दरियाव की वाणी का उपदेश प्रभावी हो सकता है। संत दरियाव के अनुसार लोहा पारस का संग करके सोना बन जाता है उसी प्रकार व्यक्ति को भी सुसंगत को ग्रहण करना चाहिए ताकि उसका जीवन भी उन्नत बन सकें, उसे बुरी संगत वाले व्यक्ति का साथ नहीं करना चाहिए-

लोह पलट कंचन भया, कर पारस को संग। 1

इसी प्रकार संत दरियाव मित्रता पर भी लिखते हैं कि लोहा पारस का संग करके उसी की तरह बन जाता है और अगर वह उसी की तरह अच्छा नहीं बन पाता है तो व्यक्ति को वह मित्रता झूठी समझनी चाहिए। साथ ही दरियाव लिखते हैं कि कपटी व्यक्ति का संग करने से अच्छा व्यक्ति भी कपटी हो जाता है और साध यानी अच्छे व्यक्ति का संग करने से बुरा व्यक्ति भी अच्छा बन जाता है। आज के दौर में सत्संगति का यह विचार प्रासंगिक तथा उपयोगी है विशेष रूप से उस परिस्थित में जब आज का युवा सुसंगति की अपेक्षा कुसंगत में जल्दी पड़ जाता है-

लोहा काला भीतर कठिन, पारस परसे सोय। / पारस परसा जानिये अंग-अंग पलटै नहीं तो

है झूठा संग।।2

दरिया संगत साध की, कल बिष नासै धोय। / कपटी का संगत किये, आपहु कपटी होय।।3

अत: आज का युवा वर्ग सत्संगति में रहकर जीवन की उन्नति कर सकता है चाहे वह भौतिक हो या आध्यात्मिक।

आचरण की शुद्धता- वर्तमान समय में व्यक्ति का आचरणसर्वाधिक निम्न स्तर पर माना जाता है। धोखाधड़ी, झूठ, छल-कपट, आदि सांसारिक प्रपंच व्यक्ति के आचरण को निम्न किए हुए है। संत दरियाव शुद्ध आचरण का उपदेश देकर व्यक्ति को यथार्थपरक जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं। संत दरियाव के अनुसार व्यक्ति को अंतर्जगत् तथा बहिर्जगत् से एक होना चाहिए उसमें कोई भेद नहीं होना चाहिए, यथा:-

बाहर से उज्जल दसा, भीतर मैला अंग। ता से ती कौवा भला, तन मन एकहि रंग।।4

इससे आगे संत दरियाव मनुष्य जीवन के औचित्य पर उपदेश देते हुए कहते हैं कि चौरासी यौनियों के उपरांत मनुष्य जीवन मिलता है उसमें भी व्यक्ति मनुष्यता का आचरण अर्थात् शुद्ध आचरण नहीं रखता है तो यह मनुष्य जीवन ही उसके लिए निरर्थक है। मनुष्यता के महत्त्व और आचरण शुद्धता का यह उपदेश आधुनिकीकरण की अंध दौड़ में ओझल होते मनुष्य के अस्तित्व के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, यथा-

लख चौरासी भुगत कर, मानुष देह पाई।/ राम नाम ध्याया नहीं, तो चौरासी आई।।5

आत्मसंतोष-मोहमाया- आज का मनुष्य अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी है, जो एक-दूसरे की देखा-देखी में बड़े-बड़े स्वप्न देखता है, इससे वह स्वार्थ एवं मोहवश कुजाल में फंसकर रह जाता है, जब ये स्वप्न पूर्ण नहीं होते हैं और व्यक्ति को असफलता मिलती है तो वह इनकी पूर्ति हेतु अपराध की ओर बढ़ता है। इस संदर्भ में संत दरियाव की वाणी वर्तमान समय में प्रासंगिक है-

भेड़ गति संसार की, हारे गिनै न हार। / देखा देखि परबत चढ़ै, देखा देखी खाड़।। 6

दरिया गैला जगत् को, कैसे दीजै सीख।/ सौ कौसाँ चालन करै, चाल न जानै बीख।।7

इसी प्रकार वर्तमान मनुष्य की धनलोलुपता और मोह पर भी संत दरियाव का उपदेश प्रासंगिक है, कोयल और कौए का उदाहरण देकर संत दरियाव मोह की स्थिति स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति जो कुछ भी मोहवश अपने परिजनों के लिए करता है वह स्वयं उसी के लिए अनुपयोगी होता है यह आज के दौर का कटु यथार्थ है-

कोयल आले मूढ़ कै, धरै आपणां अंड।/ निस दिन राखै हेत में, तिन से पड़ै न खंड।।8

सांप्रदायिक समन्वय- रामस्नेही संप्रदाय रेण तथा संत दरियाव की ख्याति सांप्रदायिक समन्वय को लेकर विशेष रूप से रही है। संत दरियाव स्वयं मुस्लिम परिवार में जन्म लेते हैं लेकिन इनके संस्कार, शिक्षा-दीक्षा पूर्ण रूप से हिन्दू रीतिरिवाज से हुई है। आज भी इनके अनुयायी हिन्दू धर्म से संबंधित ही हैं। आज जब धार्मिक असहिष्णुता एवं कट्टरता चरम पर है, जहाँ पर धर्म एवं जातिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर युवाओं में समस्त मानव समुदाय के प्रति समता की भावना का विकास समय की माँग है, वहाँ संत दरियाव की राम शब्द की व्याख्या सांप्रदायिक समन्वय की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। संत दरियाव राम शब्द में र से राम तथा म से मोहम्मद की व्याख्या कर हिंदू-मुस्लिम समन्वय का प्रयत्न करते हैं जो आज के समय में बहुत ही प्रासंगिक कहा जा सकता है-

ररां तौ रब राम है, म मा मोहम्मद जान।/ दोय हरफ में माइना, सबही वेद पुराण।। 9

दरिया दस दरवाज में, ता बिच पढ़त निमाज। / ररो ममो इक रटत है, और सकल बेकाज।10

सर्वदुर्व्यसन त्याग- संत दरियाव की वाणी तथा रामस्नेही संप्रदाय में मद्यपान, तंबाकू, धूमपान आदि सभी प्रकार के नशों के प्रति कड़ी निंदा मिलती है। कम से कम वर्तमान समय में धरातल पर रामस्नेही संप्रदाय के अनुयायियों पर तो संत दरियाव की वाणी का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है, रामस्नेही व्यक्ति सदा नशें से दूर ही रहता है और वह अपने घर में नशा करने वाले व्यक्ति को प्रवेश भी नहीं करने देता है। आज का युवा नशे को अपने जीवन का अंग स्वीकार कर चुका है जबकि उसके परिणाम से वह स्वयं विदित है कि यह न केवल शारीरिक तौर पर अपितु मानसिक तथा सामाजिक तौर पर भी हेय है ऐसी स्थिति में संत दरियाव का नशा मुक्ति पर उपदेश प्रासंगिक है, यथा-

दरिया अमल है आसुरी पिये होय सैतान। / राम रसायन जो पिये, सदा छाक गलतान।। 11

नारी संबंधी विचार:- जहाँ ज्ञानाश्रयी काव्य परंपरा के संतों के काव्य में नाथपंथी साहित्य के प्रभाव से नारी को माया, महाठगीनी आदि कहकर गृहस्थ तथा नारी साहचर्य का विरोध मिलता है तथा नारी को मुक्ति में बाधक माना गया है, वहीं रामस्नेही संप्रदाय तथा संत दरियाव की वाणी में नारी विषयक मत संत काव्य की साधारण धारणा से विपरीत मिलता है। संत दरियाव ने न सिर्फ नारी को जगत् जननी कहा अपितु नारी के महत्त्व को भूलने वाले संतों तो मूर्ख तक कहा है, यथा-

नारी जननी जगत् की, पाल पोस दे पोष।/ मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष।।12

साथ ही संत दरियाव नारी के लिए भक्ति मार्ग खोलने के भी पक्षधर है, यथा-

नारी आवे प्रीत कर, सतगुर परसै आन। / दरिया हित उपदेस दे, माय बहिन धी जान।। 13

वर्तमान भोगवादी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से नारी के प्रति कामजनित दृष्टिकोण सर्वत्र विद्यमान है। आधुनिकता ने नारी को जहाँ एक ओर स्वतंत्रता, शिक्षा तथा अधिकार जागृति प्रदत्त की है वहीं उसका दैहिक शोषण भी वर्तमान में मनुष्यता पर प्रमुख कलंक वृत्ति है। जिस भारत भूमि पर नारी के सम्मान तथा प्रतिष्ठा के लिए युद्ध तक हुए है वहाँ आज उसी नारी की अस्मिता प्रतिदिन तार-तार हो रही है। आज का युवा संत दरियाव की वाणी को अपने जीवन में उतार कर उसी के अनुरूप आचरण कर नारी को सम्मान की दृष्टि से देखें तो नारी पर होने वालें अत्याचार एवं अपराध नगण्य होंगे।

संघर्ष की प्रेरणा- संत दरियाव की वाणी में संघर्ष की प्रेरणा संबंधित बहुत सी उक्तियाँ मिलती हैं जो आज के युवाओं को हर कार्य के प्रति निष्ठापूर्वक प्रयत्न करने की प्रेरणा देती हैं। वर्तमान समय में जब युवा अभिप्रेरक वक्ता (मोटिवेशन स्पीकर) को सुनकर अपने लक्ष्य के प्रति उन्मुख होता है वहीं कार्य संत दरियाव की वाणी पूर्व से ही कर रही है। संत दरियाव चींटी का उदाहरण देकर कहते हैं कि एक चींटी को कितनी ही बाधा आ जाए लेकिन वह सदैव अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्रयत्नशील रहती है, वह हार नहीं मानती है, उसी प्रकार आज के युवाओं को भी जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो तब तक संघर्षरत रहना चाहिए, यथा-

साँख जोग पपील गति, बिघन पड़ै बहु आय।/ बावल लागै गिर पड़ै, मंज़िल न पहुँचे जाय।।14

इसी प्रकार संत दरियाव संघर्षरत व्यक्ति की विशेषता बताते हैं कि संघर्षरत व्यक्ति कभी हार नहीं मानता है-

सूर बीर साँची दसा, कबहुँ न माने हार।/ अणी मिलै आगे धसै, सनमुख झेलै सार।।15

अत: कहा जा सकता है कि आज की युवा पीढ़ी के लिए संघर्ष प्रेरणा का यह संत दरियाव का उपदेश प्रासंगिक ही है। स्वतंत्रता का समर्थन- संत दरियाव अपनी वाणी में मनुष्य की स्वतंत्रता तथा स्वयं अपने मार्ग पर चलने का उपदेश देते हैं जो वर्तमान में प्रासंगिक है। आज का समाज एक दूसरे की नकल कर झूठी भोग विलासिता तथा दिखावे में विश्वास करता है, ऐसे समय में जब संत दरियाव व्यक्ति स्वयं के बनाएँ मार्ग पर चलने का उपदेश देते है तो बहुत ही प्रासंगिक कहा जाएगा, यथा- मच्छी पंछी साध का, दरिया मारग नाहिं।

अपनी इच्छा से चलैं, हुकम धनी के माहिं।। 16

सत्य वचन का उपदेश:- नैतिक धरातल पर श्रेष्ठ जीवन के निर्माण हेतु सत्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है। आज के समय में झूठ बोलना किसी भी व्यक्ति के लिए एक सामान्य बात है और व्यक्ति उसे जीवन का अंग स्वीकार कर चुका है। ऐसे में संत दरियाव का यह उपदेश की व्यक्ति को सत्यनिष्ठ होना चाहिए, आज के युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत ही कहा जा सकता है, यथा- साध सूर का एक अंग, मना न भावै झूठ। / साध न छाँड़ै राम को, रन में फिरै न पूठ।।17

व्यवहारिकता पर बल- वर्तमान शिक्षा व्यवस्था केवल पुस्तकीय ज्ञान के कारण व्यवहारिक धरातल पर निम्न उपयोगी रह गई है। ज्ञानाश्रयी काव्य धारा के संत कवि व्यवहारिकता पर बल देते हुए आत्मानुभूति को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। संत दरियाव अपनी वाणी में मात्र पुस्तकीय ज्ञान को मिथ्या कहकर उसे निम्न माना है तथा उसे बाहर से ऊजला तथा भीतर से काली रात के समान बताया है, जो कि वर्तमान युवाओं के लिए प्रेरणादायक कहा जा सकता है- सीखत ज्ञानी ज्ञान गम, करै ब्रह्म की बात। / दरिया बाहर चाँदना, भीतर काली रात।।18

अत: वर्तमान युवा शक्ति से अपेक्षित है कि ज्ञान का उपयोग व्यवहारिक धरातल पर कर जागरूक सशक्त राष्ट्र निर्माण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करें।

संयम- आत्म संयम पर उपदेश भारतीय परंपरा में पूर्व से चले आ रहे है लेकिन हर संत-पंथ में उसे अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है। संत दरियाव की वाणी में भी संयम पर वर्तमान प्रासंगिकता युक्त उपदेश मिलते है, यथा- काम क्रोध हत्या पर नास। / सुपना माहीं नर्क निवास।।19

वर्तमान में देश की अधिकतर जनसंख्या युवा शक्ति है, जो देश का भविष्य और कर्णधार है। युवा शक्ति अपनी ऊर्जा का सकारात्मक प्रयोग कर देश को विश्व पटल पर उन्नति के शिखर पर पहुँचा सकती है। राजनैतिक, आर्थिक, शिक्षा एवं समाज संबंधी समस्याओं का समाधान कर युवा राष्ट्रोत्थान में सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित कर सकता है, आवश्यकता है केवल उस युवा शक्ति को सही दिशा प्रदत्त करने की, जिसमें समस्त संत साहित्य तथा संत दरियाव की वाणी आदर्श सहायक सिद्ध हो सकती है। संत दरियाव की शिक्षा को जीवन में उताकर व्यक्ति अपने जीवन चरित्र को उज्ज्वल बना सकता है। स्वामी विवेकानंद का भी मानना है कि व्यक्ति का उज्ज्वल व्यक्तित्व चरित्र से होता है, कपड़ों से नहीं। जिस राष्ट्र का चरित्र सत्य, संयम, शिल जैसे सद्गुणों से अभिहित होंगा वह राष्ट्र अवश्य ही विश्व गुरु बनेगा। नारी के प्रति सम्मान भाव, आपसी समन्वय आदि भाव सामाजिक उत्थान के सोपान बनेंगे। युवाओं की ज्ञानात्मक शक्ति मानव कल्याण की पोषक बनेगी। यह बदलाव युवा वर्ग की सोच में बदलाव से ही संभव है। पाश्चात्य सभ्यता के निरंतर अंधानुकरण ने भारतीय संस्कृति के मूल मानकों के अस्तित्व को संकट में डाल दिया है। समाज युवाओं को आगे बढ़ने की प्रेरणा तो देता है लेकिन भारतीय मूल्यों के अनुरूप सही दिशा निर्देशन नहीं हो पा रहा है। संत काव्य तथा संत दरियाव की वाणी इसी दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणास्रोत है जो कि जीवन में सही-ग़लत, अच्छे-बुरे की पहचान में सहायक सिद्ध होती है।

000

संदर्भ-

1. दरिया साहब (मारवाड़ वाले) बानी और जीवन चरित, वेलवेडियर छापाखाना, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण, 1922, सुमिरन का अंग, पृष्ठ 8, 31, 2. वहीं, पारस का अंग, पृष्ठ 33, 3, 3. वहीं, मिश्रित अंग, पृष्ठ 41, 48, 4. वहीं, हंस उदास का अंग, पृष्ठ 24, 8, 5. वहीं, सुमिरन का अंग, पृष्ठ 10, 37, 6. वहीं, उपदेश का अंग, पृष्ठ 31, 11, 7. वहीं, उपदेश का अंग, पृष्ठ 30, 7, 8. वहीं, सतगुर का अंग, पृष्ठ 4, 36, 9. वहीं, मिश्रित अंग, पृष्ठ 43, 64, 10. वहीं, मिश्रित अंग, पृष्ठ 40, 35, 11. वहीं, मिश्रित अंग, पृष्ठ 43, 61, 12. वहीं, मिश्रित अंग, पृष्ठ 43, 63, 13. वहीं, मिश्रित अंग, पृष्ठ 43, 62, 14. वहीं, भेष का अंग, पृष्ठ 36, 27, 15. वहीं, सूर का अंग, पृष्ठ 14, 25, 16. वहीं, उपदेश का अंग, पृष्ठ 32, 28, 17. वहीं, सूर का अंग, पृष्ठ 14, 16, 18. वहीं, साध का अंग, पृष्ठ 26, 9, 19. वहीं, सुपने का अंग, पृष्ठ 27, 12

(शोध आलेख)

कुबेरनाथ राय के निबंधों में वर्णित राम

शोध लेखक : सुजाता कुमारी

सुजाता कुमारी
पीएचडी शोधार्थी
हिन्दी विभाग,
तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारूर, 610005

भूमिका : कुबेरनाथ राय हिन्दी साहित्य के निबंध विधा के एक मज़बूत स्तम्भ के रूप में दिखाई देते हैं। जिन्होंने अपनी लेखन कला से इस विधा को मात्र समृद्ध हीं नहीं किया बल्कि उसमें कई नए प्रयोग भी किये। उन्होंने संस्कृति, सभ्यता, प्रकृति से लेकर देश-विदेश के साहित्य पर लिखा। उन्होंने ऐतिहासिक, दार्शनिक आदि कई दृष्टियों से राम के चरित्र का विश्लेषण किया है। भारतीयता के मूल में उन्होंने राम के 'चरित्र' को रखा। राम पर जब उन्होंने निबंध लिखा तब राम विवाद और विचार दोनों के हीं केंद्रबिंदु के रूप में विराजमान थे। राम के चरित्र से वे ख़ूब सम्मोहित थे, यह उनके निबंधों को पढ़ने से पता चलता है। अपनी लालित्यमयी बौद्धिकता से उन्होंने राम पर लिखे गए निबंध को और भी ख़ास बना दिया है। इस लेख में उनके चुनिंदा निबंधों में वर्णित राम का वर्णन है। उनके द्वारा राम को आधार बनाकर लिखे गए निबंध संग्रह हैं- 'महाकवि की तर्जनी', 'त्रेता का वृहत्साम' और 'रामायण महातीर्थम'। कई और संग्रहों में भी राम के विषय में छिट-पुट वर्णन मिलता है। यथा- (गन्धमादन - राघव: करुणो रस:)।

बीज शब्द : कुबेरनाथ राय, राम, भारतीय संस्कृति, निर्वासन, करुणा

शोध आलेख :

भारतीय समाज में 'रामकथा' को सर्वाधिक व्यापक और संकल्प-संवेग मिथकों में गिना जाता है। कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि यह रामकथा – "कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में

वास्तविक इतिहास से अवश्य जुड़ा है। केवल यह वाल्मीकि नामक व्यक्ति की कपोल-कल्पना होती तो इतने विस्तृत भूखंड को प्रत्येक जाति और उपजाति की लोक-स्मृति में इस तरह इसका दख़ल सम्भव नहीं होता। यह तो हुई इसके विस्तार की बात। उदातत्ता और गहराई की दृष्टि से भी विचार करें तो पता चलेगा कि रामकथा भारतीय मनीषा का एक अत्यंत विमिश्र उत्पादन है। स्थूल इतिहास के रूप में यह आर्यों की दो सांस्कृतिक धाराओं आदिम और नव्य की संघर्ष-गाथा है।"1 वे मानते हैं कि जहाँ रावण आदिम आर्यत्व का प्रतिनिधि है और प्रजापति, वैश्वानर अग्नि के उपासक हैं। वहीं रामचंद्र उत्तरवैदिक संस्कृति के, नव्य आर्यत्व के और किरात-निषाद-द्रविड़ से संयुक्त दीक्षित आर्यत्व के प्रतिनिधि हैं।

रामकथा में दाम्पत्य प्रेम की गाथा भी वर्णित है जिसे रवीन्द्रनाथ 'पारिवारिक जीवन का महाकाव्य' कहा करते थे। इस तरह के दाम्पत्य का उल्लेख पहले हीं ब्राह्मण-आरण्यक ग्रंथों में हो चुका है, जहाँ काम और क्रतु (यज्ञ) के प्रमूल्यों का प्रभाव देखने को मिलता है। ब्राह्मण ग्रंथों में पत्नी हर प्रकार के यज्ञ में आवश्यक है। इस ग्रंथ की भाषा में कहा जाए तो पत्नी यज्ञ की आधी जंघा है। भारतीय समाज के पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर अगर दृष्टिपात किया जाए तो उस पर रामकथा का सर्वाधिक प्रभाव दिखाई देता है। कुबेरनाथ राय यह मानते हैं कि रामकथा पर यह प्रभाव ब्राह्मण-आरण्यक संस्कृति की शीलचारिकी से सीधे-सीधे उतारे गए हैं। जिन लोगों ने रामकथा या मिथ्या कहा उन जैसों के लिए हीं कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि – "यों रामावतार को ऐतिहासिक मानने का एकमात्र प्रमाण समस्त दक्षिण एशियाव्यापी, सम्प्रदायनिरपेक्ष, नस्लनिरपेक्ष, प्रबल लोक-विश्वास और लोकानुश्रुति है और यह कम मजबूत दस्तावेज नहीं। सारी घटनाएँ मात्र कल्पना-आश्रित होतीं तो लोक-अनुस्मृति की इतनी गहराई में जाकर प्रतिष्ठित नहीं हो पातीं। यह कथा हिन्दू-जैन-बौद्ध, ब्राह्मण-अब्राह्मण, आर्य-आर्येतर, भारतीय-वृहत्तर भारतीय, जम्बूद्वीप-द्वीपान्तर भारत, सर्वत्र लोक- विश्वास का अंग बनकर प्रतिष्ठित है, तो घटना की केन्द्रीय आकृति मिथ्या नहीं हो सकती। इसका वर्तमान रूप मिथकीय अलंकरण ले चुका है। परन्तु सत्य की मजबूत काठी नीचे अवश्य वर्तमान है। अन्यथा यह दीर्घजीवी नहीं हो पाती।"2

भारतीयता का उल्लेख करते हुए उसकी सार्थकता को समझाने के लिए कुबेरनाथ राय ने तीन शब्दों का जिक्र किया है। 1. ॐ 2.शिव और 3.राम। राम शब्द जनमानस के बहुत हीं क़रीब है। शिव देवता हैं या बाबा हैं। लेकिन 'राम' भाई है, बेटा है, पति है, सबकुछ है। यह भारतीय संस्कृति के जन-जन और कण-कण में बसा हुआ है। 'राम' शब्द का मर्म जब हम जान लेते हैं तो समझिए भारतीयता के आदर्श रूप को भी हम जान लेते हैं। राम एक तरीक़े से मनुष्यत्व की चरम सीमा है। सार्थक दृष्टि से भारतीयता क्षुद्र, संकीर्ण राष्ट्रीयता के दम्भ से अलग है। पूर्ण रूप से भारतीय बनने का अर्थ है। राम जैसा बनना। आज के समय में निर्वासन स्थायी भाव है। यह निर्वासन सिर्फ़ साहित्य तक हीं सीमित नहीं है बल्कि सम्पूर्ण विश्व में लोग इस निर्वासन को भोग रहें हैं। लेकिन अलग-अलग देशों में निर्वासन की विधा अलग-अलग है। राम का व्यक्तित्व अनासक्ति या स्व की तटस्थता से है। वहीं आज का मनुष्य अपने आप को स्व की कोटर में हीं बंद कर लिया है, जिससे उसकी प्रतिबद्धता किसी से जुड़ी हुई नहीं है। चाहे वह देश हो, राष्ट्र, समाज, परिवार, प्रेम, दया आदि से वह कटकर हीं जीवन व्यतीत करना चाहता है। हम निर्वासन या अकेलापन को शाप की दृष्टि से नहीं देखते बल्कि यह शाप तब बन जाता है जब इसमें अजनबीपन जुड़ जाता है।

हमारा विश्वास Democracy में हो या Totalitarian पद्धति में, हम चाहे सोशलिस्ट स्टेट में रहें या Communism में, हमें हर हालत में नागरिक ईमानदार हीं चाहिए, अच्छा भाई, अच्छा बेटा और अच्छा पति चाहिए। अब भले ही राजनीतिक व्यवस्था कुछ भी हो लेकिन अर्थव्यवस्था बदलने से यह आवश्यकता बदल नहीं जाती। इन सब गुणों का समाहार हमें राम में दिखाई देता है, इसलिए हमारे आदर्श वहीं है। वे ही पूर्णावतार हैं। उन्हें यह मानना हमारी ऐतिहासिक आवश्यकता भी है।

वैष्णव सम्प्रदाय यह मानता है कि परमात्मा एक निर्गुण सत्ता है, जो नित्य और ध्रुव है। और विश्व-प्रपंच से परे हैं। दूसरी सत्ता यह है कि जो अणु-अणु में है वह विश्वात्मा है। तीसरी सत्ता है, पुरुषोत्तम जिसे ईसाई Personal God या सगुण पुरुष कहते हैं। यही मनुष्य जाति पर करुणा करने के लिए अवतरित होते हैं। वह आकृति और देह को धारण करके मनुष्य रूप में धरती पर आता है। कुबेरनाथ राय लिखते हैं कि- "अवतार में मूल बात है ईश्वर का मानुषीकरण। ईश्वर द्वारा 'मानुषी चर्या' का धारण। ईश्वर द्वारा मनुष्य की सीमाओं का वरण। और यह मानुषी सीमाओं का वरण चरमरूप में रामचंद्र ही करते हैं। आदि से अंत तक अपनी मानुषी चर्या का क्षणभर के लिए भी परित्याग नहीं करते, कहीं भी अलौकिक शक्ति, अद्‌भुत अतिमानवीय ईश्वरीय शक्ति के प्रदर्शन द्वारा police action की तरह, सुदर्शन चक्र मंगाकर काम नहीं करते, सब कुछ को सहज मानुषी ढंग से विकसित होने देते हैं और इस कठोर मानुषी जीवन की सीमाओं के भीतर, ईश्वर की दिव्यता का चरम रूप उद्‌घाटित कर जाते हैं अत: 'अवतारत्व' उनमें पूर्णत: शतप्रतिशत प्रतिष्ठित हो जाता है।3

उनका मानना था कि आज के भौतिकवादी युग में जहाँ पाश्चात्य संस्कृति के आकर्षण में इच्छा शक्ति उन्मत्त होती जा रही है, वैसे समय में हमें एक ऐसे आदर्श चाहिए जो संयमी हो, जिसमें पुरुषार्थ हो। और ऐसे हैं श्री रामचंद्र। वे क्रिया शक्ति के प्रतीक हैं। राम का नाम चाहे वह व्यक्ति हो या फिर समाज दोनों के लिए हीं भवसागर को पार कराने वाली नाव है।

रघुगण शब्द की उत्पत्ति को लेकर वे लिखते हैं कि- "मुझे सन्देह है कि यह 'रहूगण' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं। 'रहू' 'रघु' का

ही प्राकृत रूप है। और 'गण' शब्द स्पष्टतः Republic है। अतः रघुओं के गण का यह महा अभियान था। जो कोसल से मिथिला तक पुनः फैल गया। रघुगणों ने स्थानीय विवादों के सहयोग से जिस संस्कृति की नींव डाली वही आज की वर्णाश्रम-संस्कृति या हिन्दूसंस्कृति है। वही भारतीय संस्कृति का प्रधान चेहरा भी है। इसी वंश का सर्वश्रेष्ठ पुरुष था 'रामचन्द्र' और इसी पुरुष की जीवनगाथा हमारा राष्ट्रीय महाकाव्य है।"4

अतः जब हम कहते हैं कि रामचन्द्र पूर्णावतार हैं तो हमारा तात्पर्य वाल्मीकि के राम और 'अध्यात्म रामायण' के राम के संयुक्त रूप से है। वाल्मीकि की रामायण रस तक और शीलाचारिक पक्ष को उद्घाटित करती है तो अध्यात्म रामायण उसके आध्यात्मिक या दार्शनिक पक्ष को। यह मेरी बात नहीं। यह गोसाँईं जी की बात है। 'रामत्व' के गूढ़तम मर्म को गोसाँईं जी से ज़्यादा समझने वाला आज तक पैदा नहीं हुआ। और उन्होंने यह निर्णय लिया था कि राम की जो आकृति वे प्रस्तुत करेंगे वह वाल्मीकि और अध्यात्म रामायण की समन्वित छवि होगी और यही छवि 'पूर्णावतार' है। वे भी इसी छवि को पूर्णावतार मानते रहे। रामाख्यमीशं हरिम्। "तो जब मैं राम को पूर्णावतार मानता हूँ तो मेरा तात्पर्य वाल्मीकि की अध्यात्म रामायण के समन्वित 'राम' अर्थात् 'मानस' के 'रामाख्मीशं हरिम्' से ही है। और इसका कारण यह है कि यह 'सत्ता' के तीनों सोपानों, रस, शील और अध्यात्म पर अपनी चरम पूर्णता के साथ प्रतिष्ठित है।"5

तभी तो कहा जाता है कि मनुष्यता जिस सीमा तक जा सकती है, उसका चरमबिंदु राम में प्रतिष्ठित है। वे मनुष्य थे। लेकिन मनुष्यता का वरन उन्होंने उसी सीमा तक किया जहाँ तक शील और करुणा का सम्बंध है। वे लिखते हैं- "राम का जीवन साक्षात् करुण रस है। वे ईश्वर की तरह अनासक्त, तटस्थ और महिमामय हैं, तो मनुष्य की तरह 'धीर, वीर, गम्भीर' है; 'स्निग्ध, श्यामल, करुण' है। जब मैं ऐसा सोचता हूँ तो मेरे मन के अन्य अंधकार को चीरती हुई एक छवि हठात् उगती है और मेरे अन्तर में धीरे-धीरे नील पद्म की तरह प्रस्फुटित होती है। उस नीलोत्पल के कोमल स्पर्श से मेरा अस्तित्व विगलित हो कर फिर वायवीय हो जाता है और हलका-हलका सौरभ बन कर मनोरम पम्पासर के धीर समीरण में लीन हो जाता है। तब राम के द्वारा भोगी गई सारी व्यथा एवं उन के जीवन को सम्पूर्ण करुणा का मैं सहभोगी साक्षी बन जाता हूँ और उस क्षण भर की लघु अवधि में लगता है कि मै भी देवता ही हूँ।"6

रामकथा एक तरह की सविता - कथा है। इसकी प्रकृति सूर्यात्मक है और यह द्यु-मण्डल का काव्य है जो सगुण सृष्टि के विकास का हीं 'आदि' रूप है। यही कारण है कि इसे 'आदिकाव्य' कहा जाता है। इसका अधिदेवता है विष्णु का सवितारूप जो सोम और अग्नि के 'विस्तार' रूपों का आदिबिन्दु है। क्रियाशक्ति प्रधान होने के कारण इसे 'गार्हस्थ्य' का महाकाव्य भी कहा जाता है और इच्छाशक्ति को इसमें दबाकर यवनिका के पीछे धकेल दिया गया है। यह बात धनुर्मंग के अवसर पर ही दिखाई दे देती है। रामचन्द्र ने जब धनुष तोड़ा तो उसके तीन खण्ड हो गए। वह शिव-पिनाक त्रिगुणात्मक प्रकृति का प्रतीक था जो शिव के वाम भाग में रहती है। ऊपरवाला खण्ड ज्ञान-खण्ड था जो व्योम में चला गया। नीचेवाला खण्ड इच्छा-खण्ड था जो पाताल में प्रवेश कर गया। रह गया मध्य-खण्ड जो क्रिया - खण्ड था। उसे ही राम ने धरती पर रख दिया। इस काव्य का आदर्श ही है 'अनासक्त पुरुषार्थ-योग'। यह इसीलिए गृहस्थ धर्म और नागरिक धर्म का महाकाव्य है। गृहस्थ जीवन का सम्पूर्ण वृत्त इसमें उतर आया है। परन्तु यह कथा के मानवीय धरातल के लिए ही युक्तियुक्त है। कथा के अन्दर अर्थ का त्रिपुर है। मानवीय धरातल पर यह अगर इस कथा को देखा जाए तो पारिवारिक शील के आदर्शों की कथा है। कुबेरनाथ राय यह मानते थे कि इन आदर्शों को तुलसीदास ने अपने ग्रंथ में बख़ूबी व्यक्त किया है।

राम के विषय में लिखते हुए उन्होंने अपनी भाषा सधी हुई रखी है यह उनकी ख़ासियत थी कि वे विषय के अनुकूल अपनी भाषा को ढ़ाल लेते थे। वे स्वयं लिखते हैं कि- "रचना के क्षेत्र में एक-एक शब्द शताब्दियों के प्रयोग के बाद एक विशिष्ट अर्थ गरिमा पाता है। नयी उपभाषा में ऐसी अर्थ-गरिमा ले आना कि वह सूर-तुलसी के उत्तराधिकार को वहन कर सके और दूसरी और दूसरी ओर संसार के आधुनिक लेखक के समकक्षता से बात कह सके एक ख़ास बड़ा काम था।"7

अतः हम देखते हैं कि कई दृष्टियों से कुबेरनाथ राय ने राम के विषय पर लिखा है। और यह कथा पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि सभी दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने यह बताने की कोशिश की है कि रामकथा के भीतर एक सारस्वत धारा बहती है जिसे हम भारत वर्ष कहते हैं। उनके लिए राम कोई राजनीतिक तंत्र के रूप में नहीं थे जिसके विषय में लिखकर वाहवाही पायी जाए। उनके लिए राम चिंता का वह विषय थे जिस पर उन्होंने एक-एक वाक्य शोध करके लिखा है। उन्होंने नव्य आर्य के रूप में भी उन्हें देखने की कोशिश की। अनेक विद्वानों ने राम पर लिखा है लेकिन निबंध के क्षेत्र में जिस ढंग से कुबेरनाथ राय ने उन पर लिखा है वह अमूल्य है। उन्हें पढ़ने वाला पाठक उनके शब्दों की गहराई में इस ढंग से डूबता है कि जब उभरता है तो मोती हासिल करके हीं निकलता है।

000

संदर्भ- 1 कुबेरनाथ राय, रामायण महातीर्थम, चौथा संस्करण, 2011, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2 कुबेरनाथ राय, रामायण महातीर्थम, चौथा संस्करण, 2011, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 3 कुबेरनाथ राय, रामायण महातीर्थम, चौथा संस्करण, 2011, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 4 कुबेरनाथ राय, रामायण महातीर्थम, चौथा संस्करण, 2011, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 5 . कुबेरनाथ राय, रामायण महातीर्थम, चौथा संस्करण, 2011, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 6. कुबेरनाथ राय, रामायण महातीर्थम, चौथा संस्करण, 2011, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 7. कुबेरनाथ राय, गन्धमादन, 1972, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

(शोध आलेख)

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारिता एवं गाँधीजी का प्रभाव

शोध लेखक : डॉ. कोमल आहिर

जिन प्रदेशों में आज भी सामंती प्रथा की जकड़न अंगद के पैर की तरह जमी हुई है, पर्दा प्रथा की दीवारों को लाँघना जहाँ आज भी मुश्किल है, उसी उत्तर भारत में गाँधीजी के आह्वान पर हज़ारों की संख्या में औरतें सड़कों पर उतर आईं थीं। इलाहाबाद, लखनऊ, दिल्ली, पंजाब, बिहार, लाहौर और पेशावर की महिलाएँ घर से बाहर निकलीं एवं सार्वजनिक प्रदर्शनों व जुलूसों में शामिल होने लगीं। भले घर की औरतों को बिना घूँघट-बुर्का, पर्दा के सड़कों-गलियों में इससे पहले कभी न उतरते देखने वाली जनता इस परिवर्तन और उत्साह से चकित थी।

गाँधीजी के योगदान से इनकार नहीं किया जा सकता, किन्तु इस तथ्य को भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि जब गाँधीजी ने महिलाओं संबंधी अपने विचार रखे, तब महिलाएँ स्वयं भी अपने गुणों को पहचानने लगी थीं। ऐसा केवल उनकी व्यवसायिक ज़िंदगी-डॉक्टर, शिक्षिका और सामाजिक कार्यकर्ता की तरह ही नहीं, वरन् सार्वजनिक, राजनीतिक जीवन में भी राष्ट्रीय और सुधारवादी आंदोलन में श्रमिक और किसान आंदोलन में उनकी भूमिका को देखा जा सकता है।

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी गाँधीजी के प्रभाव से हुई। 1920 तक गाँधीजी एक गाथापुरुष बन चुके थे। गाँधीजी महिलाओं को इसलिए भी जुटा सके कि उन्हें पुरुषों के रवैये का भी ध्यान था।

गाँधीजी के व्यक्तित्व की ख़ासियत थी कि वे न केवल महिलाओं में विश्वास जगाने में सक्षम थे, वरन् महिलाओं के पति, पिता, पुत्र, भाइयों का भी विश्वास उन्हें प्राप्त था। उनके नैतिक आदर्श इतने ऊँचे थे कि जब महिलाएँ बाहर आकर राजनीति के क्षेत्र में काम करती थी, तो उसके परिवार के सदस्य उनकी सुरक्षा के बारे में निश्चिंत रहते थे। इसका कारण था कि गाँधीजी का ध्यान महिलाओं की जुझारू क्षमता पर पहली बार दक्षिण अफ्रीका में खिंचा था। वहाँ उन्होंने देखा कि भारी संख्या में महिलाएँ उनके राजनीतिक विचारों से प्रभावित होती हैं। उनके नेतृत्व में हुए कई आंदोलनों में महिलाएँ जेल गई, बिना किसी शिकायत के उन्होंने जेल की कठोर सज़ा झेली और खदान श्रमिकों की हड़ताल में शामिल हुई। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आंदोलन में उन्होंने महिलाओं में आत्मत्याग और पीड़ा सहने की अद्भुत क्षमता देखी।

महिलाओं के आत्म-त्यागी एवं बलिदानी स्वभाव के हिमायती गाँधीजी पहले ही व्यक्ति नहीं थे, इससे पहले भी समाज सुधारकों और पुनरुद्धारकों ने इस पर कम ज़ोर नहीं दिया था। समाज-सुधारकों ने महिला के आत्मत्याग को एक जबरदस्ती थोपे कर्मकाण्ड की तरह देखा। पुनरुद्धारकों की सोच थी कि इन कर्मकाण्डों से हिन्दू महिलाओं की छवि गौरवमयी बनती है। गाँधीजी ने नारी के इन गुणों को हिन्दू कर्मकांड से अलग परिभाषित किया। गाँधीजी ने कहा कि यह भारतीय नारीत्व का स्वाभाविक गुण है, क्योंकि उनकी अहम भूमिका माँ की है। गाँधीजी की सोच थी कि गर्भधारण और मातृत्व के अनुभवों से गुज़रने के कारण महिलाएँ शांति और अहिंसा का संदेश फैलाने में ज़्यादा उपयुक्त है। गाँधीजी के अनुसार स्त्री-पुरुष में जैविक गुणों के अंतर के कारण उनकी अलग-अलग भूमिकाएँ हैं और दोनों ही समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। पुरुष

डॉ. कोमल आहिर

कमाकर लाता है और स्त्री घर और बच्चों की देखभाल करती है। यहाँ भी गाँधीजी ने स्त्री के मातृत्व गुणों और स्त्रियों की भूमिका को अलग परिभाषित किया है। गाँधीजी को लगता था कि उनकी अहिंसा की लड़ाई में महिलाएँ उनकी विचारधारा के ज़्यादा नज़दीक हैं क्योंकि उसमें काफी पीड़ा सहना शामिल है और महिलाओं से ज़्यादा बेहतर कुलीन और श्रेष्ठ ढंग से पीड़ा कौन सह सकता है। गाँधीजी की नज़रों में पीड़ा सहने का गुण होना बहुत ज़रूरी है। उनकी नज़रों में "स्वैच्छिक विधवा" आदर्श एक्टिविस्ट थी, क्योंकि उसमें पीड़ा में सुख का रास्ता खोज लिया। उनकी नज़रों में वह सच्ची सती थी न कि वह जो पति की चिंता में जलकर प्राणों की आहुति दे देती थी।

गाँधीजी की व्यक्तिगत छवि संत महात्मा की होने के कारण उनके नेतृत्व में शुरू हुए देश-भक्ति आंदोलन की राजनीतिक और धार्मिक मिली-जुली छवि बनी। उसका क्षेत्र राजनीति से ऊपर उठकर धार्मिक हो गया। देशभक्ति को धर्म माना गया, देश को देवी माँ की संज्ञा दी गई, जिसके लिए बड़े से बड़े बलिदान भी कम थे। गाँधीजी आंदोलनों में महिला भागीदारी के पूर्ण पक्षधर थे। वे महिलाओं की सभाओं में, अपने भाषणों में, आंदोलनों में उनकी भागीदारी अनिवार्य मानते थे और साथ ही यह कहकर प्रेरित करते थे कि देवियों और वीरांगनाओं की तरह आंदोलन में उनकी अपनी अलग भूमिका है और उसमें इस भूमिका को निभाने की शक्ति और हिम्मत भी है। उन्होंने महिलाओं को विश्वास दिलाया कि आंदोलन को उनके महत्त्वपूर्ण योगदान की ज़रूरत है। वे कहते थे कि जब महिलाएँ सत्याग्रह आंदोलन में शामिल होंगी, तभी पुरुष भी आंदोलन में पूरा सहयोग देगा। 85 प्रतिशत भारतीय महिलाएँ निर्धनता और अज्ञान के अंधकार में डूबी हुई हैं। उन्होंने महिला नेताओं से कहा कि उन्हें सामाजिक सुधार, महिला शिक्षा एवं महिला अधिकार के लिए कानून बनाने के लिए काम करना चाहिए, ताकि उन्हें एक बुनियादी अधिकार मिल सके ! उन्होंने कहा कि महिला नेताओं को सीता, द्रौपदी और दमयंती की तरह सात्विक दृढ़ और नियंत्रित होना चाहिए, तभी वह स्त्रियों के भीतर पुरुषों के साथ बराबरी का भाव जगा सकेगी और अपने अधिकारों के प्रति सचेत तथा स्वतंत्रता के प्रति जाग्रत कर सकेंगी।

गाँधीजी के अनुसार बराबरी का यह अर्थ कदापि नहीं था कि महिलाएँ वे सब काम करें, जो पुरुष करते हैं। गाँधीजी की आदर्श दुनिया में स्त्रियों और पुरुषों के अपने स्वभाव व क्षमतानुसार काम के अलग-अलग क्षेत्र निश्चित थे। उन्होंने महिलाओं को "स्वदेशी व्रत" लेने को कहा। वे सारी विदेशी वस्तुओं का परित्याग करें और प्रतिदिन थोड़े समय सूत कातने और खादी पहनने की प्रतिज्ञा करें। खादी प्रभात फेरी निकाली। धरने आदि का आयोजन करने के साथ खादी का प्रचार-प्रसार, चरखा चलाने का प्रशिक्षण, खादी बेचना, शराब बन्दी, देश की स्वाधीनता का प्रचार, सभाएँ करना छुआछूत मिटाने संबंधी उपदेश देना, कांग्रेस की सदस्यता बढ़ाना।

1928 में लतिका ने बंगाल में 'महिला राष्ट्रीय संघ की स्थापना की। बंगाल का पहला महिला संगठन, जो राजनीतिक क्षेत्र में काम करता था। लतिका का महिलाओं के लिए संदेश था "उठो, जागो, अपने देश को अच्छी तरह देखो।" महिलाएँ आंदोलन में तभी सक्रिय हो सकती थीं, जब उन्हें घर के पुरुष सदस्यों का समर्थन प्राप्त हो। इसके लिए ज़रूरी था कि उनके पति, पिता या भाई कांग्रेस या क्रांतिकारी आंदोलन में हों। उनके केंद्र का नाम था - "शांति मंदिर"। यही उनका नेटवर्क था। यहाँ महिलाओं का पढ़ना, लिखना, घरेलू हस्त- कलाएँ, प्राथमिक चिकित्सा, स्वयं- रक्षा करने के साथ स्वाधीनता के महत्त्व को बताया जाता था। लतिका तथा अन्य महिला नेताओं को यह स्पष्ट हो गया था कि महिलाएँ देश के सभी मामले से कटी हुई हैं।

1930 तक आते-आते भारतीय स्त्रियों ने परदा उठाकर फेंक दिया और राष्ट्र के काम के लिए भारी संख्या में बाहर आईं। गाँधीजी ने सार्वजनिक गतिविधियों की सहभागिता के औचित्य को सिद्ध करते हुए उसे विस्तार दिया, ताकि वे वर्ग एवं सांस्कृतिक बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ें। 1930 के दशक में हजारों की संख्या में महिलाएँ, "सविनय अवज्ञा" और "असहयोग आंदोलन" में भाग ले रही थीं। 'ऑल इंडिया विमेंस क्रान्फ्रेंस' को भी अपने उच्चवर्गीय दायरे से बाहर आना पड़ा। उन्होंने ग्रामीण किसान और ग़रीब महिलाओं के बीच काम करना शुरू किया। अब यह संस्था एक एक्टिविस्ट संस्था बन गई थी और इसकी 1931 में अध्यक्षा सरोजिनी नायडू बनी। इसके पहले तक अध्यक्षा महारानियाँ होती थीं।

सन् 1940 के दशक में क्षितिज पर स्वाधीनता का इंद्रधनुष दिखाई रहा था और शायद यही कारण है कि स्त्रियों का आंदोलन पूरी तरह स्वाधीनता संग्राम में तब्दील हो गया और नारी मुक्ति के मुद्दे को भारत की स्वाधीनता के साथ जोड़कर देखा जाने लगा। माना जाने लगा कि स्वाधीनता के साथ ही पुरुष एवं स्त्री के मध्य मौजूदा असमानताएँ दूर हो जाएँगी तथा स्वतंत्र भारत में सबकुछ ठीक हो जाएगा। सन 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। हजारों महिलाएँ भूमिगत हुई। समानान्तर सरकारें बनाने में सहायक रहीं, रेल की पटरी उखाड़ने से लेकर कचहरियों पर झण्डा फहराने में अग्रणी रहीं। इस दौरान लाठी-गोली, बलात्कार तक की भारी संख्या में औरतें शिकार हुईं। कईयों की हत्याएँ की गई। अरुणा आसफ अली ने ग्वालिया टैंक मुंबई में झण्डा फहराते हुए "अंग्रेज़ों भारत छोड़ो" तथा "करो या मरो " की उद्घोषणा की, तो डॉ. उषा मेहता तथा उनके साथियों ने मुंबई में समानान्तर रेडियो स्टेशन चलाया। भारी संख्या में किसान महिलाओं ने भूमिकारों और भूस्वामियों के अधिकारों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई। उस आंदोलन में "जेल भरो आंदोलन" भी शामिल था। 'वर्धा' सेवाग्राम में महिला आश्रम की संचालिका रमाबेन रूइया का कहना था कि - "सन् 1942 में सेवाग्राम में गाँधीजी ने उन सभी महिलाओं से, जो जेल जाने वाली थीं, उन्हें अपने पिता, पति, भाई से लिखित सहमति-पत्र मंगवाया था। "जिन

लोगों के पास सहमति पत्र था, वे ही जेल भरो आंदोलन में शामिल हो सकती थीं।"

इसी तरह कमला देसिकन, जो 15 वर्ष की आयु में आंध्र प्रदेश से भागकर वर्धा सेवाग्राम गाँधीजी के स्वाधीनता आंदोलन में शामिल होने के लिए आई थीं, जो बाद में डॉ.सुशीला नैय्यर (प्रथम स्वास्थ्य मंत्री) की सेक्रेटरी बनीं और आजीवन कस्तूरबा हॉस्पिटल से जुड़ी रहीं। उनका कहना था - "गाँधीजी ने मुझे सेवाग्राम आश्रम में रहने के लिए मेरे पिता से अनुमति पत्र लिखवाया था। पिता की आज्ञा के बाद ही मैं सेवाग्राम आश्रम में रह सकी।"

गाँधीजी ने महिलाओं की आर्थिक स्वतंत्रता के बारे में स्पष्ट रूप से कभी कुछ नहीं कहा। गाँधी जी के अनुसार स्त्री त्याग और पीडा की प्रतिमा है। सूत कातना और वस्त्र बुनना उसके लिए धार्मिक कार्य थे और महिलाओं के स्वभाव के अनुकूल थे। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को नई पितृसत्ता तले बाध्य रहने को मान्यता मिली। राष्ट्रवादियों को महिलाओं की मुक्ति तथा उत्थान से कोई सरोकार नहीं था। इसके विपरीत महिलाओं की पत्नी, पुत्री और माँ की भूमिकाओं की पुष्टि हुई। केवल राष्ट्रीय आंदोलन की आवश्यकताओं को देखते हुए उसे थोड़ा बहुत विस्तार मिल गया। इस तरह पारंपरिक इतिहास में महिलाओं की संख्या थोड़ी और बढ़ गई। 'राष्ट्रीयता के इतिहास में महिलाओं का योगदान केवल उनकी पारम्परिक भूमिका का विस्तार मात्र है। राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं का कहीं कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखता।

000

संदर्भ-

(१) महात्मा गाँधी भारत के विरल चरित्र – डॉ. रामानुजाचार्य, (२) भारत का जननायक : महात्मा गाँधी – डॉ.रामशरण गुप्त, (३) स्वाधीन भारत में गाँधी का प्रदान – डॉ. रोमिला शर्मा, (४) स्वाधीन भारत में महिलाओं की भूमिका – डॉ. रामेश्वरी तिवारी, (५) राष्ट्रीय आंदोलन में सेनानियों का अवदान

पुस्तक समीक्षा

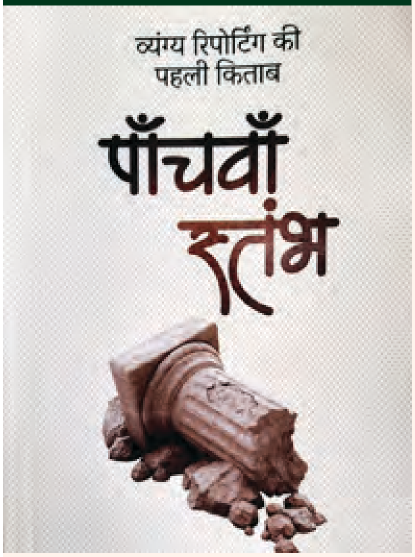

(व्यंग्य संग्रह)

पाँचवाँ स्तंभ

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो

लेखक : जयजीत ज्योति अकलेचा

प्रकाशक : मेंड्रेक पब्लिकेशन भोपाल

युवा पत्रकार और व्यंग्यकार जयजीत ज्योति अकलेचा की पहली किताब 'पाँचवा स्तम्भ' है जयजीत ने व्यंग्य विधा की अब तक कि परंपराओं को नए और अपने तौर तरीकों से आगे बढ़ाने का साहस किया है। यद्यपि कई बार अख़बारी लेखन को साहित्यिक पत्रकारिता भी कहा गया है। मुझे याद आता है शरदजी के कॉलम लेखन को साहित्यिक पत्रकारिता कहा गया था और उन्हें पद्मश्री भी पत्रकारिता वर्ग में प्रदान किया गया। ख़बरों और अख़बारों की सुर्खियों पर ही ज़्यादातर कॉलमी व्यंग्य रचनाएँ आ रही हैं जो तात्कालिक संदर्भों के होने से पाठकों को आकर्षित तो करती ही हैं पर संपादकों को भी उन्हें प्रकाशित करने में सुविधा हो जाती है।

थोक में लिखी जा रही ऐसी रचनाओं से इतर जयजीत अकलेचा की रचनाएँ इसलिए अलग हो जाती हैं कि पत्रकार होने के कारण ख़बरों और सुर्खियों के भीतर उतरकर उसकी आत्मा तक पहुँच जाने की योग्यता उनमें पेशागत रूप से है। दूसरे वे जोखिम लेकर अपनी रचनाओं का प्रारूप बदलकर विधा के विकास में अगला महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ा देते हैं।

जयजीत की किताब 'पाँचवां स्तम्भ' की सबसे बड़ी ख़ूबी यही है जैसा कि ब्लर्ब में चर्चित व्यंग्यकार आलोक पुराणिक ने कहा भी है, इनमें व्यंग्य विधा में नए प्रयोगों का साहस सचमुच स्पष्टत: परिलक्षित होता है। आवरण पर इसे व्यंग्य रिपोर्टिंग की पहली किताब कहा गया है। निसंदेह व्यंग्य रिपोर्टिंग पहले भी इक्का-दुक्का देखने पढ़ने को मिलती रही है। जयजीत के अलावा भी कई पूर्ववर्ती लेखकों ने इस प्रारूप को आजमाया है। जयजीत स्वयं 'हिन्दी सेटायर' जैसे डिजिटल मंच पर इस तरह लिखते रहे हैं। पुस्तक में ज़्यादातर तात्कालिक ख़बरों और प्रसंगों पर लेख, रिपोर्टिंग क़िस्से तो हैं ही साथ ही 'इंटरव्यू' प्रारूप में भी बड़ी दिलचस्प रचनाएँ देने में वे सफल हुए हैं।

मैं इस पुस्तक की हर पंक्ति से ध्यानपूर्वक गुज़रा हूँ और कह सकता हूँ कि हर शब्द और वाक्य पाठक को रोमांचित करता है और बहुत प्रभावी रूप से बाँधे रखता है। पहले सोच रहा था कुछ पंक्तियों के उदाहरण देकर अपनी बात को पुष्टि दूँ किन्तु यह बिल्कुल भी सम्भव नहीं। हर पंक्ति देकर समीक्षा को लंबा खींचना न सिर्फ लेखक की प्रतिभा के प्रति बल्कि संभावित पाठकों की जिज्ञासा के प्रति भी ग़लत होगा। पाठक इस किताब को मँगवाकर अवश्य पढ़ें। लेखक की गहरी व्यंग्य समझ और रोचक, मारक प्रस्तुति के कायल हुए बगैर नहीं रहेंगे।

000

ब्रजेश कानूनगो, 503, गोयल रिजेंसी, चमेली पार्क, इंदौर 452018

मोबाइल- 9893944294

(शोध आलेख)

मास मीडिया का समाज में प्रभाव

शोध लेखक : पटेल धाराबेन पी.
मार्गदर्शक : प्रो डॉ. बी.एल. पवार

प्रस्तावना

वर्तमान समय में मीडिया की उपयोगिता, महत्त्व एवं भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। कोई भी समाज, सरकार, वर्ग, संस्था, समूह व्यक्ति मीडिया की उपेक्षा कर आगे नहीं बढ़ सकता। आज के जीवन में मीडिया एक अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। अगर हम देखें कि समाज किसे कहते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि लोगों की भीड़ या असंबद्ध मनुष्य को हम समाज नहीं कह सकते हैं। समाज का अर्थ होता है संबंधों का परस्पर ताना-बाना, जिसमें विवेकवान और विचारशील मनुष्यों वाले समुदायों का अस्तित्व होता है।

मीडिया एक समग्र तंत्र है जिसमें प्रिंटिंग प्रेस, पत्रकार, इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, रेडियो, सिनेमा, इंटरनेट आदि सूचना के माध्यम सम्मिलित होते हैं। अगर समाज में मीडिया की भूमिका की बात करें, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि समाज में मीडिया प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से क्या योगदान दे रहा है एवं उसके उत्तरदायित्वों के निर्वहन के दौरान समाज पर उसका क्या सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

मास मीडिया के प्रकार

लोक जन संचार (लोक मीडिया)

पारंपरिक मीडिया या पारंपरिक मीडिया संचार को बढ़ाने तथा किसी समाज के ज़मीनी स्तर पर संवाद को बढ़ाने का एक साधारण उपकरण है। कठपुतली के माध्यम से होने वाले प्रदर्शन लोक मीडिया (जन संचार) का एक लोकप्रिय तरीका है जो मनोरंजक तथा सूचनापरक होता है। प्राचीन हिन्दू दार्शनिकों ने कठपुतलियों के संचालकों को बहुत महत्त्व दिया है उन्हें ईश्वर को एक कठपुतली संचालक माना और सम्पूर्ण विश्व को कठपुतली का एक रंगमंच माना।

नुक्कड़ नाटक जनसंचार का एक और माध्यम है जिसका प्रयोग व्यापक रूप से सामाजिक राजनीतिक संदर्भों का प्रचार करने और सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। नुक्कड़ नाटक छोटे, सीधे, मुखर तथा अतिरिक्त रूप से अभिव्यक्ति प्रधान होते हैं क्योंकि उनका प्रदर्शन उन स्थानों पर होता है जहाँ भारी भीड़ होती है उनको सुदृढ़ समाज सुधारों का प्रचार करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है और भीड़ को किसी ख़ास मुद्दे पर एकजुट करने के लिए उनको सशक्त माध्यम माना जाता है।

प्रिंट मीडिया

प्रिंट मीडिया के अन्तर्गत मुद्रित सामग्री के माध्यम से जन संचार शामिल है। इसके अन्तर्गत

पटेल धाराबेन पी.
हेमचंद्राचार्य
उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय,
पाटन – २०२२

समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, बुकलेट, त्रय मासिक, अर्धवार्षिक, वार्षिक पत्रिकाएँ आदि आती हैं (मुद्रित शब्द ज्ञान, सूचना तथा न्यूज स्टोरी /घटना पर केन्द्रित समाचार) की शुरुआत हुई उसके बाद कलकत्ता (अब कोलकाता) में और देश के अन्य प्रान्तों में समुद्रवर्ती शहरों से होते हुए उसका विस्तार हुआ।

प्रिंट मीडिया की एक विशेषता है कि विस्तृत समाचार प्रसारित करते हैं और मुद्दों पर गंभीर चर्चा करते हैं भारत में किसी अन्य मीडिया की तुलना में प्रिंट मीडिया ने विभिन्न प्रकार के लेखों के माध्यम से अत्यधिक वैविध्य के साथ सूचना प्रदान की जाती है। प्रिंट मीडिया की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उन्हें केवल साक्षर ही पढ़ सकते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया

सामाजिक संवाद तथा प्रचार का एक अन्य अत्यधिक लोकप्रिय माध्यम है इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जो प्रिंट मीडिया के साथ विस्तृत हुआ। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विषयवस्तु को श्रोताओं तक प्रसारित करने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का जन्म रेडियो के आविष्कार के साथ हुआ जब एक आवाज़ ने दूसरे महाद्वीप के लाखों लोगों को रोमांचित कर दिया जो इस आवाज़ को सुनने के लिए लालायित थे।

समाज में मीडिया के प्रभाव

मीडिया मनुष्य के मस्तिष्क को तथा समाज में हमारे व्यवहार और कार्य करने के तरीके को प्रभावित करता है। इस प्रभाव का स्तर कितना होगा यह मीडिया की उपलब्धता एवं उसकी व्यापकता पर निर्भर करता है। सभी पारंपरिक जनसंचार माध्यमों का अभी भी हमारे जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। कभी पुस्तकों का सर्वाधिक प्रभाव इसलिए पड़ता था क्योंकि वे लोगों के बीच समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो या टेलीविजन से पहले आ गई। समाचार पत्र और पत्रिकाओं का प्रभाव उनके विकास के साथ-साथ अधिक होने लगा। आवाज़ की रिकॉर्डिंग और फिल्मों का प्रभाव था और अभी भी है। रेडियो और उसके बाद टेलीविजन अत्यधिक प्रभावशाली रहे। 20वीं "शताब्दी की समाप्ति के बाद टेलीविजन ने हमारे सामने विज्ञानों की अनेक छवियों तथा मार्केटिंग, लोगों की कठिनाइयों और विश्वासों का, कामुकता तथा हिंसा, जानी मानी हस्तियों और बहुत सी ऐसी चीज़ों के बारे में जानकारी और तस्वीरें पेश की। नवीन एवं प्रभावशाली मीडिया वितरण चैनल 21वीं "शताब्दी में हमारे सामने आए। वर्ल्ड वाइड वेब (विश्व व्यापी वेब) का इंटरनेट के माध्यम से प्रसार के द्वारा हम रोज़ ही ब्लॉग, विकी, सोशल नेटवर्क आभासी दुनिया तथा अनेक प्रकार से जानकारी एवं विचारों का आदान प्रदान हो रहा है।

मीडिया हमारे जीवन के लगभग हर क्षेत्र में फैल गया है। चाहे, वह टेलीविजन समाचार हों, वेब सामग्री हो, पुस्तकें या अन्य कोई चीज़ जो भी सूचना हम मीडिया से प्राप्त करते हैं उसका हर व्यक्ति के दैनिक जीवन में असर पड़ता है। इसकी व्यापकता का प्रभाव तो पड़ना ही है। समाज पर भी मीडिया का प्रभाव सामाजिक और राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में होने लगता है। इन दोनों में ऐसी अनेक बातें हैं और मीडिया इन दोनों क्षेत्रों के प्रत्येक हिस्से की बात करता है। मीडिया का समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार का प्रभाव पड़ता है।

समाज पर मीडिया के सकारात्मक प्रभाव है सूचना की उपलब्धता, शिक्षा के विषय में नई जानकारी, सोशल मीडिया की स्वतंत्र प्रकृति, मीडिया बच्चों की शिक्षा एवं उनके विकास में एक सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। यह विश्व में होने वाली गतिविधियों एवं घटनाओं के विषय में ताजा जानकारी एवं समाचार देता है।

सारांश - मीडिया समाज को अनेक प्रकार से नेतृत्व प्रदान करता है। इससे समाज की विचारधारा प्रभावित होती है। मीडिया को प्रेरक की भूमिका में भी उपस्थित होना चाहिए जिससे समाज एवं सरकारों को प्रेरणा व मार्गदर्शन प्राप्त हो। मीडिया समाज के विभिन्न वर्गों के हितों का रक्षक भी होता है। वह समाज की नीति, परंपराओं, मान्यताओं तथा सभ्यता एवं संस्कृति के प्रहरी के रूप में भी भूमिका निभाता है। पूरे विश्व में घटित विभिन्न घटनाओं की जानकारी समाज के विभिन्न वर्गों को मीडिया के माध्यम से ही मिलती है। अत: उसे सूचनाएँ निष्पक्ष रूप से सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करनी चाहिए।

मीडिया अपनी ख़बरों द्वारा समाज के असंतुलन एवं संतुलन में भी बड़ी भूमिका निभाता है। मीडिया अपनी भूमिका द्वारा समाज में शांति, सौहार्द, समरसता और सौजन्य की भावना विकसित कर सकता है। सामाजिक तनाव, संघर्ष, मतभेद, युद्ध एवं दंगों के समय मीडिया को बहुत ही संयमित तरीके से कार्य करना चाहिए। राष्ट्र के प्रति भक्ति एवं एकता की भावना को उभरने में भी मीडिया की अहम भूमिका होती है। शहीदों के सम्मान में प्रेरक उत्साहवर्द्धक ख़बरों के प्रसारण में मीडिया को बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना चाहिए। मीडिया विभिन्न सामाजिक कार्यों द्वारा समाज सेवक की भूमिका भी निभा सकता है। भूकंप, बाढ़ या अन्य प्राकृतिक या मानवकृत आपदाओं के समय जनसहयोग उपलब्ध कराकर मानवता की बहुत बड़ी सेवा कर सकता है। मीडिया को सद्प्रवृत्तियों के अभिवर्द्धन हेतु भी आगे आना चाहिए।

000

संदर्भ- जोशी शालिनी, जोशी शिव प्रसाद 'वेब पत्रकारिता नया मीडिया नये रूझान राधाकृष्ण पब्लिकेशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2012, डॉ. दयानन्द गौतम "मीडिया साहित्य, समाज एवं सरोकार" अक्षरधाम प्रकाशन करनाल रोड कैथल हरियाणा, प्रथम संस्करण-2013, संजय द्विवेदी "सोशल नेटवर्किंग नए समय का संवाद" यश पब्लिकेशस, प्रथम संस्करण – 2013, विनोद विपुल और सिह राजबीर "फेसबुक सोशल मीडिया का चमत्कार" हिन्दी पॉकेट बुक्स नई दिल्ली प्रथम संस्करण – 2014, चव्हाण शकुंतला, "आवनिक मीडिया लेखन" इशिका पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, जयपुर, प्रथम संस्करण -2015, डॉ. श्रीवास्तव अविनाश "क्या आपका डॉक्टर पोषक तत्वों के बारे में जानता है" मंजुल पब्लिशिंग हाऊस, संस्करण -2016

(शोध आलेख)

श्रीमद्भागवत में योग-साधना की आध्यात्मिक महत्ता

शोध लेखक : डॉ. ज्योत्सना सी रावल

पुराणों का भारतीय वाङ्मय में एक विशेष स्थान है। वेदों के बाद भारतीय परंपरा के अनुसार पुराणों का ही स्थान आता है। छांदोग्य उपनिषद में पुराणों को पंचम वेद कहा गया है।१ अथर्व वेद में तो पुराणों की उत्पत्ति अन्य वेदों के साथ ही बताई गई है।२ समस्त पौराणिक साहित्य में भागवत पुराण का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। भारत की धर्म-प्राण जनता में विशेष कर पुराणों में भागवत पुराण का विशेष महत्त्व है। भारतीय परम्परा के अनुसार भागवत पुराण में सभी वेद व उपनिषदों का सार संग्रहीत है। यह शुकमुख से सम्बद्ध हो जाने के कारण अमृत द्रव से युक्त निगमरुपी कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है।३

भागवत पुराण में अनेक प्रसंगों में योग–साधना का अत्यन्त विशद वर्णन उपलब्ध होता है। इस में योग शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से एवं कर्मव ज्ञान तथा भक्ति पूर्वक दोनों ही प्रकार से हुआ है। युज्धातु से ध प्रत्यय लगाने पर योग शब्द निष्पन्न होता है। पाञ्जवल योगसूत्र में चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग कहा गया है।४ यह चित्त की वृत्तियों का निरोध केवल पारमार्थिक दृष्टि से ही अपेक्ष्य हो ऐसा नहीं है। जीवन के प्रत्येक कार्य में सफलता के लिए योग अपेक्ष्य है। कोई व्यक्ति व्यापार करता है, वह अपना सारा ध्यान केवल व्यापार में ही लगाता है। उसकी साध्य वस्तु है न। उसका मन अपने साध्य, केवल धन पर ही केन्द्रित रहता है। वह अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए इस प्रकार मन को एक त्रसमाहित करने के उपरान्त ही सफल हो पाता है। एक विद्यार्थी कालक्ष्य है विद्या प्राप्ति, किन्तु यदि वह अपने चित्त को अध्ययन में एकाग्र नहीं कर पाता है, तो वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति में असफल ही रहता है। जीवन का कोई भी कार्य व्यापार क्यो न हो, अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उस लक्ष्य के प्रति एकाग्र चित्तता अनिवार्य है। पारमार्थिक लाभ के लिए भी मानव जीवन में योग का स्थान अन्यतम है।

भागवत पुराण में उपनिषदों से प्राप्त देहादि का रूपक बड़े सुन्दर रूप में उपलब्ध होता है। यह शरीर एक रथ है। इन्द्रियाँ इसमें अश्व है। मन इन्द्रियों का स्वामी है और वही लगाम है। शब्दादिविषय ही मार्ग है। बुद्धि इस रथ का सारथि है।

भागवत पुराण में प्रदर्शित योग भक्ति के अंश के रूप में ही उपदिष्ट हुआ है। योग –साधना का उद्देश्य मन को एकाग्र कर के भगवान् के चरणों में लगाना है। मन को निर्विषय कर के कुछ भी स्मरण न करते हुए उसे भगवान् के श्री विग्रह के किसी अवयव में लगा देना चाहिए। उस समय किसी अन्य विषय का चिन्तन अथवा स्मरण नहीं करना चाहिए। उसे पूर्ण रूप से भगवान् में लीन कर देना चाहिए, वही विष्णु का परमपद है जहाँ मन निरन्तर आनन्द से आप्यायित रहता है।८ यह समस्त संसार त्रिगुणात्मक प्रपञ्ज है औ रमन इन्हीं गुणों में आक्षिप्त रहता है। त्रिगुणात्मक मन को धारणा द्वारा संयम करना चाहिए। धारणा के द्वारा ही मन का त्रिगुण जन्यम

डॉ. ज्योत्सना सी रावल

नष्ट होता है। मन के धारण किये जाने पर ही मनुष्य भक्ति लक्षण योग को प्राप्त करता है।९ इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि भागवत पुराण में उपदिष्टयोग भक्ति के एक अंग के रूप में ही वर्णित है।

योग का लक्ष्य है चित्त का उपशम।१० विवेकी पुरुष भी बहुधार जो गुण और

तमो गुण में आक्षिप्त हो जाया करता है, वह अतन्द्रित हुआ मन को युक्त करने की चेष्टा करता है, इस में उस की विषयों के प्रति दोष –दृष्टि बनी रहती है।११ योग साधक को शनैः:शनैः प्रमाद रहित हो कर, आसन और प्राण वायु को जीत कर, काला नुसार निर्विण्ण होकर मन को सब ओर से आकृष्ट कर के भगवान् में ही लगाना चाहिए।१२ विष्णु पुराण के अनुसार भी आत्मज्ञान के प्रयत्न भूतयम, नियमा दिसापेक्ष मन की विशिष्टगति और उस के ब्रह्म से संयोगन को ही योग अभिहित किया गया है।१३

पौराणिक योग एवं पातञ्जलयोग में यहाँ स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। पतञ्जलि के मतानुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।जब कि पुराणों के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध हो जाने के अनन्तर उस का ब्रह्म के साथ ही योग है।

जो योगी पर मावस्था अथवा आत्म-स्वरुप को प्राप्त कर लेता है वह दैव वश अपनी देह के लौटने, आने, उठाने या बैठने की कोई सुधि नहीं रखता है। उस की दशा मदिरा से प्रमत्त व्यक्ति के सदृश होती है, जिसे मदिरा के प्रमाद के कारण यह सुधि नहीं रहती है कि उस के शरीर पर वस्त्र है या नहीं।१४ वृत्तियों के निरुद हो जाने पर मन आश्रय, विषय और राग से रहित हो जाता है। गुण की वृत्तियों के निवृत्त हो जाने पर वह परमात्मा का बिना किसी व्यवधान के दर्शन करता है।१५ योगाभ्यास द्वारा चित्त की वृत्तियों के लय हो जाने से सुख दु:ख रहित ब्रह्म –रूप महिमा में वह स्थित हो जाता है। वह अज्ञात जनित अपने कर्तृत्व के अहंकार को भी त्याग देता है।१६

भागवत पुराण में अष्टांग योग का स्वरुप :

भागवत पुराण में अष्टांग योग साधना का वर्णन प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में उपलब्ध होता है। (१) किसी व्यक्ति के योग को आश्रय लेने का वर्णन और (२) किसी महान् पुरुष के देह त्याग का वर्णन

अष्टांग योग का यह अप्रत्यक्ष वर्णन आख्यानों के अन्तर्गत दृष्टिगोचर होता है। नारद का जीवन वृत्तांत, ध्रुव का वृत्तांत, कपिलाख्यान एवं श्रीकृष्ण के जीवन चरित के अने को प्रसंगो में योग का अप्रत्यक्ष वर्णन मिलता है। देहत्याग के वर्णनों के अन्तर्गत भी भीष्म द्वारा देहत्याग, सती द्वारा देहत्याग १७ आदि वर्णनों में योग द्वारा शरीर त्याग करने का उल्लेख प्राप्त होता है। यह सब कथाओं में वर्णित योग साधना का अप्रत्यक्ष वर्णन ही है।

अष्टांग योग साधना के अप्रत्यक्ष वर्णन के अतिरिक्त इसमें अष्टांग योगका सविस्तर वर्णन भी उपलब्ध होता है।१८ पातञ्जल योग दर्शन की भाँति ही योग के आठ अंग बताये गए है - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याग्रह, धारणा, ध्यान और समाधि। इन सभी का वर्णन भागवत पुराण में उपलब्ध होता है।

यम –भागवत पुराण में यम के बारह भेद बताये है - (१) अहिंसा (२) सत्य (३) आस्तिक्यअस्तेय (४) असंग (५) ह्री (६) असंचय (७) आस्तिक्य (८) ब्रह्मचर्य (९) मौन (१०) धैर्य(११) क्षमाऔर (१२) अभय।१९ पतञ्जलि ने अपने योग सूत्र में यम के केवल पाँच भेट बताये हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। विष्णु पुराण में भी उपर्युक्त पाँचयम ही स्वीकार किये गए है। अत: भागवत पुराण में यमों की संख्या में ७ यम अधिक परिगणित किये गए है। यह एक नवीन एवं मौलिक अवधारणा है-

नियम :

भागवत पुराण में नियम के भी बारह भेद बताये गए है - (१) शौच (२) जप(३) तप (४) होम (५) श्रद्धा (६) आतिथ्य (७) भगवदर्चना (८) तीर्थाटन (९) परार्थचेष्टा(१०) सन्तोष (११) आचार्य – सेवा। इस प्रकार यहाँ एकादश नियम ही आख्यात है। भागवत पुराण में यमव नियम दोनों की संख्या बारह – बारह बताई गई है।२० अत: शौच के बाह्यव अभ्यन्तर दो दो भेद मानने पर यह संख्या पूर्ण हो जाती है। पतञ्जलि के योग सूत्र में यमों की भाँति नियमों की संख्या भी पाँच ही निर्दिष्ट की गई है - शौच, सन्तोष, तपश्चर्या, स्वाध्याय व ईश्वर प्राणिधान। विष्णु पुराण भी पतञ्जलि का ही अनुसरण करता है। भागवत पुराण में तीर्थाटन आदि का समावेश पौराणिक परम्परा के कारण है। भागवत पुराण अनुसार नियमादि पुरुषों की का मनानुसार फल प्रदान करने वाले होते है। विष्णु पुराण अनुसार यम नियमों का सकाम भाव से सेवन करने पर मनुष्य को विशिष्टफलों की प्राप्ति होती है और निष्काम भाव से सेवन करने पर मुक्ति की प्राप्ति होती है। पतञ्जलि ने प्रत्येक यम – नियमादि के पृथक-पृथक फल का वर्णन किया है। ब्रह्म चर्य की प्रतिष्ठा से वीर्य लाभ होता है। अहिंसा की प्रतिष्ठा से योगी के एक मिड निकट, हिंसक जीव भी वौर-भाव सहित हो जाते है। सत्य की प्रतिष्ठा से योगीकर्तव्य - पालन – रुप क्रिया ओंके फलों का आश्रय बन जाता है। इस प्रकार वह वरदान देने या श्राप देने में समर्थ हो जाता है। अस्तेय के प्रभाव से योगी के समक्ष सर्वरत्न प्रकट हो जाते है। अपरिग्रह के प्रभाव से अपने पूर्वजन्म व वर्तमान के सभी वृत्तान्तों का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार नियमों के भी तत्तत्फलों का निरुपण किया गया है जैसे – सन्तोष से योगी को उत्तम सुख की प्राप्ति होती है तो स्वाध्याय से इष्ट देव की सिद्धि हो जाती है इत्यादि।

आसन :

योग का तीसरा अंग आसन है। पतञ्जलि ने किसी विशेष आसन का नाम निर्दिष्ट नहीं किया है, अपितु उनकी दृष्टि में स्थिर हो कर सुख पूर्वक बैठना ही आसन है। भागवत पुराण के अनुसार भी समतल स्थान पर सीधे शरीर वाला हो कर सुख –पूर्वक बैठना ही आसन है।२१ साधक को घर से निकल कर पुण्य तीर्थ के जल में स्नान कर के एकान्त में पवित्र स्थान पर विधि वत्बिछाये गए आसन पर आसीन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसमें मुक्तासन व स्वास्तिक आसन का भी उल्लेख प्राप्त होता है। तर्क मुद्रासन का उल्लेख भी प्राप्त होता है। भगवान् शंकर के वर्णन में कहा

गया है कि वे बांया पैर दायी जंघा पर रखे हुए, बांया हाथ बांये घुटने पर रखे हुए, कलाई में रुद्राक्ष की माला डाले तर्ककी में विराज मान थे।२२

प्राणायाम :

योग का चतुर्थ अंग प्राणायाम है। अभ्यास द्वारा प्राण वायु को वश में करने की प्रक्रिया ही प्राणायाम कहलाती है। पतञ्जलि अनुसार आसन सिद्धि के उपरान्तश्वास-प्रश्वास की गति का विच्छेद ही प्राणायाम है। भावगत पुराण अनुसार प्राणायाम में नासाग्र पर दृष्टि स्थिर कर लेनी चाहि एव अपने दोनों हाथ अंक में रख लेने चाहिए।२३ प्राणायाम में तीन प्रकार श्वास प्रक्रिया होती है – कुम्भक और रेचक। इस प्रकार की प्रक्रियाओं से ही प्राण वायु का मार्ग –शोधन होता है। प्रणव अथवा ब्रह्म बीज का स्मरण करते हुए प्राणायाम कर ने से योगी का मन उसी प्रकार निर्मल हो जाता है जिस प्रकार वायु और अग्नि से तप्त लौह अपना मल छोड देता है।२४

प्रत्याहार :

तत्तत्विषयों से इन्द्रियों को आकृष्ट करने को ही प्रत्याहार कहा गया है। इन्द्रियों को वश में किये बिना किसी प्रकार की साधना संभवन हीं है। प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा योगी की इन्द्रियाँ वश में हो जाती है। प्रत्याहार सबन्धी वर्णन बडी ही आलंकारिक भाषा में किया गया है। यहाँ मन के द्वारा बुद्धि की सहायता से इन्द्रियों को तत्तत्विषयों से समेट कर उन्हें मन में स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिए। यहाँ इन्द्रियों की उपमा अश्वों से, मन की लगाम से तथा बुद्धि की सारथि से दी गई है।२५

धारणा :

मन को किसी एक वस्तु में धारण करने का नाम ही धारणा है।२६ पतंजलि अनुसार भी चित्त को एक देश में ठहराना ही धारणा है। विष्णु पुराण अनुसार चित्त का भगवान् में धारण करना ही धारणा है।

भागवत पुराण में दो प्रकार की धारणा विहित है – वैराज और अन्तर्यामी धारणा। भगवान् के दो रूप है - स्थूल तथा सूक्ष्म, क्रमशः इन दोनों रूपों की धारणा ही वैराज तथा अन्तर्यामी धारणा है। जो कुछ भी कार्य रूप विश्वक भी कथा, है अथवा होगा वही भगवान् का स्थूल से स्थूल रूप है। जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत् और प्रकृति इन सप्त आवरणों से आवृत्त इस ब्रह्माण्ड शरीर में जो भगवान् विराट पुरुष है, वही धारणा के आश्रय है जो वैराज धारणा कहलाती है।

ध्यान :

ध्येय वस्तु के साथ चित्त का एक हो जाना ही ध्यान है। भक्तिपूर्वक धारणा के द्वारा साधक गहन ज्ञान को प्राप्त करता है और उसकी दृष्टि स्थूल सूक्ष्म के प्रति केन्द्रित होती जाती हे।२८ विष्णु पुराण अनुसार जिसमें परमेश्वर के रूप की ही प्रतीति होती है, ऐसी जो विषयान्तर स्पृहा से रहित एक अनवरत धारा है, उसे ही ध्यान कहते है। पतञ्जलि अनुसार ध्येय वस्तु में चित्त का एकाग्र हो जाना ही ध्यान है। भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध में ध्यान का सुंदर वर्णन किया गया है। इसी को ध्यान योग भी कहा गया है। इसमें भगवान् के सगुण रुप के ध्यान का वर्णन उपलब्ध होता है। सगुणरूप के ध्यान में भगवान् के चरणों से प्रारम्भ करके अन्त में साधक भगवान् की मुस्कान के ध्यान में तन्मय हो जाता है।

ध्यान के अभ्यास द्वारा साधक का भगवान् में प्रेम हो जाता है। उस का हृदय भक्ति में द्रवित हो जाता है, शरीर में आनन्दातिरेक से रोमांच हो जाता है और उत्कण्ठा वश अश्रुओं से बारम्बार वह अपने शरीर को नहलाता है।२९

समाधि :

अष्टांग योग के अन्तर्गत ध्यान के बाद समाधि का स्थान आता है। पतञ्जलि अनुसार जब चित्त ध्येयाकार में परिणित होता है साधक के अपने स्वयं के स्वरुप का अभाव हो जाता है और वह ध्येय से भिन्नन हीं रहता है, इसी अवस्था का नाम समाधि है। भागवत पुराण अनुसार इस अवस्था में चित्त संकल्प - विकल्प की वृत्तियों से रहित हो जाता है और सुख दुःख से परे उस भगवान् में ही स्थित हो जाता है उस समय वह अपना कर्तृत्व-भाव छोडकर परमात्म – काष्ठा को प्राप्त हो जाता है।३०

इस प्रकार भागवत में अष्टांग योग साधना का विशद वर्णन उपलब्ध होता है। अष्टांग योग को भक्ति के साधन के रूप में उपदिष्ट किया गया है। इस का अष्टांग योग पातञ्जल योग काय थावत् अनुकरण नहीं है अपितु इसमें मौलिकता भी दृष्टि गोचर होती है। इसके अनुसार आत्माराम मुनि भी भगवान् की अहैतु की भक्ति करते है। ३१ अतः स्पष्ट हो जाता है कि इस में योग भक्ति के साधन रूप में वर्णित है। भागवत पुराण की मान्यता अनुसार तो भक्ति ही सर्वोत्कृष्ट साधन है।

हठयोगसाधना

वायु द्वारा वक्ष स्थल के ऊपर विशुद्ध चक्र में ले जाता है। इसके उपरान्त सप्तछिद्र को निरुद्ध करके भौंहों के बीच में आज्ञा चक्र में ले जाता है। आज्ञा चक्र में थोडी देर वायु को रोककर स्थिर लक्ष्य के साथ फिर उसेस हस्त्रसार चक्र में ले जाता है और फिर वह ब्रह्म रन्ध्र को भेद कर अपना शरीर छोड देता है।३२ इस प्रकार योगी के द्वारा मुक्त होने की साधना का वर्णन किया गया है।

मुक्ति के अतिरिक्त इसी साधना से अनेक सिद्धियों को भी प्राप्त करने का साधन बताया गया है। इस प्रकार भागवत पुराण में अनेक प्रसंगों में योग साधना का अत्यन्त विशद वर्णन उपलब्ध होता है। यत्र-तत्र योग दर्शन का प्रचुर प्रभाव दिखाई पडता है। इसके अनुसार योग भगवद भक्ति को प्राप्त करने का एक साधन है। भगवद गीता की भाँति ही भागवत पुराण में योग का भक्ति व ज्ञान के साथ समन्वय स्थापित किया गया है।

000

संदर्भ-

1अथर्ववेद - एस. डी. सातवतेकर, स्वाध्यायमण्डल, औंध, 1939,
2छांदोग्यउपनिषद - गीताप्रेस, गोरखपुर,
3भागवतपुराण- गीताप्रेस, गोरखपुर,
4भागवतपुराण - श्रीधरटीका, पण्डितपुस्तकालय, वाराणसी,
5विष्णुपुराण- गीताप्रेस, गोरखपुर,
6योगसूत्र- कशीसंस्कृतसीरीज, वाराणसी,
7 कठोपनिषद- गीताप्रेस, गोरखपुर

शोध आलेख

(शोध आलेख)

सल्तनतकाल में भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन

शोध लेखक : संदीप कुमार राजपूत
डा० मंजुलका तोमर
शोध निर्देशक व आचार्य

संदीप कुमार राजपूत
शोधार्थी, इतिहास विभाग
मानविकी,सामाजिक विज्ञान व कला संकाय
महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ इनफार्मेशन एंड टेक्नोलॉजी, लखनऊ

शोध-सार- ऐतिहासिक अनुसन्धान विधि में इतिहास निर्माण के प्रमुख स्त्रोत-पुरातात्विक एवं साहित्य स्त्रोत अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये स्त्रोत मुख्यत: द्वितीय स्त्रोतों के अन्तर्गत आते हैं। सल्तनत काल से लेकर मुगल-काल तक मुसलमान कवियों ने हिन्दू कविता के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दू-मुस्लिम एकता का मार्ग प्रशस्त किया है। मुस्लिम कवियों में अमीर खुसरो, अब्दुर्रहीम खानखाना। रसखान तथा शेख मुबारक का नाम विशेष है। इसके अतिरिक्त निजामुद्दीन औलिया के प्रमुख शिष्य अमीर खुसरो ने फारसी के स्थान पर हिन्दी को अधिक महत्त्व दिया। इस प्रकार तीव्र झझांवतों के मध्य उपरोक्त सन्तों के सराहनीय प्रयासों के परिणामस्वरूप् सल्तनतकालीन भारत में सांस्कृतिक सामंजस्य स्थापित हुआ तथा समकालीन भारत पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा तथा एक नवीन मिश्रित संस्कृति का जन्म हुआ।

मुस्लिम समाज - इस समय शासक वर्ण से सम्बन्धित होने के कारण तत्कालीन मुसलमान स्वयं को उच्च समझते थे। उस समय के मुस्लिम समाज मे नि:संदेह जाति व्यवस्था का प्रचलन नहीं था। किन्तु जन्म, नस्ल तथा धर्म के आधार पर ये मुसलमान कई वर्गों में विभाजित थे। शिया और सुन्नी मुसलमानों में अत्यधिक मतभेद था। उस समय के विदेशी मुसलमान भारतीय मुसलमानों को घृणा की दृष्टि से देखते थे, पर अल्लाह के समक्ष सभी प्रकार के मुसलमान एक थे। सल्तनत कालीन मुस्लिम समाज मुख्य रुप से तीन भागों में विभाजित था- 1. विदेशी मुसलमान, 2. भारतीय मुसलमान, 3. दास।

नस्ल के आधार पर विदेशी मुसलमान तुर्की, ईरानी, पठान, अफगानी तथा मुगलों में विभाजित थे। मुख्य रुप से दिल्ली सल्तनत में मुख्य पदों पर इन्हें रखा जाता था। विदेशी मुसलमानों को तत्कालीन इतिहासकार निम्नलिखित पाँच वर्गों में बांटते हैं- 1. शासक वर्ग, 2. सामन्त एवं अमीर वर्ग, 3. उलेमा वर्ग, 4. मध्यम वर्ग, 5. जनसाधारण वर्ग

इसमें शासक वर्ग सबसे शक्तिशाली था। राज्य की समस्त शक्तियाँ, जैसे- कार्यकारी, सैनिक एवं न्यायिक व्यवस्था उसमें ही केन्द्रित थी। डॉ. कुरैशी ने सुल्तान की सर्वोच्च स्थिति के कारण उसे वैधानिक सम्प्रभु तथा वास्तविक सम्प्रभु की उपाधि से विभूषित किया है।

मुसलमानों में दूसरा महत्त्वपूर्ण वर्ग अमीरों का था, जो स्वयं को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित करते थे। 1. खान, 2. म्लिक, 3. टमीर, 4. सिपहसालार।

मध्य युग में इन अमीरों का तत्कालीन राजनीति पर विशेष प्रभाव था। किन्तु जब ये अधिक शक्तिशाली तथा अनियंत्रित हो जाते थे तो सुल्तान इनकी शक्तियाँ वापस ले सकता था। के.एम. अशरफ के अनुसार- "सुल्तान उनके जीवन काल में ही इनकी उपाधियाँ वापस ले सकता था इन्हें सदैव सुल्तान की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता था।" वहीं उलेमा वर्ग न्याय, धर्म तथा शिक्षा से सम्बन्धित पदों पर विराजमान होता था।

डॉ. के.एम. अशरफ के अनुसार- "कुरान में उलेमा का स्थान सामान्य रुप से मुसलमानों से पृथक मना गया है जो लोगों को उचित मार्गदर्शन कराते हैं।"

उलेमा राजनीति में भी हस्तक्षेप करते थे। वे सुल्तान को वैधानिक विषयों के साथ-साथ राजनीति विषयों पर भी अपनी सलाह देते थे। इस काल में अलाउद्दीन खिलजी व उसके पुत्र

शाह खिलजी को छोड़कर शेष सल्तनत सुल्तानों के समय इनका विशेष महत्त्व था।

सल्तनत काल में मध्य वर्ग- यहाँ मध्यम वर्ग से तात्पर्य व्यापारी, कर्मचारी, लिपिक या लेखक इत्यादि आते हैं। डॉ. युसूफ हुसैन के अनुसार- "मध्यम श्रेणी के लोगों के संबंध में हमारी जानकारी बहुत कम है। इस वर्ग में व्यापारी-व्यवसायी और सरकारी कर्मचारी या लेखक वर्ग जैसा कि उन्हेंकहा जाता था, सम्मिलित थे। समुद्र तट पर रहने वाले व्यापारी और सौदागर का जीवन निश्चित रुप से उन लोगों से ऊँचा था जो देश केभीतरी भू-भाग में रहते थे। जिसका कारण यह था कि उन्हें दूसरे देश के लोगों के सम्पर्क में आना पड़ता था और अन्तर्राष्ट्रीय आराम और सुविधा का भी उन्हें अनुकरण करना पड़ता था।"

वस्तुत: मध्य काल में उच्च वर्ग के उपरान्त मध्यमवर्गीय समाज ही एक ऐसा समाज था जिसकी आर्थिक स्थिति सही थी। समाज में इनका मान तथा सम्मान ही सही था, अपितु ये शासक तथा जनसाधारण वर्ग के मध्य एक महत्त्वपूर्ण कड़ी थी। मध्यम वर्ग की अपेक्षा अमीरों की स्थिति उच्च नहीं थी, क्योंकि इन्हें अपना उच्च जीवन स्तर बनाये रखने के लिए अधिक व्यय करना पड़ता था। साथ शासक वर्ग को प्रसन्न करने के लिए महंगे-महंगे उपहार भी देते पड़ते थे।

इस विषय पर बर्नियर कहता है कि- "बहुत ही कम धनवान अमीरों से मेरी पहचान थी। इसके विपरित उनमें से अधिकांश ऋणग्रस्त थे। बादशाह के बहुमूल्य उपहारों और अपने कर्मचारियों के कारण वे विनाश की कगार पर पहुँच गए थे।"

मध्यम वर्ग उस समय सम्मान पर था तथा उस समय के मध्यम वर्ग के व्यक्तियों का जीवन स्तर शासक की तुलना में नीचा था किन्तु अमीरों की अपेक्षा उच्च था। वास्तव में यह मध्यम वर्ग सरकारी कर्मचारियों के भय के कारण उच्च स्तरीय जीवन नहीं जीते थे, उन्हें सदैव यह डर लगा रहता था कि कोई उनकी सम्पत्ति न छीन ले। इस विषय में बर्नियर लिखते हैं कि- " व्यापारी वर्ग बहुत कम खर्चा करता था तथा निर्धनों की तरह जीवन व्यतीत करता था। मध्यमवर्गीय सरकारी कर्मचारियों का जीवन भी बहुत सम्पन्न नहीं था।"

इस समय उद्योगों की स्थापना प्रारंभ हो चुकी थी। इनमें से कुछ उद्योग राज्य के माध्यम से कुछ उद्योग व्यापारियों के माध्यम से चलाये जाते थे। डा. युसूफ हुसैन के अनुसार- "गुजरात में बनिये भारत के समस्त समुद्र तट पर व्यापार करते थे। अरबेरिया तथा फारस तक से उनके व्यापारिक संबंध थे। उनमें से अनेक पूँजीपति अत्यधिक अमीर थे।"

संक्षेप में कहें तो मध्यम वर्ग की आर्थिक स्थिति तो सही थी किन्तु उनकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्थिति अच्छी नहीं थी। मध्यम वर्ग में भी उच्च व्यापारी ही अधिक सम्पन्न था। वहीं अधिकांश मुस्लिम अमीर वर्ग भी अपने व शासकीय कारण से परेशान था।

जनसाधारण वर्ग- इस वर्ग का स्थान मध्यम वर्ग के उपरान्त आता है, जो निम्न स्तरीय था। इस वर्ग में निम्नलिखित व्यक्ति सम्मिलित थे- कारीगर वर्ग, कृषक वर्ग, छोटे-दुकानदार या छोटे व्यापारी, मजदूर वर्ग इत्यादि

वस्तुत: सम्पूर्ण सल्तनत काल में इनकी स्थिति शोचनीय तथा दयनीय ही रही। इस विषय में युसूफ हुसैन लिखते हैं कि- "कस्बों तथा नगरों में रहने वाले निम्न श्रेणी के लोगों तथा किसानों की ऐसी दशा थी, जैसी आधुनिक समय में है। जहाँ तक उनके निवास का संबंध है, अधिकतर विदेशी यात्री उनकी दुर्दश्य का ही चित्रण करते हैं।"

इस विषय में तथा इससे मिलते-जुलते विचार तत्कालीन यूरोपीय यात्री पेलसर्ट भी रखता है। वही लिखता है कि- "उनके मकान मिट्‌टी के बने हुए छप्परों की छतों के हैं। कुछ मिट्टी के घड़ों पकाने के बर्तन और दो चारपाइयों के अतिरिक्त उनके घरों में साज-सज्जा की सामग्री या तो बहुत कम है या बिल्कुल कम है। उनके बिस्तर बहुत कम है, केवल दो चादरें- जिसमें से एक बिछाने तथा दूसरी ओढ़ने के काम आती है। ग्रीष्म ऋतु के लिए यह पर्याप्त है किन्तु कड़ाके की जाड़ों की रातें वस्तुत: बहुत दयनीय होती है।"

सल्तनत काल में दासों की स्थिति- उपरोक्त जन साधारण वर्ग के अतिरिक्त नगर में रहने वाला एक बड़ा वर्ग दासों तथा घरेलू नौकरों का हुआ करता था। वस्तुत: भारत के प्राचीन समय में से ही दासों तथा दास व्यवस्था का प्रचलन रहा है। नारद स्मृति में अनेक प्रकार के दासों का विस्तृत वर्णन किया गया है। प्राय: दास परिवार में जन्मे, कूए किये गए दास, स्वयं को बेहाल बनाया गया दास तथा विभिन्न प्रकार के दासों का विवरण हमें विभिन्न हिन्दू ग्रन्थों में प्राप्त होता है। किन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इस प्राचीन भारत में दासों की स्थिति दयनीय नहीं, अपितु सम्मानीय थी। उन्हें परिवार का ही एक भाग माना जाता था, तभी तो जब मेगस्थनीज भारत आया था तो उसने यहाँ पर दासों का अभाव पाया था। उसने भारत में सात सामाजिक वर्ग की भी चर्चा की है किन्तु इसमें दास सम्मिलित नहीं थे। परन्तु सल्तनत काल आते-आते दासों की स्थिति बिगड़ गई।

सल्तनत काल में दास बनाने का सबसे प्रमुख प्रकार युद्धबन्दी को दास बनाने का था। इन आक्रमणकारी तुर्कों ने भारत के भीतर और बाहर अपने युद्धों में बड़े पैमाने पर प्रतिपक्षी सैनिकों को पकडकर दास बनाया। इस सल्तनत काल में पश्चिम एशिया के समान भारत में भी स्त्री तथा पुरुषों के लिए दासों के बाज़ार स्थापित हो गए थे। इन दासों में यूनानी, तुर्क एवं भारतीय दासों की कीमत अधिक होती थी। इसके अतिरिक्त अफ्रीका से भी दास सल्तनत काल में भारत लाये जाते थे। इनका प्रमुख प्रकार हब्शी था।

प्राय: कौशलपूर्ण दासों की कीमत अधिक थी तथा सुन्दर लड़की उस सल्तनत काल में कीमत लगायी जाती थी। वस्तुत: सल्तनत काल में कुशल दासों को अधिक महत्त्व दिया जाता था, क्योंकि उनका युद्धों में कुशलता से प्रयोग किया जा सकता था। ऐसा ही एक दास शासक कुतुबुद्दीन ऐबक था, जो अपनी कुशलता के कारण दास बना था। ऐसे ही

विवरण हमें पश्चिमी तथा मध्य एशिया में भी मिलते हैं, जहाँ लोगों को पकड़कर दास बनाया जाता था तथा इसके बाद उन्हें इस्लाम धर्म कबूल करवाया जाता था। ऐबक ने भारत में सत्ता प्राप्ति के उपरान्त दास व्यवस्था को बनाये रखा। उसने 1195 में गुजरात पर आक्रमण करके यहाँ से 20,000 तथा कालिंजर पर आक्रमण तथा वहाँ से पकडकर 50,000 व्यक्तियों को दास बनाया। किन्तु बलवन तथा अलाउद्दीन खिनजी ने इतने बड़े पैमाने पर इस प्रकार दास नहीं बनाये। वस्तुतः इनके काल में भी दासों को भी वस्तुओं के समान लूट का एक भाग ही समझा जाता था। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिकांश युद्धबंदियों को मार दिया जाता था केवल कुछेक कौशल पूर्ण व्यक्तियों को जिन्दा रखा जाता था।

इस विषय में मेंहदी हसन लिखते हैं कि- 13वीं शताब्दी के दासों के समान राज्य की सीमाओं को बढ़ाने अथवा विद्रोह को दबाने जैसी सेवा की अपेक्षा दासों ने गजकोष को स्टिक करने में अपना योगदान किया।

स्त्रियों की स्थिति- प्राचीन भारत में हम अनेक विदुषी महिलाओं का विवरण पाते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उनकी स्थिति प्राचीन समय में अच्छी थी, किन्तु पूर्व मध्य काल आते-आते उनके जातियों तथा उपजातियों के उद्भव के कारण इनकी स्थिति में निम्नता आई। मुसलमानों के आगमन के उपरांत सल्तनत काल में उनकी स्थिति में भी भी गिरावट आई। अनेक खतरों के कारण अब उसे संरक्षण में रहना होता था। इस विषय में अमीर खुसरों लिखता है कि- " स्त्रियों का जीवन नियंत्रित था। पुत्री के रुप में वह माता-पिता, पत्नी के रुप में पति और विधवा के रुप में उसे अपने पुत्र के संरक्षण में रहना होता था।"

इस समय बहुपत्नी विवाह का प्रचलन बड़ा तथा विधवा विवाह पर अनेक अंकुश लगे। जिसके कारण स्त्रियों की स्थिति और न्यूनता पर आ गई। सती प्रथा का प्रचलन से ही था। अब राजपूत स्त्रियाँ मुसलमान आक्रान्ताओं के कारण जौहर (स्वयं को अग्नि में जला डालना) भी अपनाने लगी। सल्तनत में स्त्रियों से यह आशा की जाती थी कि वह पति के शव के साथ स्वयं सती ही हो जाए अथवा अपना जीवन भिक्षुणी के समान जिये। इस विषय अलबरूनी लिखा है कि- " विधवा का एकमात्र विकल्प सती होना था। विधवा होना पाप समझा जाता था।"

वहीं यूरोपीय यात्री डेला वेला ने लिखा है कि- "विधवा पुनर्विवाह नहीं करती थी और अपने सिर के बाल कटवाकर एकान्तवासी रहती थी।"

अब मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन के उपरान्त भारतीय हिन्दू समाज में पर्दा व्यवस्था की बीमारी भी आ गई। हिन्दू महिलाओं से विवाह के लिए मुस्लिम सदैव लालायित रहते थे, अतः उनकी क्रूरता से बचने के लिए बाल विवाह तथा पर्दा व्यवस्था का आरम्भ हुआ। एक पिता अपनी पुत्री का विवाह उसके जवान होने से पूर्व ही कर देना अपना धर्म समता था। वस्तुतः बाल विवाह तथा पर्दा व्यवस्था का मुख्य कारण इन आक्रांताओं की काम पिपासा से उन्हें बचाना था। अतः कन्या का जन्म शोक का कारण माना जाता था तथा कभी-कभी बाल कन्या हत्या भी होती थी।

सल्तनत की अति कठिन स्थिति में कुछ स्त्रियाँ शिक्षित थी, किन्तु ग्रामीण भारत में अधिकांश स्त्रियाँ अशिक्षित ही थीं। किन्तु उच्च कुल या उच्च परिवारों में स्त्री शिक्षा पर ध्यान दिया जाता था। डॉ अशरफ के अनुसार-

"राजेश्वर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी, देवलरानी, रूपमते, पद्मनि तथा मीराबाई शिक्षित नारियों के सजीव उदाहरण हैं।"

इस प्रकार ये अत्यंत ही दुलर्भ थे तथा अधिकांश स्त्रियाँ अशिक्षित ही थी। उपरोक्त के अतिरिक्त देवदासी की प्रथा भी इस समय उपस्थित थी। मन्दिर में सुन्दर बालिकाओं को नृत्य के उद्देश्य से देवदासी बना दिया जाता था, जहाँ उसे कभी-कभी अत्यधिक घिनौना जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

सल्तनत कालीन भारत की जाति व्यवस्था- पूर्व की भाँति पूर्व मध्यकाल में भी भारत में जातियों की जटिलताएँ बनी रहीं। हिन्दूओं के साथ-साथ मुसलमानों में अनेक मतभदे पाये जाते थे। अक्रान्ता तुर्क भारतीय मुसलमानों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते थे तथा उनके प्रति सदा ही घृणा की भावना बनी रहती थी। इसके अतिरिक्त भारतीय मुसलमानों को राजकीय सेवा का अवसर भी ना के बराबर प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त जो सुन्नी मुसलमान होते थे वे शिया मुसलमानों को छोटी दृष्टि से देखते थे।

दिल्ली सल्तनत की प्रशासनिक व्यवस्था- भारत का सम्पूर्ण मध्यकाल में इस्लाम की कट्टर राज्यधर्म बना रहा इस समय कट्टरपंथियों ने अल्लाह के पैगम्बर मुहम्मद साहब के प्रामाणिक कार्यों और कथनों का ही सहारा लिया। पैगम्बर के इन कार्यों तथा कथनों को हदीस का नाम दिया गया। वस्तुतः इस्लामी कानून 'शरीअत' कुरान और 'हदीस' पर ही आधारित है। इस्लाम में रूढ़िवादी व्याख्याकर्ता को उलेमा कहा जाता है। पैगम्बर के उपरान्त इस्लामी समाज में सबसे बड़े स्वामी खलीफा ही थे। उस समय खलीफाओं में यह प्रथा प्रचलित थी कि खलीफा अपने जीवन काल में ही अपने उत्तराधिकारी को नियुक्त अथवा मनोनीत कर सकता है। कुछ माल के उपरान्त खलीफा का यह पद वंशानुगत ही हो गया। इसमें महमूद गजनवी प्रथम स्वतंत्र मुस्लिम शासक था, जिसने सुल्तान की उपाधि धारण कर ली थी।

सल्तनत काल में शिक्षा व्यवस्था- निःसन्देह हम जानते हैं कि अपने उद्गम के समय से ही मुस्लिम शासक युद्धप्रिय थे। वे अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए संघर्ष और युद्ध को जानते थे। इसके उपरान्त भी सल्तनत काल विभिन्न शासकों ने शिष्य की उन्नति के अनेक कार्य किये। वस्तुतः हम जानते हैं कि किसी भी देश की सभ्यता या संस्कृति का मुख्य आधार उस देश की शिक्षा ही होती है। अंग्रेज़ों ने इसलिए भारत आगमन के उपरान्त देश की देशी शिष्य को नष्ट करने का प्रयास किया तथा मात्र अपने नौकरी योग्य सेवक बनाने के लिए कुछ अंग्रेज़ी का प्रसार कराया।

000

Research Article

(Research Article)

Diabetes, test, Diagnosis Diabetes Risk & Care

Research Author :
Dr. Chhayaben R. Suchak

Introduction

In order to discuss diabetes more thoroughly, an understanding of the anatomy and physiology related to the development of diabetes in necessary. The problems of diabetes originate in an organ located behind the stomach about the length of a human hand called the pancreas. The pancreas is necessary for both digesting food and regulating energy. It is the regulation of energy for the body that is important in the development of diabetes. The pancreas produces hormones that metabolize food. These hormones regulate the use of glucose, a simple sugar, which is used for most of the activities in our bodies. The pancreas regulates energy in a variety of behaviours in which humans engage such as exercise and movement, responding to trauma and stress, and infections.

The pancreas secretes three different types of hormones. Insulin is the first hormone that is produced when glucose rises in the blood. Insulin usually rises after eating a meal, and excess glucose that is not used is stimulated by insulin to be stored in muscles and fat cells so that energy can be used later. The liver also stores excess glucose in the form of a carbohydrate called glycogen. The second type of pancreatic hormone is glucagon. Glucagon breaks down glycogen stored in the liver so that it can be used as energy when blood glucose supplies are down. The third type of pancreatic hormone is called somatostatin, thought to be important in regulating both insulin and glucagon.

When diabetes develops, this balanced control system does not operate properly. The glucose in the bloodstream increases, and the cells are not able to utilize it. The individual developes hyperglycemia (excess glucose in the blood). This can be detected by measuring the glucose in the blood from a blood sample, or if the glucose is elevated enough, it can be detected in the urine as spillover. This sort of situation occurs when there is not enough insulin to permit the cells to utilize the glucose, or there is resistance most likely at the cellular level to the presence of insulin. Both cases produce diabetes.

Box 4.2. Diabetes Facts and Figures

- About 15.7 million people in the United States have diabetes, and 5.4 million do not know it !
- Diabetes in the seventh-leading cause of death by disease in the United States.
- Diabetes is a chronic disease that has no cure.
- Diabetes is the leading cause of blindness in people between the ages of 20 and 74.
- Approximately 27,900 people started treatment for end-stage renul disease.
- People with diabetes are two to four times more likely to have heart disease.
- People with diabetes are two to four times more likely to suffer a stroke.
- Health care and related costs for the treatment of diabetes are about $92 billion annually.

Dr. Chhayaben R. Suchak
Department of Psychology
Arts College Vijaynagar
Sabarkantha
Gujrat

The most common form of diabetes is Type 2 or Non Insulin Dependent Diabetes Mellitus (NIDDM), also known as adult onset diabetes. Usually, people who develop NIDDM are over 30 years of age.

As we discussed in the opening section of this chapter, pregnant women sometimes develop gestational diabetes. This type of diabetes often takes the form of adult onset diabetes (NIDDM).

Some Indian individuals with uncontrolled diabetes (adult onset is the most common) develop extremes of high and low concentration of sugar in the blood, which is sometimes termed brittle, unstable, or labile diabetes. These individuals may require hospitalization in order to become stabilized. Brittle diabetics may need three and four insulin injections a day and a very closely monitored lifestyle, with diet controls and activity levels carefully controlled.

Diabetes has two types of long-term effects. One type is associated with blood vessel involvement. Damage to the large vessels puts the diabetic at greater risk of stroke, heart attack, and gangrene of the feet.

Stress and Type 1 Diabetes

Thus, the role of stress management procedures in the treatment of Type 1 diabetes has not yet been made clear. Studies using larger groups of subjects matched for age of onset, personality characteristics, sex, and type of stress should help clarify this picture.

Stress and Type 2 Diabetes

Accordint to Surwit and Schneider, studies exploring the effects of stress and stress management procedures have been more consistent in finding positive results for Type – 2 diabetes than for Type 1 diaboetes research. These researchers point to studies showing how stress affects glucose levels in Type 2 diabetics both acutely and chronically. Evidence from both animals and humans indicates that individuals with Type 2 diabetes have altered adrenergic sensitivity in the pancreas which may make them susceptible to stressful environmental conditions. If stress can increase blood glucose, then training in relaxation should lower glucose. This seems to be so, but subject pools have been small, with a great deal of subject variability.

who could benefit from stress management strategies and a corresponding improvement in health status. Further research would also necessitate investigating individuals in their natural social environment where other factors may be playing roles.

medical therapy program involving 38 patients with Type 2 diabetes. Volunteers were assigned to relaxation training and diabetes education or a diabetes education – alone group. The were admitted to the hospital for metabolic assessment and then given outpatient relaxation training for eight weeks. Assessments were repeated at 24 and 48 weeks..

Type 1 or Type 2 diabetes can be clarified. psychological characteristics of individuals who respond to stress management interventions. Paying attention to these characteristics will be important in the future if stress management techniques are to be of maximum effectiveness.

Diabetes Management

Psychological Factors: Diabetes is a good model for the study of chronic disorder management because there are ways to measure blood glucoses over varying lengths of time. In the short term, one can measure daily blood glucose levels, glycosylated haemoglobin, which represents average blood glucose levels over six to eight weeks, and fructosamine, which measures blood glucose levels over shorter time periods. Short-term complications of diabetes occur such as diabetic ketoacidosis and hypoglycaemic episodes. In the long run, complications such as retinal destruction, kidney disease and failure, foot ulcers, gangrene, and male erectile impotence develop.

Psychological variables are important because the health beliefs, knowledge, and behaviour of both people with diabetes and of health care professionals involved in dealing with these people affect how diabetics control their disease

Because diabetes is so difficult to control effectively over the long run, it is important to pay attention to diabetic patients psychological well being, as well as metabolic control. According to Bradley, psychological outcomes that are measured by existing paper-and-pencil personality inventories may be inappropriate with people with diabetes. Personality measures of depression and anxiety include items that may be indicative of depression in the general population, but may reflect the symptoms of poor blood glucose control in diabetics. For example, fatigue, appetite disturbances, weight loss, anxiety, irritability, and

loss of sexual interest may be symptoms of abnormal blood glucose levels rather than depression. Bradley and Bradley and Lewis have developed measures of psychological adjustment designed for diabetics and include measures to determine well being and energy as well as depression and anxiety. Ideal diabetic management occurs when the diabetic is satisfied with the treatment regime as well as maintaining effective blood glucose control. However, measurement of psychological processes may give us clues to what is going wrong with individuals who are maintaining poor diabetic control. It may also provide ideas on ways to approach patients based on their personality styles to improve control.

Weight

Some researchers found that combinations of nutrition education, behaviour modification techniques, very how calorie diets, and exercise produced dramatic weight losses in some patients with Type 2 diabetes.

Psychologists can aid diabetics in other ways, including assisting in tailoring treatment regimens to patients' individual needs and social context, providing coping strategies for familes with diabetics, and helping health care professionals improve their communication skills with their diabetic patients. Diabetic adolescents are also prone to eating disorders. According to Bradley, young, mostly female diabetics may binge and then omit insulin injections so that they do not gain weight from their binging. These all pose special challenges for the psychologist.

Adherence to Treatment

Management of chronic illnesses such as diabetes necessitates lifetime behavioural changes. In diabetes, patients are asked to measure their blood glucose, administer insulin, make significant and difficult dietary changes.

The results showed that self-efficacy was a significant predictor of adherence to the separate components of diabetes management over a subsequent eight-week period. The authors found that reports of adherence had a significant positive relationship with concurrent glycosylated hemogoblin even after severity of the disorder was controlled statistically. The authors noted some limitations in the generalizability of the results. Sixty-two percent of the subjects in the study were Type 2 diabetics, possibly resulting in weighting the results in their favour over Type 1 diabetics. The authors could not clearly separate out the relative effects of each type of diabetes on the results. person's self-efficacy may be important to overall management of diabetes.

Summary

Diabetes involves the disregulation of carbohydrate metabolism by the pancreas and cellular processes in the body. In Type 1 diabetes, the pancreas makes little or no insulin; therefore, the body cannot metabolize glucose for its energy needs. It is thought that Type 1 diabetes is caused by an autoimmune process whereby the body's immune system destroys the beta cells of the pancreas that make insulin. In distinction to Type 1 diabetes, Type 2 deiabetics have functioning beta cells that may be making too little insulin, appropriate amounts, or an excess. The problem can be that the cells which absorb glucose have developed a resistance to the effects of insulin owing in part to lifestyle factors such as a high-fat diet and a sedentary lifestyle. Both short-term and long-term complications develop from the disease. Deterioration of the circulatory and neural systems is likely. but more research is needed to fine tune methodological problems and to identify the personality variables that respond favourably to stress management techniques.

Food for Thought

1. What is Diabetes Mellitus ? What biological processes contribute to its effects ? Describe the different types.

2. What are the factors within our control and the factors that are not within our control in the origin and progression of diabetes ?

3. Why is adherence difficult in managing diabetes ? How would you go about improving adherence ?

4. Describe the effects of stress on diabetes. What psychological techniques might be useful in managing the disease ? What factors might make them effective ?

000

Bibliography

Reference

1. Health Psychology, Dinesh Rawat,
Sublime Publication, Jaipur – 302 006

2. Clinical Psychology, Charu Sharma

3. Problems and Practices in Mental Hygiene, Dattatrey P.

4. www.searchgooglediabetes

(Research Article)

Programme To Increase The Aptitude For English

Research Author :
Katara Sejalbahen Nathubhai
Ph.D Scholer , Hngu Patan
Guide
Dr. D.S Patel
Asso.Professor, Hngu Patan

Introduction

Even in our country, the need and desire to learn English language is growing day by day among Indians because, as English is an international language, it is necessary for every person to be able to communicate effectively in English. So it is necessary that every person should get an opportunity to speak English. English subject is easy at secondary level is Therefore, approaches should be taken so that the students use the English language extensively and the students learn to absorb it themselves. Students can read and write but cannot communicate effectively in English. Therefore, it is necessary to create such an environment in the class so that the students are excited to communicate in the English language, so that the students communicate with each other, and for this to increase the English Aptitude, it is necessary to create such a situation in the class that the students should continue to have a practical opportunity to speak English. Speaking, reading process is not only verbal expression, but the result of the entire mental process. From which his Aptitudes. The subject matter is about preparation and narration and practicality. Today's world is changing rapidly. Its use is maximum in external life. However, it is used in schools to measure students' interest or aptitude for that English subject by including it in intelligence tests. Hence this topic of aptitude program structure and its effectiveness has been chosen under a different name and with a view to measuring the student's strength towards the English subject.

Operatonaldefinitions of the terms

Secondary school

Education after completion of primary education. As per education policy of 1986 7+3+2 as per the educational scheme of 7+3+2 the standard after primary 8 which is the beginning of secondary education means 9th. A managed school imparting education up to class 9 and 10. In the present study, government-semi-government (receiving government grant) and self-financed educational institutes teaching the curriculum of class 9 and 10 in the state of Gujarat have been accepted as secondary schools.

Secondary School intermediate between elementary school and college.

Objectives of the study 1. To construct aptitude pre-test and post-test for students of class-9 to know the aptitude towards English subject. to do. 2. To construct a program to increase Aptitude in English subject among students of class-9. 3. To study the effectiveness of a program designed for Aptitude in English subject among students of class-9. 4. To study the effectiveness of a program designed for Aptitude in English subject among students of class-9 with respect to gender. 5. To study the effectiveness of a program designed for Aptitude in English subject among class-9 students with respect to habitat. 6. To study the effectiveness of a program designed for Aptitude in English subject among class-9 students in terms of pre-test and post-test scores of the experimental group.

Katara Sejalbahen Nathubhai
Ph.D Scholer ,
Hngu Patan
Asso.Professor, Hngu Patan

7. To study the effectiveness of a program designed for English subject Aptitude in class-9 students in terms of pre-test and post-test scores of a control group.

8. To study the effectiveness of a program designed for Aptitude in English subject in class-9 students with respect to experimental group and control group.

RESEARCH HYPOTHISIS

Ho 1 There will be no significant difference between mean score of students of control group rural habitat maleand students of experimental group rural habitat maleon Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 2 There will be no significant difference between mean score of students of control group rural habitat femaleand students of experimental group rural habitat femaleon Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 3 There will be no significant difference between mean score of students of control group urban habitat maleand students of experimental group urban habitat maleon Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 4 There will be no significant difference between mean score of students of control group urban habitat femaleand students of experimental group urban habitat femaleon Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 5 There will be no significant difference between mean score of students of control group maleand students of experimental group maleon Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 6 There will be no significant difference between mean score of students of control group femaleand students of experimental group femaleon Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 7 There will be no significant difference between mean score of students of control group rural habitatand students of experimental group rural habitaton Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 8 There will be no significant difference between mean score of students of control group urban habitat and students of experimental group urban habitat on Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 9 There will be no significant difference between mean score of students of control groupand students of experimental groupon Aptitude for English Subject Pre-Test.

Ho 10 There will be no significant difference between mean score of students of control group ruralhabitat maleand students of experimentalgroup ruralhabitat maleon Aptitude for English Subject post-test.

Study variables

A variable can be said to be an attribute that has different values. In other words a variable means something that changes, more precisely a variable is a noun to which a number value can be applied. Any characteristic of a person group or environment that can change. It is known as variable. E.g. Age,gender, intelligence, achievement, program, method etc.

Types of research

Among the above types of research, research conducted is practical is research. Because, the purpose of the research conducted is to design and test a program to develop Aptitude in the English language.

Research Methodology

Various research methods are used to conduct research in the field of educational research. If any type of research is carried out, a suitable method has to be thought of to find a solution to the problem that has arisen. It is necessary that the result of any research is satisfactory and reliable and for that research method or technique is important.

Present Research planning

Observation of changes in the outcome variable by systematically changing the causal variable under controlled conditions to establish a causal relationship between the variables within the research is the experimental method, in the survey method the data is obtained from each member of the population or even from a selected sample.

Implementation of the Experiment

In the context of the present research, the education program was implemented during the academic year 2022-23 to make the competency enhancement program effective for the students of class-9.

Tools of research

Since the main purpose of the present research is to design and test an English subject Aptitude program, it is natural that an instrument should be designed. Hence in the present research the researcher has used self-made learning program as a tool. Also a self-administered pre-test and post-test for English subject Aptitude is also designed to check the effectiveness of the Rachel Competency

Enhancement Program.

Sample for Study

In this scheme 60 male and 60 female students in the control group and 60 male and 60 female students in the experimental group. has been included. 60 rural and 60 urban female students in the control group and 60 male and 60 female students in the experimental group. has been included.

Aptitude for English Subject post-test.

Ø Experiment-wise mean score of the students of experimentalgroup ruralhabitat malewere found to be higher than the mean score of the group of students of control group ruralhabitat maleon Aptitude for English Subject post-test.Aptitude of students ofexperimentalgroup ruralhabitat malewas found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control group ruralhabitat maleon Aptitude for English Subject post-test.

Ø Experiment-wise mean score of the students of experimentalgroup femalewere found to be higher than the mean score of the group of students of control group femaleon Aptitude for English Subject post-test.Aptitude of students ofexperimentalgroup femalewas found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control group femaleon Aptitude for English Subject post-test.

Ø Experiment-wise mean score of the students of experimentalgroup rural habitatwere found to be higher than the mean score of the group of students of control group rural habitaton Aptitude for English Subject post-test.Aptitude of students ofexperimentalgroup rural habitatwas found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control group rural habitaton Aptitude for English Subject post-test.

Ø Experiment-wise mean score of the students of experimental groupwere found to be higher than the mean score of the group of students of control groupon Aptitude for English Subject post-test.Aptitude of students ofexperimental groupwas found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control groupon Aptitude for English Subject post-test.

Effect of score of post-test and pre-test control group

Ø Mean score of the post-test control group were not found to be higher than the mean score on pre-test of the group of control grouprural habitat male.Aptitude of students of control group on the post-test was not found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control grouprural habitat male.

Mean score of the post-test control group were not found to be higher than the mean score on pre-test of the group of control grouprural habitat female.Aptitude of students of control group on the post-test was not found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control grouprural habitat female. Mean score of the post-test control group were not found to be higher than the mean score on pre-test of the group of control groupurban habitatmale.Aptitude of students of control group on the post-test was not found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control groupurban habitatmale.

Mean score of the post-test control group were not found to be higher than the mean score on pre-test of the group of control grouprural habitat .Aptitude of students of control group on the post-test was not found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control grouprural habitat .

Mean score of the post-test control group were not found to be higher than the mean score on pre-test of the group of control groupurban habitat.Aptitude of students of control group on the post-test was not found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control groupurban habitat.

Mean score of the post-test control group were not found to be higher than the mean score on pre-test of the group of control group.Aptitude of students of control group on the post-test was found to be significantly higher than Aptitude of group of students of control group.

Conclusion

The present study examined the effectiveness of students through a program designed to improve students' Aptitude in English. Little effort has been made to overcome the aversion to the English subject. In the present study there is a possibility of some errors due to the personal limitations and abilities of the students. The present research paper has been prepared by this research with the purpose of helping to raise awareness among teachers, students and society in English subject. This research will be worthwhile if it becomes a guide and useful for those involved in English education.

000

Research Article

(Research Article)

Social Value of Parents and Children in Joint and Nuclear Families

Research Author :
Dr. Harshadkumar R. Thakkar

The importance of the family in making and molding an individual on the one hand, and influencing social groups and patterns on the other, has been recognized by social scientists. The present study focuses on individual level changes affected by the modifications that are taking place in the family under rapid on-going socio-cultural changes in contemporary Indian society. A sample was taken from the Ahmedabad City. Total 360 participants (240 parents and 120 children) were included in this study. The age of the parents was ranging 35-45 years with mean age of (44.62) and minimum graduation level of education and children of age group from 15-17 years. The results show the family structure does not effect on parents and children social value in the family. There is no significant differences were found between parents and children social value in joint families. There is significant differences were found between parents and children social value in nuclear families. By identifying salient factors in the family structures and its influence on social values, the study hopes to provide significant implications for human development in changing social contexts.

Keywords: Family Structure, Social values, Cultural dimensions.

Family Structure

Family structure is conceptualized as the configuration of role, power and status, and relationships in the family. In India the structure of family can be seen broadly as of three types. The traditional family is the one living jointly and inclusive of members from different generations. The extended family is one, where married sons and brothers live separately, but they continue to have joint property and share income. The nuclear type of family is the one, in which the group consists of a male, his wife and their children.

In nuclear families the concept is 'me my wife and my children' with no place for others is alarming. These are some common features seen in contemporary urban society in India.

Family joint ness still continues to be major sociological phenomena. Kapadia K.M. (1966) has defined a joint family as; "they should dwell in the same house, take their meals and perform their worship together and enjoy property in common".

Structural changes involve similar role differtiations in almost all aspects of social life. Growth in science and technology adds impetus to process and finally accelerates the momentum of change. Change cease to be exceptional phenomena, as in the traditional societies, it becomes a day-to-day fact of life to live with it is not merely tolerated, it is glorified. Under these circumstances there is often log between cultural and social structural forms of modernizing in these societies.

Social Values

Dr. Harshadkumar R. Thakkar
Department of Sociology
C. U. Shah Arts College,
Ahmedabad, Gujrat

Values have been defined as the conception of the desirable Kluckhohn, (1951) influencing selective behaviour. Social scientists also agree that values are very important and serve as guiding principles in people's lives. Values are important for understanding various social-psychological phenomena (Schwartz & Bardi, 2001). Values are embodied in social activities relationships, and institutions. However, the latter are subject to change and adjustment while values have a relative permanence and universality. Studies that report relations of values to behavioural intentions in hypothetical situation (Feather, 1995; Sagiv & Schwartz, 1995) demonstrate that people want to act according to their values. Value priorities prevalent in a society are a key element, perhaps the priorities of individuals represent central goal that relate to all aspects of behaviour. Mukerjee (1949). Values are believed to be important for social equilibrium and maintance of the system. Values play crucial role in determining human behaviour and social relationships as well as maintaining and regulating social structure and interactions on the one hand and giving them cohesion and stability on the other (Verma, 2004).

Differences in family pattern may bring about differences in social values and ideologies. Ganguli, (1989); In traditional societies like India, the spiritual values as embodied in its religion and philosophy can claim to be the primary and original source of all derived social values. In the Indian situation, these seem to have been accompanied by social change processes such as urbanization and industrialization. The nuclear family structure is assumed to favor sharing of roles rather than a hierarchical structuring of roles, liberal rather than conservative attitudes, role diffusion an overall egalitarian outlook rather than a traditional out look. (Rokeach, 1973, Schwartz, 1992, Schwartz & Bilsky, 1987, 1990, Triandis, 1994).

It has been seen that social values are drastically affected by urban influence and subsequent assimilation of western ideas due to the effect of modernization. Traditional values have declined considerably. Even the teaching of civic virtues of love, co-operation, obedience, tolerance, discipline and renouncement, which a child used to learn at home in a joint family and which enabled the child to grow up as a good citizen, has been taken over by other social institutions. Sagiv and Schwartz (2002) found that values predict whether counselees exhibit independent verses dependent behaviour throughout a number of career counselling sessions.

Objectives

The primary objective of the present study was to investigate the relationship of family structure and social values as they relate to family structure in contemporary Indian society. Specifically the study attempts to look at the relationship of social values of Parents and their Children in joint and nuclear families.

Method

Sample

120 Urban middle class families of which 60 nuclear and 60 joint families, with at least one child were taken. The age range of parents was 35-45 years with mean age of (44.62) minimum graduation level of education. The child was a student of class 10 or 12 with mean age of (15.70) in the age range 15-17 years.

Tools

Schawartz Value Survey (1990) for Children: In order to understand chhildren's values a scale consisting of 16 items to measure was the 10 value.

Results & Discussion

Means and Standard deviations for the different scores are shown in the table 1. Parents and children social value were examined on all the test variables using t-ratio. Table 1 indicative of the difference between Parents & children social value in joint and nuclear families. Results indicate family structure does not affect the social value in the joint and nuclear families. Table 2 shows there is no significant differences in Social Value of Parents and Children in joint families. Table 3 indicates there is significant differences were found between Parents and their Children Social Value in nuclear families. Father & Children ($t=2.28$, $p<0.05$), Mother & Children $t=2.62$, $P<0.01$).

To see the effect of type of family & social value of parents and children 1 test was calculated. Family structure doesn't affect the social value of Parents and their children. Whatever type of family (joint and nuclear) but social values remain same because value is fundamental concept in early socialization of children. Parents taught good habits and give importance for cherished social value to teach their children's. Mukerjee (1949) contend as was expected, the child and parental value are highly correlated Since, Family is base of socialization process and parents are the first teacher's. It can be said that the values are transferred through verbal or non-verbal interaction and thus the relations is very significant one. Roland (1988), and Garg and Parikh (1993) made meticulous observations about family dynamics, family values, and the role of family relationships in the development of the value system of the individual. He also noticed that mainly the elderly women of the family transmit the cultural value system to the young. Parents show high social value in achievement & stimulation and low in power. Children show similar value pattern according to her or his parents. This value system emphasizes solidarity and cooperation, affection and understanding, following the traditional norms and customs of the family. Garg and Parikh (1993), the upper middle class, namely, the

educated urban elite (MBAs) are the crossroads as along with familial values such as obedience to parents, conformity, self denial, and fulfilment of parental expectations, Western values such as having a meaningful and creative life space, quest for more knowledge, achievement and no complacency are also imbibed.

There is no significant difference between Parents Social Value & Children value in Joint FamiliesIn Indian traditional family there have several changes in structural and functional but still children's have more respect to their elders. Thus there is strong emotional involvement with the family Also, girls show a tendency of having similar values as of their mothers and boys to that of father. This can be attributed to the closeness of these to each other. Girls are generally said to be close to mothers and boys take father to be a model in joint family system. The values inculcated by the socializing agencies have their source in region and tradition. Both the family and educational institutions may make efforts to inculcate cherished values in their wards as far as possible.

There are significant differences between Parents & Children Social value patterns in nuclear families. In the nuclear families parents gave more freedom to their children and they have n control on them.

Conclusion

Due to the western impact over contemporary Indian social system, tremendous changes affected every walk of life. These changes have influenced the society not only overtly but also have provided alternatives to the existing values and ideas towards the different aspect of society and human behaviour. But on the other hand, it is also equally true that Indian traditions are so deeply rooted that these alternatives have been succeeded in total transformation of the society.

This finding suggests that value play a vital role in development of the human beings. All the human functions are governed by the individual & collective values. This study provides for an understanding of the changing conditions of Indian family and the social and family values that exist in contemporary Indian society. However, further research is needed to study the relationships of several changes and attitudes that are taking place in society and its impact on family structure and development.

000

References

Aileen Ross (1961). The Hindu Joint Family in its Urban Setting, Bombay: Oxford University Press.

Ames, M. M. (1969). Modernization and Social Structure: Family, Caste, and Class in Jamshedpur, Economic and Political Weekly, 4, 1217-1224.

Bhushan, A & Ahuja. M. (1987). Value difference among adolescence, Youth and adults belonging to different levels of educational institutions. Journal of Psychological Research, 31, 53-62.

Caldwell, J. C., Reddy, P. H. & Caldwell (1984). The determinants of family structure in rural South India. Journal of Marriage and Family. 46, 215-229.

Desai, I.P. (1956). Joint Family in India : An Analysis Sociological Bulletin. 5, 144-156.

Gore, M. S. (1968) Urbanization and family change. Bombay : Popular Prakashan.

Goode William J. (1987). The Family Second Edition. Prentice Hall of India Private Limited.

Gore, M. S. (1978). Chanes in India. In E J Anthony & C. G. Chiland (Eds). The child in his family: children and their parents in a changing world (pp365-374). New York, wiley.

Hoch. E. (1966). The Changing Patterns of Family in India, Bangalore Christian Institute for the study of Religion and Society.

Hales. S. (1989). Valueing the self: understanding the nature and dynamics of self-esteem. In perspectives: Saybrook Institute, and Francisco.

Kapadia, K. M. (1966). Marriage and Family in India (3rd ed.), Bombay : Oxford University Press.

Kagitcibasi, C. (1996). Family and human development across cultures Mahwah, NJ. Lawrence Erlbaum.

Nimkoff, M. F. (1959) Some Problems concerning research on the changing family in India in Sociological Bulletin, 7.2.

Rokeach. M. (1973) The nature of human values, New York Free Press.

Ssing, J. G., and Thapar, G. (1984) Impact of parental values on children. Indian Journal of clinical Psychology, 11. 105-109.

Snha JB. P. (1990). The salient Indian Values and their social eco-ogical roots. Indian Journal of Social Sciences, 3. 477-488.

Schonpflug, Ute (2001) Intergenerational transmission of values. The role of transmissison belts, Journal of Cross –Cultural Psychology. 32, 174-185.

Singh, Y. (1973). Modernization of Indian Tradition, Thompson Press, New Delhi.

Schwartz, S. H. & Bilsky, W. (1987). Towards a psychological structure of human values. Journal of personality and Social Psychology. 53, 550-562.

Sinha, D. (1977) Ambiguity of role models and values among Indian Youth, Indian Journal of Social work, 38, 241-247.

Sinha, D. (1982) Some Recent changes in the Family and their Implications for Socialization. Paper presented to the conference on "Changing Family in a changing World, organized by The German Commission for UNESCO, Munich.

Schwartz, Shalom H. (1994). Are there universal aspects in the content and structure of values ? Journal of Social Issues, 19-45.

Schwartz, S. H., Sagiv, I. & Boehnke, K. (2000). Worries and values Journal of Personality. 68, 309-346.

Schwartz, S. H., & Boehnke, K. (2002). Evaluating the structure of human values with confirmatory factor analysis. Manuscript submitted for publication.

Verma, J. (2004). Social values. In J. Pandey (Ed.), Psychology in India revisited: Developments in the discipline (pp. 69-117) New Delhi, Sage.

Sociology, J. K. Dave, Anda Prakashan, Ahmedabad.

Social Psychology, Sharma, Kanpur.

www.serachgooglefamilyconcept

Research Article

(Research Article)

Exploring Indian Mythology in Modern Scenario

Research Author :
Patel Sitaben Kalubhai
Research Scholar
Guide : Dr. M. F. Patel

Patel Sitaben Kalubhai
Research Scholar
Smt. C.C. Mahlia Arts and
Sheth HNGU, Patan
C.N. Commerce College,
Visnagar

Abstract:

Devdutt Pattanaik is knowledgeable in Indian folklores giving experiences about varieties in the discernment and examination of Indian legendary stories and Indian culture. He gives intelligent comprehension of each and every part of Indian culture, Gods and Goddesses. How he might interpret the subject remaining parts at different aspects. In 'Sita', Devdutt Pattanaik examinations the Ramayana, the inspirations of the characters, and the activities of the human brain, causing the pursuer to understand introspect. Devdutt Pattanaik takes us through the exciting bends in the road of the immortal story that has developed north of millennia, adorned by local retellings. In a style similar as in 'Jaya', he advances his translation, and that of gossips before him - from Valmiki's Ramayana, to Sanskrit plays, puranas, renditions in different Indian dialects, in Jain and Buddhist practices, and in south-east Asia.

While we might have seen a wide range of stories and understandings spinning around the epic Ramayana, this specific book of Devdutt Pattanaik retells the legendary, causing to notice the many oral, visual and composed retellings made in various times, better places, by different writers, every one attempting to address the riddle in their own novel manner. The authors today have likewise attempted to change the types of traditional folklore to address the contemporary issues of today. Despite the fact that the retellings are changing with an alternate face each time the center embodiment of the story continues as before. There will be a constant upsurge in the fanciful substance as long as the confidence and culture is flawless in the general public.

Keywords: Devdutt Pattanaik, Indian mythology, Ramayana, Sita, contemporary

Introduction:

Folklore assumes a significant part in human existence as it offers us the responses to numerous strict practices and distinction among great and fiendishness. Take any folklore; it will essentially be the excursion of hero, who battles a great deal to carry on with a moral life.

"The Western story celebrates a linear construct of life – with one beginning, one ending and one life in between. The Indian story celebrates a cyclical construct of life – with many beginnings, many endings and many lives in between. Thus stories reflect the culture they emerge from, while reinforcing the culture at the same time (Pattanaik, Culture: 50 Insights From Mythology 5-6)."

Accordingly, he faces circumstances where s/he separate among great and fiendishness and learns numerous virtues which towards the end helps him/her to overcome the abhorrent in the story. Indeed, even before the appearance of composing abilities, fantasies existed in the public eye through oral custom. It formed the underpinning of human advancement strict, culture, and way of

thinking, writing, craftsmanship, tradition and custom. Legends of a progress stories which casings and give construction to the way of life of that specific civilization. Consequently, concentrating on legends, sacred texts, sagas and sacrosanct book of a specific religion will give a profound knowledge into its conviction framework and social design. Devdutt Pattanaik's Sita tries to incite thought, to rouse, to grow one's psyche and understand one's true capacity.

"Everybody lives in myth. This idea disturbs most people. For, conventionally, myth means falsehood. Nobody likes to live in falsehood. Everybody believes they live in truth. But there are many types of truth. Some objective, some subjective. Some logical, some intuitive. Some cultural, some universal. Some are based on evidence; others depend on faith. Myth is truth that is subjective, intuitive, cultural, and grounded in faith (Pattanaik, Myth = Mithya: Decoding Hindu Mythology xv)."

The creator calls attention to the errors of human instinct - people esteem things over contemplations, judge as opposed to figuring out one mores' perspective, live in dread not confidence. What is implied in the epic is made unequivocal. Pattanaik explains the contrast among jati and varna, shows the significance given to devotion (of all kinds of people), discusses the results when a man compels himself on a lady, and notices the consideration of eunuchs in the story.

Devdutt's Exploration on Myth:

There have been a few contemporary creators who have reevaluated or retold Indian legends with another viewpoint. Dr. Devdutt Pattanaik is presently one of the most amazing mythologists of India. His books like Indian Mythology: Tales, Symbols, and Rituals from the Heart of the Subcontinent, Sita: An Illustrated Retelling of Ramayana, Jaya: An Illustrated Retelling of Mahabharata, Shikhandi: and Other Queer Tales They Don't Tell You, The Girl Who Chose: A New Way of Narrating the Ramayana, Myth = Mithya: A Handbook of Hindu Folklore and some more, are for the most part retelling of the accounts taken from extraordinary Indian legends like the Ramayana and the Mahabharata and a few other fanciful stories from different various sources.

"Within there is regard for the law of marriage; without there isn't any. Within, Sita is Rama's wife. Outside, she is a woman for the taking. Ravana knows that if he enters Rama's hut and forces himself on Sita he will be judged by the rules of society. But when he forces himself on Sita outside the Lakshmana-rekha, he will be judged by the laws of the jungle. Within, he will be the villain who disregarded the laws of marriage. Outside, he will be hero, the great trickster (Pattanaik, Myth = Mithya: Decoding Hindu Mythology 100)."

Sita is a book that consolidates numerous forms of The Ramayana, alongside some measure of Devdutt's creative mind.

"In certain spots, I have utilized my creative mind, adding to the long custom of adding stories to the epic —, for example, the section where Sita's recipes are utilized in Lankan kitchens to take care of those exhausted of war. There is another part where Sita leaves the royal residence when Ram ousts her. This is enlivened by people tunes that ladies have sung for ages — they sound so suggestive and agonizing it appears they totally figure out Sita's agony. I've attempted to bring this out," says Devdutt.

Devdutt Pattanaik's Sita looks to incite thought, to move, to extend one's brain and understand one's true capacity. The creator calls attention to the errors of human instinct - people esteem things over considerations, judge as opposed to grasping one mores' perspective, live in dread not confidence.

"A story is basically a plot but narration is the process by which a story is told. The same story sounds different when the storyteller is different. And every storyteller changes his narration depending on the audience. All this makes storytelling rather complex, which is why our view of the world and our truths are also complex (Pattanaik, Culture: 50 Insights From Mythology 6)."

What is implied in the epic is made express. Sita gives comprehension of the fanciful ladies characters like Sita, Draupadi, Mandodari, Kunti, Gandhari, Surpankha, Satyavati, Urmila, Kaikeyi and some more. He reflects various characteristics of male and female character. In his book Sita he grasps Sita a lady of shrewdness:

“Sita's dad never realized the world that was the kitchen. Sita's mom never realized the world that was the court. Yet, Sita

acknowledged she knew both. This is the way the psyche grows, she contemplated internally. This is the means by which Brahma turns into the Brahman. She was a Brahmin, she understood, searcher of intelligence as well as transmitter of shrewdness (Pattanaik, Myth = Mithya: Decoding Hindu Mythology 65)."

Devdutt could sound sermonizing at many focuses however the touchy points that he is managing makes him sound like an all-knowing essayist. The book answers numerous 'why's' and 'how's' related with legendary characters, which were unanswered till now. There are numerous impressions of legendary characters in human character even today, for example, one will find individual confined by his own moral standards like Ram, there are numerous autonomous ladies today who have their own considerations and follow their impulse. The personality of Ram should be visible as extremely confounded to be valid truly on account of his choices that he makes during dilemmatic circumstances.

"We earn, save, spend. Brahma is the one who earns, brings in the money. Vishnu spends and invests it in the market, enabling exchange so that commerce flourishes. Shiva is someone who is not interested in money at all; his is the attitude of non-attachment, vairagya. On the other hand, Brahma's children are so interested in money that they hoard and fight over it, which is why no one worships Brahma or his children. The one who does business with the world, is involved with it, is Vishnu, so we worship him. When we grow old and wish to get rid of our desires, we can follow Shiva's example by renouncing money. Each of us has all these qualities, mostly Brahma's, but we shouldn't encourage those. We should harness Vishnu's qualities, so that Lakshmi, money, follows us. Towards the end of our life, we should become like Shiva; renounce the material world and move on (Pattanaik, Devlok with Devdutt Pattanaik 23)

In Devdutt Pattanaik's 'Sita', Sita isn't a casualty. She has grown up standing by listening to the sages talk about the Upanishads. She lifts Shiva's powerful bow effortlessly, and kills Ravana's twin in a wild fight. She is insightful and solid. A single parent to her children, she is free, not deserted. Slam is seen battling to find some peace with what he should do as lord. He stays gave to Sita, and strolls into the stream Sarayu reciting her name. The creator compares culture (where society is limited by rules) with nature (where there are no limits). He thinks about Ram, ruler and upholder of rules, with Krishna, the kingmaker who curves rules. He draws out into the open images and allegories, themes and examples. The composing is strong, the manner of expression fresh. The Ramayana is a story of feeling - dutiful friendship, devotion, love, covetousness, desire and vindictiveness. Pattanaik's reminiscent writing draws out these feelings in the entirety of their power. The peruser is left inclination a profound feeling of sympathy with the characters.

Conclusion:

By rethinking fantasies from loved works of art and old stories, Devdutt investigates the secretive idea of people. He explains and clarifies on the underlying driver of customs and no practices in India even today. The persona of Gods and Goddess is both dreaded and revered in India when they are viewed as mortal people. Ending with a quote presented in his all books:

Within infinite myths lies the eternal truth Who sees it all? Varuna has but a thousand eyes, Indra has a hundred, You and I, only two.

(Pattanaik, Myth = Mithya: Decoding Hindu Mythology ix)

000

References

1. Pattanaik, Devdutt. 7 Secrets of the Goddess. New Delhi: Westland Publications Ltd, 2016. Print.

2. —. Culture: 50 Insights From Mythology. Noida: Harper Collins Publishers India, 2017. Print.

3. —. devdutt.com. 7 February 2014. Web. 7 February 2017.

4. —. devdutt.com. 15 October 2013. Web. 7 February 2017.

5. —. devdutt.com. 13 September 2008. Web. 7 February 2017.

6. —. devdutt.com. April 2006. Web. 7 February 2017.

7. —. Devlok with Devdutt Pattanaik. Gurgaon: Penguin Random House India, 2016. Print.

8. —. Devlok with Devdutt Pattanaik 2. Gurgaon: Penguin Random House India, 2017. Print.

9. —. Devlok with Devdutt Pattanaik 3. Gurgaon: Penguin Random House India, 2018. Print.

10. —. Indian Mythology: Tales, Symbols, and Rituals from the Heart of the Subcontinents. Vermont: Inner Traditions Internationals, 2003. Print.

11. —. Myth = Mithya: Decoding Hindu Mythology.

New Delhi: Penguin Random House, 2006. Print.

12. —. SITA: An Illustrated Retelling of the Ramayana. Gurgaon: Penguin Random House India, 2013. Print.

13. —. The Goddess in India: The Five Faces of the Eternal Feminine. Inner Traditions, 2000. Print.

Research Article

(Research Article)

Freedom Of The Press And The Human Rights

Research Author :
Dr Manishkumar Ramanlal Pandya

Dr Manishkumar Ramanlal Pandya
M.Sc,M.Ed Ph.D Assistant Teacher
Jainacharya Anandghansuri Vidyalaya
Himmatnagr Gujarat 383001

1. Introduction

While international human rights documents emphasize the intrinsic value of a free media, the human rights discourse has over the years tended to relegate it to the background because of tensions arising from divergent value systems, privacy protection and hate speech issues. While the most serious source of tension, the balance that needs to be struck between protection of minority groups from hate speech on the one hand and freedom of expression on the other, is difficult to reconcile at the level of abstract concepts or universal values, most nations have struck a proper balance suited to their own experience and specific circumstances. A free media with its impact on public opinion and institutions in a democratic system can be of great instrumental value in promoting human rights observance. Its effectiveness, however, varies depending on the nature of the human rights violations, with the remedial impact being the greatest in routine cases of custodial violence and the like and the least in insurgency type of situations where state policy seeks to suppress a terrorist or secessionist group, The greatest challenge before the human rights community and the media is to get the democratic system to respond sensitively and safeguard human rights in difficult situations when national security concerns come to the fore.

2. Freedom of the Press in International Human Rights Documents

Freedom of the press and the media, which forms part of the larger right of freedom of speech, is an important, though over the years somewhat diminishing, component of international human rights documents starting from the Universal Declaration of Human Rights and through the International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR) and the regional covenants. The Universal Declaration elevates it to the preamble that states, 'The advent of a world in which human beings shall enjoy freedom of speech and belief and freedom from fear and want has been proclaimed as the highest aspiration of the common people. Article 19 specifies, 'Everyone has the right to freedom of opinion and expression; this right includes freedom to hold opinions without interference and to seek, receive, and impart information and ideas through any media and regardless of frontiers'.

In the European convention for the Protection of Human Rights and Fundamental Freedoms and in the American Convention on Human Rights, the basic right of freedom of expression is guaranteed in a way similar to Article 19 of the ICCPR. The European Convention in Article lOis somewhat more elaborate on the grounds on which restrictions may be imposed: '(2) The exercise of these freedoms, since it carries with it duties and responsibilities, may be subject to such formalities, conditions, restrictions, or penalties as are prescribed by law and are necessary in a democratic society, in the interests of national security, territorial integrity, or

public safety, for the prevention of disorder or crime, for the protection of health or morals, for the protection of the reputation or rights of others, for preventing the disclosure of information received in confidence, or for maintaining the authority and impartiality of the judiciary.'

The American Convention (in Article 13) seeks also to protect freedom of the press and the media from indirect controls: '(3) The right of expression may not be restricted by indirect methods or means, such as the abuse of government or private controls over newsprint, radio broadcasting frequencies, or equipment used in the dissemination of information, or by any other means tending to impede the communication and circulation of ideas and opinions.' It allows censorship of certain categories of expression: '(4) Notwithstanding the provisions of paragraph 2 above, public entertainments may be subject by law to prior censorship for the sole purpose of regulating access to them for the moral protection of childhood and adolescence.' Like the ICCPR, it enjoins on the parties to ban propaganda of hate and incitement: '(5) Any propaganda for war and any advocacy of national, racial, or religious hatred that constitute incitements to lawless violence or to any other similar illegal action against any person or group of persons on any grounds including those of race, colour, religion, language, or national origin shall be considered as offenses punishable by law.'

3.Freedom of the Press in the Human Rights Discourse

The growing body of what may be regarded as the human rights discourse comprising books, journals, papers, theses and other publications, material on Internet websites, conferences and seminars, and generally the work and delineation of issues by human rights organizations tends to focus on groups such as children, women, victims of torture, conflict and crime, dissidents, prisoners of conscience, and others whose liberty is curtailed, and refugees. Organizations such as the Committee to Protect Journalists focus specifically on the issue of freedom of expression and report on the state of human rights. The US State Department's annual reports generally contain an assessment of press freedom in different countries.

The delineation of free press and freedom of expression issues in the human rights discourse shows that the concern is largely over aggravated forms of assault on freedom of expression including killing and imprisonment of journalists and writers and physical attacks on newspaper premises. Heroic defiance of censorship and restrictions that entail penalties and suffering is highlighted while silent compliance is hardly noticed. It would seem that restrictions on the freedom of expression coupled with restrictions on liberty or violations of physical security are taken seriously, not just restrictions on freedom of expression per se. At the same time, those who resort to more subtle measures to muzzle the press hardly come under such scrutiny.

This may be in part because of rights touching on life, physical wellbeing, and freedom being accorded a higher priority. Also, the press and the media are not seen as disadvantaged, needing as much support as other groups do. In an interesting paper on the debate on a new broadcasting bill in India, Mark N. Templelton notes that there was no discussion from the human rights perspective in terms of the fundamental freedoms and the right to seek, receive, and impart information. He suggests, 'Perhaps they (human rights activists) think that the satellite broadcasters and cable operators will fight for media freedoms and that the human rights community can spend its limited time and energy elsewhere.' The fact that substantial sections of the press and the electronic media are associated with large and profitable groups would only go to reinforce this attitude.

4. Tensions between Free Press and Human Rights

There are, however, sources of tension as well between a free press and human rights advocates. In the first place, human rights advocacy demands a certain commitment and a passionate espousal of good causes that cannot be found in the disembodied, neutral voices of journalists. Journalism tends to be value-neutral, with its insistence on getting all sides of a story and while there is still plenty of room to write with a great deal of sensitivity and feeling and make a deep impact on public opinion, the demands of objectivity need to be kept in mind.

It is not uncommon for human rights advocates to express their disappointment over the media which they see as reflecting human rights

concerns inadequately or not at all. Justice RajinderSachar, a noted civil liberties proponent in India has this to say of the role of the Indian press in relation to its coverage of human rights abuses:"'This attitude (of the media) was disappointingly reflected in the passive, even negative, role the media played when dealing with the working of the Terrorists and Disruptive Activities (Prevention) Act. Governments conveniently invoke the sensitive ground of national security to silence the media from reporting human rights violations in affected areas. Unfortunately, the media, by and large, has a tendency to accept this gratuitous advice without much demur.

Secondly, human rights advocacy leans towards greater privacy protection, especially in the case of victims of rape, violence and accidents, and children. Some of the more blatant cases of violations of privacy by the media that have been brought up before the courts include the case of reporters entering the hospital room and photographing the nine-year-old son of a famous French actor who had been injured in an accident. a story with photographs in Time magazine of a woman with a severe eating disorder (under captions such as 'She eats for ten. and photographing and interviewing in the hospital room an English actor who was semi-conscious after having suffered a severe head injury?

It was in Rwanda, however, that radio was used most insidiously and blatantly in the service of genocide. The official government station, Radio Rwanda, initially 'played a pernicious role in instigating several massacres', according to the Special Rapporteur to the UN Commission on Human Rights, B.W Ndiaye. When Radio Rwanda was brought under the control of moderates as part of the reforms aimed at reconciliation, the extremists among the officials in the military and in business started the Radio-Television Libre des Milles Collines (RTLM) which gained a large audience for its popular talk show format. It operated in conjunction with the ruling party's private militia, Interhamwe, and typically it would name and criticize an individual and immediately Interhamwe groups would find and attack him. It became even more active in instigating genocide after April 1994 when it started organizing roadblocks ('RTLM radio is with the people manning the roadblocks'. was a constant announcement) and naming 'enemies' who were then stopped and killed by militias. Typical of its propaganda was a broadcast on 15 April 1994, when an announcer exhorted the listeners: 'If you do not want to have Rwandians exterminated ... stand up, take action ... without worrying about international opinion.

It still found that his rights had been violated but on a considerably smaller scale than had been found in its November 1999 decision. It ruled that the violations would be taken into account in his trial. If found not guilty by the trial chamber, he would be entitled to financial compensation; if, on the other hand, the trial chamber found him guilty, the violations would be taken into account in determining his sentence. He has since been indicted on nine counts including crime against humanity and violations of the Geneva Conventions.

5. Conclusion

The convention notes the conflict between prohibition of hate speech and the right to freedom of expression and calls for 'due regard' for rights enumerated in the Universal Declaration including the rights of freedom of speech, association, and conscience. The actual balance that is struck between the need to protect vulnerable ethnic or religious minority groups and the right to free speech varies widely among nations. The United States' approach tends to be the most tolerant of free speech. Europe, Germany, France, Austria, and the Netherlands maintain broad restrictions on racist speech including Holocaust denial while the United Kingdom generally emphasizes the public order aspect. Some other countries, including India, prohibit the wounding of religious or ethnic sentiments and impose wide restrictions in this area. Broadly, the extent of freedom of speech allowed and the degree of protection for vulnerable groups against hate speech reflect the experience and the specific circumstances in the individual countries. Countries that have seen the impact of hate propaganda have put in place a regime more restrictive-of free speech and more protective of minority groups. A detailed discussion of hate speech laws is beyond the scope of this paper but it is clear enough that one could lean towards greater protection of ethnic and religious groups from hate propaganda or towards allowing a greater latitude for free speech.

000

Research Article

(Research Article)

People In The Raj Quartet- A Study

Research Author :
JyotiYadav
Research Scholar, Department of English
Dr. Pratima
Research Supervisor,

JyotiYadav
Research Scholar,
Department of English,
Maharishi School of Humanities & Arts, MUIT,
Lucknow

Abstract

People are an essential part of a successful book, according to E.M. Forster. Raj Quartet is also a brilliant book. The Facets of the Novel E, M.Forster says in his analytical book: "We don't need to wonder what happens next, nor to whom did it happen. . Because the characters of a tale are typically human, it seemed convenient to entitle the People' part to this element" (Forster 54) of the interpretation of the readers of the book, he says: "And if the writer desires, the author will thoroughly understand the peopling of a novel, and reveal his inner and his outer existence. The citizens are portrayed by the numerous characters.

There are too many unforgettable people whose lives are featured in the book pages. In the middle of this, a beautiful English nurse and her Indian lover fend with themselves. It's a fascinating tale that evokes emotions of remorse and respect for both. A tone of cleverly delineated characters exists: Daphne, Lily, and the Whites. Through the action of the protagonists in introducing all of the subtleties of class and race, Scott reveals that individuals with diverse communities and traditions couldn't work together on an equal footing.

Keywords: Daphne, Characters, Protagonists, Merrick, Raj, Sarah, Miss, Hari Layton.

Introduction

In 1942, the waves of transition are felt everywhere. A British woman is attacked by Indians in this chaotic scenario-and all heck breaks out. As we remember, "the Bibighar event" becomes a metaphor: the beginning of the British Raj 's demise. [1] The exceptional success of Pau1 Scott is to encapsulate this massive canvas of certain misfits' private lives. [2] The English girl, with no charm: Hari Kumar, or HaryCoomer, as he prefers to name himself; the Indian, outside; and English inside; and Merrick, the police officer, mindful of his low status in British society. This triangle is like anything else seen in fiction, when love and hatred connect

these characters together similarly, dragging them through the eventual vortex in the gardens of the Bibighar. [3]

Scott is the only British writer to write without a clue of racial superiority .... All three main characters can identify a bit of themselves. We find a truly empathetic English author in Paul Scott.

The Raj Quartet is better regarded as the four works investigating the British Raj in India by English and Indian character. The Raj Quartet is popular for its four works. The Diamond in the Crown, The Day of the Scorpion, The Towers of Secrecy and The Spoils Distribution were some of the most sensitive and personal cultural experiences with a colonial sense from the twentieth century. Paul Scott produces dynamic, riveting characters and indescribable accounts from his portrait of Mohammed Ali Kasim, Muslim leaders, to the unorthodox colonel 's daughter, Sarah Layton. Scott examines how the British had projected the reality of the subcontinent on a fantasy of themselves and of India. [4]

Female Characters

Paul Scott builds multi-dimensional, multi-faceted personalities. The women addressed in the texts show that, although they exist in a masculine patriarchal culture, they sometimes control the man and while many of them suffer in their everyday life, they are not victims of individual individuals, but of a specific political and ideological structure. [5]

Miss Daphne Mannerss

Miss Daphne Mannerss is a young British girl who comes to India with her Aunt Ethel Manners after becoming an Orphan and later transfers to a friend of her family, Rajput Princess Lili Chaterjee who stays in House in Mayapore. She's a rounded character since she evolves over time. [6] "She hit me, well, good natured but incompetent when I first saw Daphne. She was tall and fairly shy. She has always been losing stuff, "the girl responds to Lady Chatterjee. [7]

Sarah Layton And Ahmed

"I doubt anything and every possibility. I'm not comfortable with having everything happen, I'm not willing to allow everything happen. If I don't alter it I'll never be happy." Sarah is one of the most beautiful protagonists in the Quartet. She's still a round character and she evolves over time. [8]

In view of all the traumatic incidents in her life and her long-lasting friendship with a Muslim Congress chief Ahmed Kasim, Sarah Layton, a leading female actress in the Raj Quartet, survives the adversity of the destiny. She experiences Barbie Bachelor's collapse and death, her mother's demise, her sister Susan 's emotional breakup, Ronald Merrick's startling demise, and Ahmed Kasim 's tragic failure. [9]

Barbie Bachelor And Miss Edwina Crane

In the same missionary organization are Barbie and Edwina. Both are flat protagonists, so the period doesn't shift when they are aged. Someone has turned a gang of marauders away from the kindergarten since Barbie replaced Edwina with patriotism, where she taught with the strengths of her personality. Edwina was the first touch. In the light of Barbie's view of Edwina, it is not particularly surprising and so Edwina's suicide was unavoidably an extremely big shock. [10]

Mr. Chaudhuri And Hari Kumar

The picture of the "unknown Indian," which she replicated many times at The Towers of Silence, not only symbolizes Mr. Chaudhuri and Hari, but also reflects all the other futile attempts of different characters to cross the cultural divide between Britain and India that eventually contributed to both sides misery and bloodshed. [11] Barbie completes the replicated lives of Edwina and Daphne thematically and, as Boyer says, "shows that the dissatisfaction in interpersonal affairs is not confined to romantic affection." Barbie reveals that all these types of compassion are focused on the same humanist imperative. Through this connection Scott compares humanism to faith and sexuality and, through its genuine humane purpose, reveals its inadequacy and incapacity in conquering imperial conflict. [12]

Male Characters

Hari Kumar

Hari Kumar, the novel hero. He is a rotating man, and as time progresses, he evolves. Never was Hari Kumar granted the ability to know his Indian origins. He was brought to England as a child to study at a renowned Chillingborough State Academy, and spent his school holidays with the Lindseys, a British dynasty. This began to understand the guiding desire of his father to see his only son excel under the same circumstances as an Englishman. [13]

Capt. Ronald Merrick

Scott's most interesting development is Ronald Merrick 's character. Perhaps the truest measure of the nature of any other character is his response to Merrick 's peculiar combination of heroism and aggression, decency and depravity. The narrator sends the reader conflicting messages from the beginning of The Diamond in the Crown. [14] Merrick is evidently arduous and assumed to be decent if not beautiful pukka. Initially, Merrick's hatred of Hari Kumar was analysed by the reader as jealous of Miss Daphne Mannerss affections. The openness of Merrick against class nuances encourages the reader to condone his feelings of unsworthiness as a supporter of the impeccably associated Daphne, yet Merrick 's increasing resentment of the well-educated "fair skin gentlemen" of public school reveals a darker side to his personality. [15]

LT. COL. John Layton

Layton is Colonel 1st, in Pankot and Rampur, Pankot Rifle Commander. Now he's the patriarch of the Layton tribe. It is the product of Chilling borough, which is the same school that Hari Kumar and Miss Daphne's children attend exclusively. As Layton tells the account, John Layton is held captive by Germans after being captured in the North African War Theatre. [16]

Pandit Baba

The alias of a man with links to the Indian nationalists is "Pandit Baba." Pandit Baba is a committed Hindu in Mirat's Indian community and elsewhere. Since he was present on Mayapore during the riots, Miss DaphnéMannerss' harassment, Hari Kumar and his colleagues were violently treated by Pandit Baba to take revenge on Ronald Merrick. Often Merrick sees Baba's test signs, but he can do little with him. Pandit Baba teaches Ahmed Kasim to preserve his Indian cultural origins and criticizes him for speaking English only and wearing western clothing. [17]

Conclusion

In conclusion, he claimed that he wrote novels "for the intention of providing a voice to people who might otherwise be inarticulate." This argument may justifiably be expanded to involve others who dread to communicate at all, so that they don't expose a disdainful reality about themselves. The Oppressor and the Oppressed: Unusual Women: -Futile Mission: Apathy of the characters of the 'Memsahibs':

The Raj quartet is an epic story of British troops, an English lady, an Indian lover and sadistic police officer all bundled in the chaos and war for freedom of British power India during WWII. The book is thrilling. The beautiful way the images have been woven in unique and exciting forms in the sequence, the eternally unforgettable characters, the compelling history of significant incidents, the compassion of the sequence towards the citizens of all ages, the charisma of many protagonists .... There was an error. Allows an epic book for the Quartet. It is not just the action that improves the performance, but most specifically the internal growth of human character that is fascinating.

000

References

1. Max Beloff, "The End of the Raj: Paul Scott's Novels as History," Encounter, May 1976, Vol. XLVI, No. 5.

2. Paul Scott, "The Raj", Frank Moraes and Edward Howe (Ed.) India (Delhi: Vikas Publishers, 1974), p. 88.

3. Lerinard John, "Pau1 Scott: The Ra/ Quartet & Staying On". Tiril [England]: Humanities-E books, 2008.

4. Review of The Raj Quartet. Neu› Work Tiers,

5. Nancy Wilson Ross, "Unsung Singer of Hindustan", Saturday Review, 24 h June 1972 : 42 (Weinbaum 212)

6. StrongBlake, "Parting of ways: The End of the Spirit of Empire in Pau1 Scott's The Raj Quartet" (2005), Thesis submitted at Eastern Illinois, University, Charleston, Illinois.

7. Reece, Shelley C. Introduction. My Appointment rich the Muse: Essays, 1961-75. By Paul Scott. London: Heinemann, 1986. 1-10.

8. George Lukacs,The Historical Novel, translated by Hannah Mitchell and Stanley Mitchell, p.42 (Weinbaum 212)

9. Walker Keith, Contemporary Novelist, Published in Great Britain, 1980, p.1221.

10. Brann Eva, Tapestry with Images: Paul Scott's Raj Novels [Critical Discussions] Philosophy and Literature 23 (1999) : 183, 185

11. New York Times, Review of The Raj Quartet. Review of The Raj Quartet. New York Times

12. Reece, Shelley C, Introduction. My Appointment with the Muse: Essays, 1961-75. By Paul Scott. London: Heinemann, 1986. 1-10.

13. Weinbaum, Francine S, Pull Scott: A Critical Study. Austin: Univ. of Texas Press, 992. (94-9

14. Gorra, Michael, AJfer Empire: Scoff, Naipaul and Rushdie. Chicago: Chicago Univ. Press, 1997.

15. Max Beloff,"The End of the Raj: Pau1 Scott's Novels as History" EncoBnfer, 272 (May 1976) : 66 (Weinbaum 212)

16. Strong Blake, Parting of Ways : The End of the Spirit of Empire in Paul Scott's be raj quartet (2005), Thesis submitted at

Eastern Illinois University, Charleston, Illinois.

17. Weinbaum, Francine S, Paul Scott: A Critical Study. Austin: Univ. of Texas Press, 1992.

Research Article

(Research Article)

Public-Private Sector Composition In Indian Economy

Research Author :
Nidhi Tewatia
Research Scholar
Dr. Chandra Prakash Tripathi
Research Supervisor

Nidhi Tewatia
Research Scholar
Department of Economics,
Maharishi University of
Information Technology,
Lucknow

ABSTRACT

The Paper focuses on the analysis of the impact of Gross National Income and Public Expenditure on total employment and its public and private sector components. It also examines the ratios of public and private sector employment to total employment and public sector to private sector employment. The results of summary statistics of employment, public and private sector employment, public expenditure and gross national income are briefly discussed. Growth of total employment, public and private sector employment, gross national income and public expenditure is examined to determine the direction and magnitudes of inter-temporal changes. Growth trend of all three ratios is determined to detect and to anticipate the inter-relations of change. Stationarity of time series of total employment, employment in public and private sectors, gross national income and public expenditure of Indian economy is evaluated by Random Walk Model and Dickey-Fuller test. The results show that the time series data of total, public and private sector employment approximate normal distribution with extremely low skewedness and concentration. The coefficients of variation of all 6 time series data are relatively very low. But the time series of GNI is non-stationary at 0.05 probability level while time series of public expenditure displays negative trend. Total employment depends on lagged total employment and GNI while employment in public sector depends on lagged public sector employment and public expenditure. But the function of employment in public sector shifts downwards to the left over the years since the employment in public sector has been declining consistently. Consistent decline in public expenditure and public sector employment implies a decrease in public expenditure on salaries of public employees even though per public employee

expenditure may be rising due to consistent rise in pay packages. Negative change in private sector employment is determined by lagged private sector employment and private income/expenditure. The results of Engel-Granger test of co-integration show the variables to be well co-integrated in the chosen distributed lag models.

HIGHLIGHTS

m The paper studies the dynamics the function of employment in public sector shifts downwards to the left over the years since the employment in public sectorhas been

declining consistently.

m The chapter focuses on the analysis of the impact of Gross National Income And

Public Expenditure on total employment and its public and private sector components.

Keywords: GNI, ASF, ADF, DLM, GPNI

Introduction

Output/income at any given point in time depends on the quantity and quality of factor inputs, technology of production, organization of productive activities and techniques of management of both men and materials. Therefore, the growth of output/income through time and over space requires increase in the quantity of factor inputs and improvement in their quality, change in or replacement of old by more advance technology, improvement in organization structure and techniques of management of both men and materials. However, it is generally not possible to change all the above factors and parameters together at the same time due to the fixity of fixed capital, including machinery and equipment, and the technology machinery and equipment embodies. Machinery and equipment are non-malleable factors while labor/human capital and materials are, by and large, malleable factor inputs. Consequently, one or some of the variables/malleable factors of production are generally changed at the given point in time. Therefore, one of the two alternative approaches to growth may be followed: (i) Factor multiplication process; or (ii) Factor transformation process of the raising of output intertemporally. Under factor multiplication process, technology, quality of factor inputs, organization structure and managerial techniques remain invariant through time. Consequently, production function shifts upwards to the right as the scale of operations increases. But input-output coefficients remain constant. Under the factor transformation process, production function changes both in nature and location which results in change in the input-output coefficients. Technological change lies at the base of factor transformation process of growth. Induction of advance technology warrants employment of better and higher educated human capital, and consequently, better skilled and higher educated manpower and increased productivity become the main drivers of growth of output. (Sharma, Amit & Prakash, Shri, 2018, Prakash, Shri & Balakrishnan, Brinda, 2008). Consequently, human capital plays an important role, if not more critical role than that played by physical capital (Cf. Schultz, 1960, Dennison, E.F., 1969, Prakash, Shri, 1977, 1995, Sharma, Amit & Prakash, Shri 2018). As productivity is stipulated to be the determinant of wages/salaries, productivity propelled growth may be expected to result in increased salary expenditure both in public and private sectors.

Theory of Employment

Theory of employment did not receive much attention of the classical economists due to their blind faith in the efficacy and effectiveness of Say's Law of Markets which states that supply creates its own demand. Therefore, they assumed that the economy always remains in stable equilibrium at full employment. This theory is, thus, a denial of the possibility of existence of unemployment which is a perennial problem of all modern economies, irrespective of their developed or developing nature. However, the centrally planned socialist economies have been an exception to the general global scenario of persistence of unemployment at low or high level of income and its growth. Therefore, less than full employment equilibrium prevails in the world economy. The classical economists' Iron Law of Wages stipulated that the supply of labor increases if the wages are greater than the cost of subsistence, but increased labor supply makes wages decline till it equals subsistence cost of living. A highly unrealistic assumption underlines the theory. It implicitly assumes that the increase in population caused by a stimulus of increased wages coincides with the supply of labor which overlooks the time lag between child birth and increase in labor force. Dichotomy between the facts and theory of such unrealistic

employment, especially during the worldwide depression of early thirties, discredited the Say's Law of Market totally. It also paved the way for the acceptance and approval of Keynes' General Theory of Employment, Money and Interest Rate. Keynes' theory highlighted that the Aggregate Supply Function (ASF) equals Aggregate Demand Function (ADF) in equilibrium. Generally, the equality between ASF and ADF occurs at less than full employment. Thus, Keynes recognized the existence of unemployment in the state of general equilibrium of the economy. He postulated that the deficiency of aggregate demand results in dis-equilibrium that causes unemployment in labor market. He suggested that an increase in public expenditure in general and public investment in particular mitigates insufficiency/deficiency of aggregate demand. The periodic occurrence of demand recession in the globalized world economy has been a regular feature since then.

Materials and Methodology

The study uses multiple methods and models rather than depending upon the results of one single method or model of data analysis. Methods and models are selected according to the objectives of the study and the nature and expanse of data. The following statistical methods and econometric models have been used: (i) Descriptive statistic to portray basic features and facets of data base of the study; (ii) Ratios and proportions are used to 147 normalize the data by the control of size effect and for the evaluation of relative intertemporal changes in the core variables associated with the public and private sectors of the Indian economy.; (iii) Random Walk Model and Dickey-Fuller test are used to determine whether time series of given data sets are stationary; (iv) Time trend and growth curves are estimated to evaluate the differential rates of growth of basic variables of the study; (v) Since the time series of different data sets are found stationary at first difference, Distributed Lag Model (DLM) has been preferred to other forms of model specification. DLM incorporates the first lag of the dependent variable as one of the determinants. The model also facilitates the derivation of long run structural equilibrium model from the short run reduced form equilibrium model. Besides, DLM is not atheoretical model like VAR. These advantages are not available with the error correction modelalso.

Literature Review

However, recession and inflation have historically been mutually exclusive both conceptually and empirically till the oil inflation of early and late seventies (Prakash, Shri, 1981, Sharma, Shalini, 2005, Sharma, Sudhi & Prakash, Shri, 2014, Sharma, Sudhi, 2016). Hicks (1965, 1973) distinguished between the theories of flex and fix prices in modern economies to recognize the cleavage between the behavior of cost based fix prices and demand driven flex prices. The emergence of a new feature of coexistence of recession in fix-price sectors, and hence, unemployment or want of growth of employment in the midst of inflation in flex-price sectors of the economy at the same time has emerged in post oil inflation period of early seventies (Mathur, P. N., 1973, Prakash, Shri, 1981, Prakash, Shri & Goel, Veena, 1985, Sharma, Shalini, 2005, Sharma, Sudhi & Prakash, Shri, 2014). This has also resulted in the theoretical and empirical refutation of Philips' hypothesis that inflation leads to decline in unemployment and increase in employment (Prakash, Shri & Sharma, Sudhi, 2013, Sharma, Sudhi & Prakash, Shri 2014). But the theory of employment still remains among the emptier theoretical boxes of both micro and macro-economics. All the same, the above discussion provides the theoretical backdrop of the modern day problems of inflation and employment/unemployment. This

is despite the fact that the democratic countries with market economies and planned economies with autocratic political regimes remain concerned with the control of unemployment.

Results

Analysis of Empirical Results

Empirical results are reported sequentially but thematically. First, results of descriptive statistics are discussed. It is followed by the evaluation of results of Dickey-Fuller test of stationarity. The results of the growth curves along with the trend growth of ratios of the core variables are taken up next. Lastly, the results furnished by the distributed regression models are discussed.

Important Facets and Features of Observed Values of Employment

The time series of total employment comprises the

series of employment in private and public sectors of Indian economy. Ratio of (i) private sector employment to total employment; (ii) public sector employment to total employment; and (iii) public sector employment to private sector employment are derived from the data pertaining to total, public and private sector employment. Thus, total employment is used to normalize employment in public and private sectors. Incidentally, private sector employment and pay packages have been used as the reference or bench mark in some of the past studies. Therefore, private sector employment is used in this study also to normalize public sector employment. However, the rationale behind this is different from the rationale used in the past studies which relate mostly to developed market economies. Indonesia is an exception to this. However, India has been diluting the pivotal role of public investment and public sector employment by promoting private investment and private sector employment. Therefore, these ratios are conceived to capture the change in the role of two sectors in employment generation. These ratios highlight the relative roles of private and public sectors in the generation of employment and the growth of the economy through time. Besides, the ratios are scale free and are appropriate for inter-temporal and inter-sector comparisons in the market economy in transition which may still be quasi planned economies. In the planned economies, however, the structure of employment and economy are dominated and even controlled by the government. This warrants an evaluation of the changing role of public expenditure and public sector in the growth of employment and GNI in the economy.

Findings and Conclusions

The following are the main findings of the chapter:

1.Inter-temporal distribution of total employment, public and private sector employment does not significantly diverge from normal distribution.

2.Inter-temporal distribution of GNI diverges from normal distribution, and consequently, its time series is not stationary at 0.05 probability level.

3.Total employment consistently stagnates for 3-5 years before it increases again.

4.Public sector employment consistently declines while private sector employment grows over the years at a sluggish rate.

5.The ratios of public sector employment to total and private sector employment decline through time.

6.Total employment is the positive function of lagged total employment and GNI. But total employment increases nominally in response to an increase in GNI.

7.Public sector employment significantly depends on public expenditure while GPNI is the significant determinant of private sector employment.

8.Preceding year's total, public and private sector employment influence current employment more than the GNI, public expenditure and GPNI.

9.The functions of total and public sector employment are downward shifting to the left through the years.

10.An implication of the above results is that the salary expenditure of the government relative to public expenditure may decline through time though the per employee salary expenditure may rise consistently.

000

References

Balakrisnan (2010), Competency Mapping in Indian Steel Industry, Ph.D. Thesis, Faculty of Management, B.R. Ambedkar University, Agra.

Bargain, O., and B. Melly, 2008, "Public Sector Pay Gap in France: New Evidence Using Panel Data," Discussion Paper No. 3427 (Bonn: Institute for the Study of Labor (IZA).

Bazen, S., Gregory, M. and Salverda W. (Eds), (1998) Low-Wage Employment in Europe,

Edward Elgar, Cheltenham. Bender, K.A., and Elliott. F., (1999), " Relative Reanings in the UK Public Sector: The Impact of Pay reform on Pay Structure, in Elliott, B., Lucifora, C. and Meurs, D. (eds.)

Public Sector Pay Determination in the European Union, Macmillan,285-328.

Clements, Benedict, Gupta, Sanjeev, Karpowicz, Izabela and Tareq, Shamsuddin (2010) Technical Notes and Manual: Evaluating Government Employment and Compensation,

Department of Financial Affairs, International Monetary Fund, Washington. September.

Guillotin Y., and Meurs D. (1999), "Wage Heterogeneity in the French Public Sector Some First Insights", in Elliott, B., Lucifora, C. and Meurs, D. (eds.) Public Sector Pay Determination in the European Union, MacMillan, 70-112.

Marshall, Alfred (1891/1962), Principles of Economics, Macmillan, London (Reprint)

Negi, Gautam (2016), Utilization of Energy Resources and Economic Development of Indian States with Special Reference to Electricity, Ph.D. Thesis, Mohan Lal Sukhadia

University, Udaipur

Prakash, Shri & Sharma, Shalini, (2006), Growth of Income and Consumption in India.

In Jauhri, B. M (Ed.) India's Department after 50years of Independence, New Delhi,

Gyan Publishing House, May 1976, Vol. XLVI, No. 5.

Research Article

(Research Article)

Impact of Goods and Services Tax in Retail Sector

Research Author :
VVV. Satyanarayan
Research Scholar
Dr. S. D. Sharma
Research Supervisor & Professor

VVV. Satyanarayan
Research Scholar
Department of Commerce, Maharishi School of Commerce and Management, MUIT, Lucknow

Abstract- In India, the indirect tax system has undergone significant modifications, which can be termed as a comprehensive tax benefit or the GST (products and services tax), It is a national tax on goods and services produced, sold, and consumed. GST's effects will mostly benefit businesses and individual retail investors, as well as the stock market. It has the potential to bring more promotional benefits in terms of corporate profitability and business promotion, as it will bring long-term sustainable change to individual private investors and the sector as a whole. prize. The benefits of the Goods and Services Tax on top participants (industry and individual retail investors) in Indian stock markets will be highlighted in this paper. The final remarks emphasised that the implementation of GST will attempt to bridge the gap between the organised and unorganised sectors, and that it will have overall positive implications for individual investors as a result of consistent market practices such as cost competitiveness or consumer endurance that directly benefit end users as a result of a highly competitive market.From a macroeconomic aspect, it also highlighted how the bill is expected to effect various sectors and gain market share.

Overview- The introduction of the Goods and Services Tax (GST) in India has been called "one country, one tax," "turning point," and "reform of the century." Note the introduction of unified value-added tax (VAT) on invoice and credit-based products and services in a vast and diverse federal state governed by numerous parties at both national and quasi-national levels. It's a worthy achievement. It takes a long time for almost all countries adopting GST to stabilize, and the Goods and Services Tax, introduced at the federal and state levels about 30 years ago, is still developing in Canada (Bird, 2012). .. The amount of work required to achieve such changes at the national and quasi-national levels of India is enormous. This includes the federal government, 29 states, and two union territories, all of which have different ruling-led parliaments. This type of change is a large-scale experiment in cooperative federalism that requires Statesmanlike oversight.

Since roughly 2018, 166 nations, including all OECD members, have imposed VAT in one form or another on labour and goods. To avoid distorting or recovering monies lost due to duty reductions after joining the WTO, most developing countries have substituted their flowing local exchange desires with VAT requests. The GST was created to be a cash machine, and it has shown to be a useful instrument for recouping income lost as a result of tax cuts. Only five nations have removed VAT before reintroducing it with changes. Of course, the IMF has a reputation for being a master of change (Bird and Gendron, 2007), and this has been a major shift for the Fund's members (Keen, 2009).

The transition to VAT / GST has been much smoother in most countries as taxes are collected primarily by the federal government. VAT was also centrally collected in federal countries such as Australia and Germany. Brazil, Canada, and the European Union are the only other countries to adopt GST, and even after years of experience, reforms are still underway in these countries. In Brazil, interstate commerce taxes are levied on the basis of origin,

and both federal and state versions of VAT lack conceptual and administrative clarity. The costs of compliance, control and distortion are very high, and there are problems with cross-border trade and interstate tax exports (Varsano, 2000, Brid and Gendron, 2007). VAT is a prerequisite for participation in the European Union's twenty-seven member countries. It is based on the destination notion, however the issue of cross-border trade is still being contested (Keen 2009, Cnossen, 2010). Furthermore, in terms of thresholds, exclusions, and rate structure, there is minimal consistency among member countries' tax policies. In reality, the EU's standard VAT rate ranges from 15% to 25%, with a mean of 19.4%, whereas every other European country, with the exception of Denmark, has one or more rates in addition to the standard rate (Bird and Gendron, 2007). After 28 years of experience, Bird (2013) believes that the change in Canada has been difficult and that it is still a work in progress.

II. Execution of GST in India:

Characteristics of Interest

There is no "one size fits all" or "one and only" GST, according to international experience with GST implementation. Depending on what is politically acceptable, multiple models with diverse structure and execution mechanisms exist in different nations. However, the general ideas advocated by the majority of specialists are as follows:

(i) I Aim for a broad base with few exclusions, credits, rebates, or deductions;

(ii) set the bar high enough for the administration to concentrate on "whales" rather than "minnows." This will not only save money on administration, but it will also promote the cause of equity (Keen and Mintz, 2004).

(iii) In order to decrease administrative, compliance, and distortion costs, the tax structure should be kept simple, with minimum rate differentiation.

(iv) Keep a close eye on the tax system, focusing on the basics such tax collection at the source and an identification number system.

(v) do not gather more data than can be processed in a reasonable amount of time;

(vi) Ensure that proper records are kept and that long-term self-evaluation is a goal. Despite the fact that conventional wisdom on GST has been demonstrated to be correct in most cases, strict compliance is not always attainable. "Some" bad "characteristics, such as extremely high or too low thresholds, too wide tax exemptions, and variable tax rates, can be important for successful recruitment. "Bird and Gendron (2007; p. 4) write. "Such elements may be extremely difficult to eliminate," they warn. As illustrated in the diagram, the GST combines many federal and state taxes.

Table 1. The shift is a one-of-a-kind experiment in which both the bureaucracy and state legislatures forego charge experts in favour of combining the native utilisation fee structure. GST is divided into three parts: Central GST (CGST), State GST (SGST), and Interstate GST (IGST) (IGST). Taxes are expected to be objectively based and revenue from interstate transactions will be deposited in the IGST account before being distributed by destination through the clearinghouse process. The Constitution has been amended to make GST a joint issue between the Center and the State (Article 269A), governed by a new constitutional body, the GST Council, and headed by the Minister of Finance and the Minister of Finance or other ministers. A pastor appointed by each state and coalition region of which the council is a member. The Secretary of the Commission is

the Union Revenue Secretary, and the Council's responsibilities are overseen by a separate Secretariat. A 66 percent majority should support the chamber's decisions.

The GST Council is a major institutional innovation and collaborative federalist company. The state chose to abandon its fiscal autonomy in favor of tax harmonization, but refused to delegate its obligations to the federal government. Instead, they decided to create a new constitutional institution that would include representatives from the federal government and each state. One- third of the voting rights are controlled by the Centre, while the remaining two-thirds are equally controlled by each state. The Constitution requires a two-thirds majority to make a decision. The GST Network (GSTN), a non-profit organization, was established to provide common shared information technology (IT) infrastructure and services to central governments, state governments, taxpayers and other interested parties. Non-sovereign financial institutions own a 51% stake, while the

center and state own the remaining 49%. No action was taken despite the decision to become a 100% state-owned enterprise in March 2018.

To convince the states, the focal government focused on remunerating any shortfall in income from their genuine receipts from the combined charges starting around 2015-16 by 14% each year for a five-year term. Payments will be backed by a one-time tariff on defective and luxury goods, which is levied at a rate of 15% to 96% of the associated tariff rate, in addition to CGST and SGST. An analysis of the patterns of state fees supplied to the GST is to reach an agreement with the state, despite the fact that the central government expects 14% growth in base year revenue in 2015. It

shows that we have agreed to a liberal plan-16, which shows that the actual increase was much lower. Five-year and three-year growth rates of GST fee income consumed in various states. The typical development rate for non-extraordinary classification states north of three years was 8.9 percent, and it was 11.7 percent more than five years. Essentially, it was 12.3 and 12.4% for exceptional classification states, separately. Moreover, considering that ostensible GDP development has now eased back, most states are probably not going to accomplish 14% development and should be redressed. Accordingly, the Cess to make up for the duties must be huge. It very well may be seen that repaying cess income represented around 8.5 percent of GST assortments in 2017-18 and 8.3 percent in 2018-19.

III. Effects of GST: Savings in costs, enhanced productivity, and revenue effect (a) Cost savings and enhanced productivity: The installation of GST is a significant change, and two years is insufficient time to evaluate its impact. In addition, the structure and operational characteristics are being changed regularly, and reforms are constantly underway. Moreover, given the political diversity of India and the number of states with different economic characteristics, politically acceptable changes are far from perfect and are constantly evolving. However, as Bird and Gendron (2007) argue, while substantive reforms are difficult to implement, they can be permanent as they have been agreed upon by stakeholders. Keen (2013) used the concept of "C-efficiency" to separate GDP's GST income share into normal tax rates, consumption (excluding GST), and the interactive term "C-efficiency". We are investigating the impact. "" The latter is the ratio of GST revenue to standard rates and consumables. Acosta-Ormacecha and Morozumi (2019) used this approach to assess European Union VAT and raise VAT while reducing income tax, which only promotes growth if VAT is increased by'C efficiency'. I conclude that. The reduction in the standard tax rate will also promote the growth of a certain amount of VAT income. However, in the context of India, it is not possible to estimate the "c-efficiency" for assessing reform. Two years is too short a period to do such an empirical analysis, and monthly census figures are available, but there is no corresponding consumption. Estimates; (ii) When using multiple GST tax rates, it is difficult to identify the standard tax rate 12. As a result, determining the impact of GST is limited to anecdotal evidence and assumptions.

STATEMENT OF THE PROBLEM

The execution of the Goods and Services Tax (GST) would be a major step in the right direction in India's circuitous duty changes. By consolidating countless Central and State charges into a solitary duty, it would fundamentally lessen flowing or twofold tax collection and clear the way for a common public market. The primary benefit for customers would be a decrease in the general taxation rate on products, which is currently assessed to be somewhere in the range of 25 and 30 percent. The execution of GST would likewise expand the seriousness of Indian items in both the homegrown and unfamiliar business sectors. The movement of exchanging is alluded to as retail. A retailer is any individual or association that sells labor and products straightforwardly to shoppers or end-clients. Non-retail movement alludes to deals made by certain retailers to business clients. Lawful meanings of retail in different wards or regions require that something like 80% of deals action be to end-clients. Accordingly, the ongoing review centers around FMCG, materials, lodgings, clinical shops, adornments, etc. Likewise inspected were retailers' GST information, the effect of GST execution on shippers, and retailers' mentalities about GST execution.

(GST) GOODS AND

SERVICE TAX

It aids in determining the positive and negative effects of GST on the retail industry. As a result, GST will be a favourite. In India, the Goods and Services Tax (GST) is a multi-layered destination- based tax that applies to all value creation. GST (Products and Services Tax) is a consumption tax levied on both goods and services. The GST law has replaced some of the indirect tax regulations that previously existed in India. GST (Goods and Services Tax) is a single indirect tax that applies to all Goods and Services sold in the United States. In the GST system, taxes are collected at each point of sale. Interstate sales are taxed by both the federal and state governments. Internal sales are taxed at the same rate as external sales. The GST journey in India began in the year 2000, when a committee was created to draught the legislation. The law took another 17 years to become law. In 2017, both the Lok Sabha and the Rajya Sabha passed the GST Bill. On July 1, 2017, the GST Law entered into effect. One of the main advantages of GST is that it reduces the cascading effect on the sale of goods and services. The absence of the cascading effect will have a direct influence on the cost of individual items. The GST should cut the cost of goods since it eliminates tax on tax. GST is heavily influenced by technology. Registration, return filing, refund claims, and notice answers must all be done through the GST system. As a result, the processes will be hastened. significant repercussions for the retail industry The cascading impact is prevented since GST is calculated only on the value provided at each level of ownership transfer. The GST (Goods and Services Tax) is a single indirect tax that applies to all goods and services sold in the United States.

CONCLUSION

According to this research, numerous indirect taxes will be consolidated under the proposed GST regime, resulting in a simpler tax regime, notably for industries such as FMCG, Textiles, Hotel, Medical Shop, Jewellery, and so on. Apart The tax rate will have a significant impact on all of the listed areas, in addition to simplifying tax compliance. The VAT rate in the FMCG sector is between 22 and 24 percent. The rate under the GST regime would be in the range of 5% to 28%. The VAT rate in the textile industry was 4-5 percent; under the GST regime, the rate would range from 5 to 18 percent. And The VAT rate in the hotel industry was 5-20%; under the GST regime, the rate would be 5–18%.

In other words, GST has a good and bad impact on all of these industries.

000

References

[3] Express New Service. (2016). "Good and Services Tax (GST) Bill, Explained". The Indian Express. Retrieved from: http://indianexpress.com/article/explained/gst-bill-parliament- what-is-goods-services-tax-economy-explained-2950335/.

[4] Herekar, P. M. (2012). Evaluation of impact of Goods and Service Tax (GST). Indian Streams Research Journal, 2(1), 1-4.

[5] Konnur, M. N. P., & Singh, M. B. (2016). Trade & Industry Development through GST. Introducing GST and Its Impact on Indian Economy (book). Niruta Publications, Bangalore, p.63.

[6] Laddha, A.,& Kapoor, S. (2016). GST will change the way India does business: Who will win, who will lose. The Economic Times (ETMARKETbita). Retrieved from: http://economictimes.indiatimes.com/articleshow/53517955.cms?utm_source=contentofinterest&utm_medium=text&utm_campaign=cppst.

[7] Mathew, j. (2016). GST Bill: Why happy days lie ahead for Indian industry. The Indian Express. Retrieved from: http://indianexpress.com/article/opinion/web-edits/gst-bill-arun-jaitley-narendra-modi/.

[8] Sakshipost, Business. (2016). GST Bill brings one tax across India; revenues at $137 billion. Retrieved from: http://www.sakshipost.com/business/2016/08/04/gst-bill-brings-one-tax-across-india-revenues-at-dollar137-billion.

[9] Sehrawat, M.,& Dhanda, U. (2015). "GST in India: A Key Reform". International Journal of Research-Granthaalaya. Vol.3, (Iss.12), 133-141.

[10] Subramaniam, H., et al. (2016). "All about GST in India". EY Clint Portal. Retrieved from: www.ey.com/in/en/services/ey-goods-and-services-tax-gst.

[11] The Indian Express News Service, (2016). "Goods and Services Tax (GST) Bill, explained." Retrieved from: http://indianexpress.com/article/explained/gst-bill-parliament-what- is-goods-services-tax-economy-explained-2950335/.

[12] Venkadasalam, S. (2014).Implementation of Goods and Service Tax (GST): An Analysis on ASEAN States using Least Squares Dummy Variable Model (LSDVM).International Conference on Economics, Education and Humanities proceeding (Indonesia). p. 10-11.

[13] CII, AIT conference. (2016). "How to Digitally Ready for GST". Retrieved from: https://www.mycii.in/image/eventimages/eventmainimages/E000028927_Background%20Note %20-%20How%20to%20Digitally%20Ready%20for%20GST.pdf.

[14] Keen, M. (2014). Targeting, cascading and indirect tax design. Indian Growth and Development Review, 7(2), 181-201

शिवना प्रकाशन द्वारा प्रकाशित नई पुस्तकें

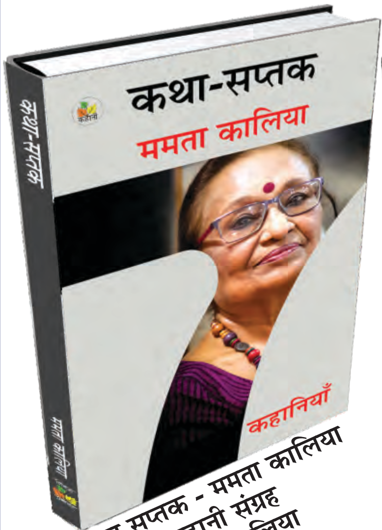

कथा सप्तक - ममता कालिया
कहानी संग्रह
ममता कालिया

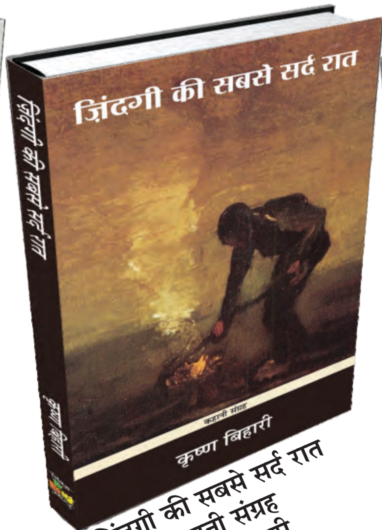

ज़िंदगी की सबसे सर्द रात
कहानी संग्रह
कृष्ण बिहारी

एक्स वाई का ज़ेड
कहानी संग्रह
प्रभात रंजन

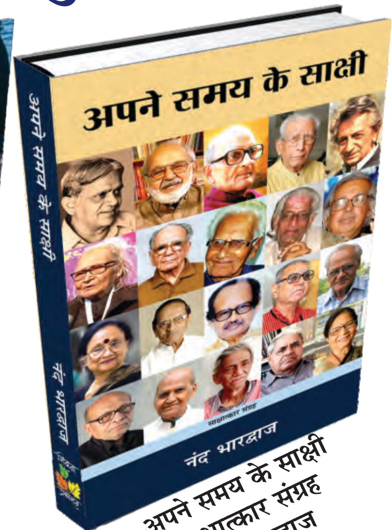

अपने समय के साक्षी
साक्षात्कार संग्रह
नंद भारद्वाज

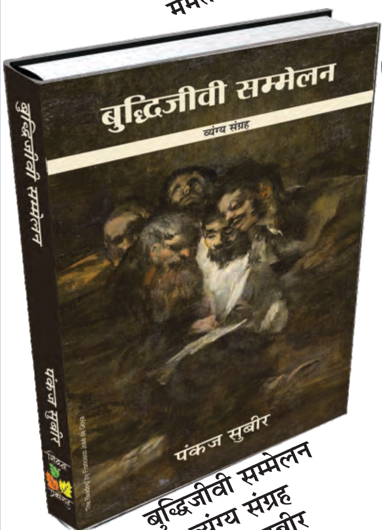

बुद्धिजीवी सम्मेलन
व्यंग्य संग्रह
पंकज सुबीर

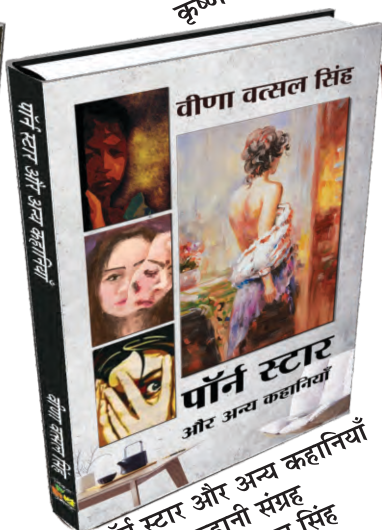

पॉर्न स्टार और अन्य कहानियाँ
कहानी संग्रह
वीणा वत्सल सिंह

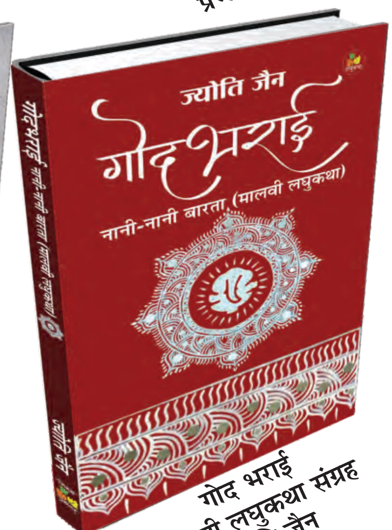

गोद भराई
मालवी लघुकथा संग्रह
ज्योति जैन

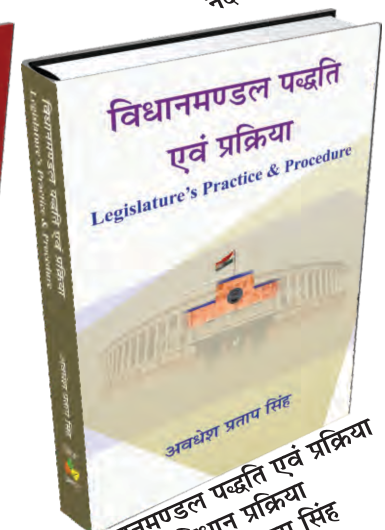

विधानमण्डल पद्धति एवं प्रक्रिया
विधान प्रक्रिया
अवधेश प्रताप सिंह

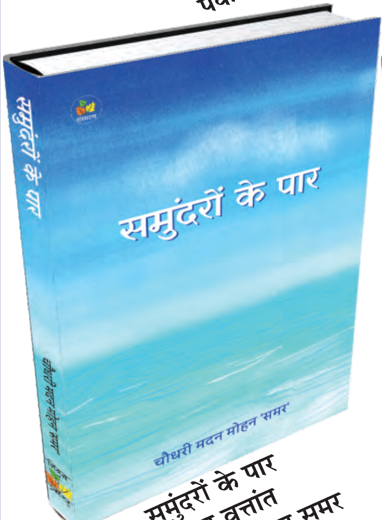

समुंदरों के पार
यात्रा वृत्तांत
चौधरी मदन मोहन समर

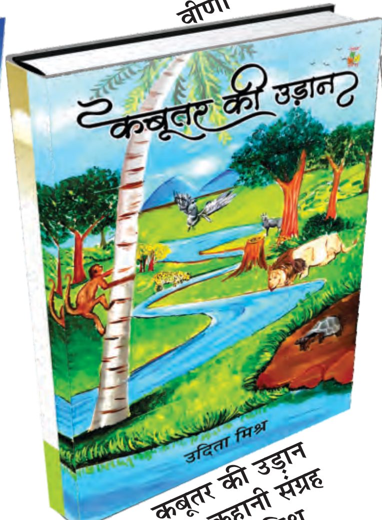

कबूतर की उड़ान
बाल कहानी संग्रह
उदिता मिश्र

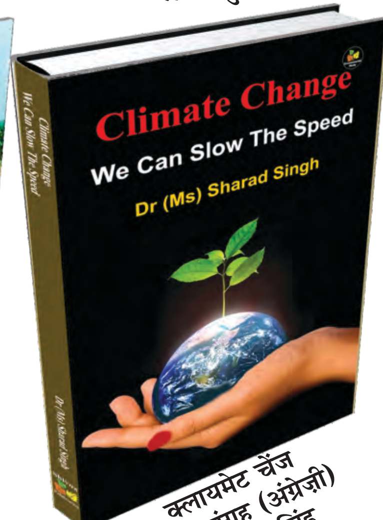

क्लायमेट चेंज
निबंध संग्रह (अंग्रेज़ी)
डॉ. शरद सिंह

उर्वशी
उपन्यास
ज्योत्स्ना कपिल

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
WhatsApp +91-8819806162
twitter https://twitter.com/shivnac
facebook https://www.facebook.com/shivna.prakashan
YouTube https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● January-March 2023 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह
महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह
महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह
महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

सीहोर में चलाए जा रहे बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण केंद्र पर सत्र 2021-22 की बालिकाओं का डिप्लोमा वितरण समारोह
महामण्डलेश्वर पंडित अजय पुरोहित, फ़िल्म अभिनेता यशपाल शर्मा, समाजसेवी श्री अखिलेश राय तथा शिक्षाविद् डॉ. अनीता भालेराव।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।